श्री भागवती कथा खण्ड २९

श्री सीताराम जी

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभागवत-दर्शन—

भागवती-कथा

(उन्तीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

—:o:—

लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

—:o:—

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

—:※:—

संशोधित मूल्य २.००

तृतीय संस्करण १००० प्रति | भाद्रपद सं० २०२३ विक्र० | मू० १-२५ पै०

मुद्रक—पं० वंशीधर शर्मा भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगञ्ज इलाहाबाद ।

विषय-सूची

भूमिका

जनमनरञ्जन राम

:o:

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ❀
(श्री भा० ५ स्क० १९ अ० ५ श्लो०)

छप्पय

राम कामनाहीन करैं क्रीड़ा करुणाकर ।
नीरस जग कूँ सरस करन प्रकटैं प्रभु दुखहर ॥
मनुज सरिस शुभ चरित दिखावहिं जनमनरञ्जन ।
सुखी करन निज जननि करहिं हरि करुणा क्रन्दन ॥
करैं कामना भक्त जब, तब तैसे बनि जात हैं ।
ह्वैकें सर्वसमर्थ प्रभु, भक्तनि हाथ बिकात हैं ॥

भगवान् के अवतार का कारण खोजते हैं, तो क्रीड़ा करके अपने जनों को सुख देने के अतिरिक्त कुछ पाते ही नहीं । जो

❀ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् से कह रहे हैं—"राजन् ! संसार में श्री रामचन्द्रजी का अवतार केवल राक्षसों को मारने के ही निमित्त नहीं हुआ । उनका अवतार तो लोकशिक्षण के लिये हुआ है । सबको सुख देने के लिये हुआ है । नहीं तो आप ही सोचें जो अपने आत्मा में ही रमण करने वाले हैं, उन साक्षात् षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान् को सीताजी के लिये इतना दुःख कैसे हो सकता है ?"

गम्भीर बना बैठा बैठा आदेश देता रहे, उससे काम तो भले ही हो जाय जनमनरंजन नहीं हो सकता। भगवान् को काम तो करना नहीं ‥ाम का ता और छुड़ाना है। उन्हें तो हँसना है, हँसाना है, सरसता का प्रभाव बढ़ाना है। इसलिये वे नानावतार लेकर लोगों को शिक्षा देते हैं तुम सदा हँसते रहो, सुखी रहो, निश्चिन्त रहो, घर को वन को एक-सा समझो। अपनी मुसकान की रक्षा करो। विषाद को अपने पास फटकने मत दो। रोने की ही इच्छा हो तो प्रेम के लिये रोओ।" इन्हीं बातों को अवतार लेकर भगवान् प्रत्यक्ष दिखाते हैं। भगवान् की एक पत्नी हैं भूदेवी। असुर उन्हें पाताल में पकड़ ले गये और ऐसे मल भरे स्थान में रख दिया, जहाँ कोई जीव प्रवेश ही न कर सके। भगवान् भूदेवी के लिये सूकर बन गये। घुस गये मल के परकोटे में। अपना आदमी कैसा भी वेष बना ले घर वाली उसके शरीर को सूँघकर पहिचान लेती है। भूदेवी ने कहा, "सूकर क्यों बन आये हो प्राणनाथ!" आप बोले—'अरे, घरवाली को सुखी बनाने को सब कुछ बनना पड़ता है, तेरा उद्धार जो करना था, दैत्य को हँसाना भी था ब्रह्मा को वेद बताना भी था। चल मेरी दाढ़पर बैठ जा।" भूदेवी बैठ गयीं, उसका उद्धार करके असुर को मार कर सूकर भगवान् तप करने चले गये।

भृगुपुत्री कमला से विवाह किया। ससुर से कुछ लेनदेन के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया। ससुर ने शाप दिया—"जाओ तुम्हें भूमि पर दश बार जन्म लेना पड़े।" आप हँस गये, बोले यही तो हमें अभीष्ट था।

देवताओं ने कहा—"महाराज! हम असुरों से बल में न्यून पड़ते हैं। हमारा पक्ष ले लोगे क्या?"

भगवान् बोले—"तुम अपनी निर्बलता स्वीकार करते हो तो मैं तुम्हारा पक्ष लिये लेता हूँ।"

देवता बोले—"महाराज ! कोई पक्षपाती न कह दे ?"

भगवान् गरज कर बोले—"मैं किसी के सम्बन्ध में नहीं हूँ जी ! लोग बकते हैं बकते रहें। जो मेरी शरण में आ जाते हैं, जो अपनी निर्बलता का अनुभव कर लेते हैं, जो अपने दोषों को स्वीकार कर लेते हैं। उनका मैं पक्ष करूंगा, करूँगा, एक बार नहीं लाख बार करूँगा। मेरा नाम शरणागतवत्सल है। मेरे भक्त मुझे पक्षपाती न कहें औरों को बकने दो। तुम मेरी शरण आये हो तुम्हारा पक्ष लेकर लड़ूँगा।"

देवताओं ने कहा—"महाराज ! असुर भी आपकी शरण में आ गये तो !"

भगवान् बोले—"तब फिर शेष ही क्या रह गया, युद्ध ही समाप्त हो गया। अरे, भाई ! लड़ाई तो तभी होती है जब दोनों अभिमान में भर कर अड़ जाते हैं। वे भी मेरी शरण में आ गये तो फिर युद्ध ही न होगा ?"

देवताओं ने कहा—"क्या करें अब हम।"

भगवान् बोले—"बैठे ठाले क्या करोगे। हाथ पर हाथ धरे, आलसियों की भाँति बैठे रहने से पतन होता है। समुद्र को मथ डालो।"

देवता बोले—'समुद्र तो अगाध है।'

भगवान् बोले—'मैं उसे गाध कर दूँगा। कछुआ बन जाऊँगा। मेरी पीठ पर मंदराचल को रखकर मथ लेना।'

देवता बोले—'महाराज ! हम पर तो यह, पर्वत उठेगा नहीं।"

भगवान् बोले—"मैं उसे गरुड़ पर रखकर समुद्र तक पहुँचा दूँगा।"

देवताओं ने कहा—"महाराज! हमसे वह घुमाया भी न जायगा। हमारे हाथों में बल नहीं।"

भगवान् बोले—"मैं तुम्हारे साथ मथूँगा भी। अमृत निकाल दूँगा।"

देवता बोले—"सागर में से अमृत निकलेगा कैसे?"

भगवान् बोले—"मैं घड़े में भरकर ले आऊँगा।"

देवता बोले—"दीनानाथ! ले तो आओगे, असुर उसे लेकर भाग गये तब? हम निर्बल जो ठहरे?"

भगवान बोले—"मैं उनसे छीन लाऊँगा।"

देवता बोले—"छीना झपटी में घड़ा ही टूट गया, अमृत ही बिखर गया, तो सब परिश्रम ही व्यर्थ हो जायगा।"

हँस पड़े भगवान देवताओं की बात सुनकर और बोले—"अरे देवताओं? तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं होता। देखो, मैं लुगाई बनकर केवल अपनी दृष्टि फेंककर ही उनसे घड़े को झपट लूँगा, एक बूँद भी न गिरने दूँगा। तुम्हें सब पिला दूँगा। वे सब देखते के देखते ही रह जायँगे।" देवताओं ने बात मान ली। इसी लिये समुद्र मंथन के समय अजित, कच्छप, धन्वतरि और मोहिनी ये चार अवतार श्रीहरि ने धारण किये।

एक बार सप्त ऋषि मुनि भगवान् के पास गये और स्तुति विनय कुछ भी नहीं की। रोष में भरकर बोले—"महाराज? देखो हमारे पतन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आपके ऊपर है।"

भगवान् तो हक्के बक्के रह गये ऋषियों के क्रोध भरे

मुख की ओर देखकर बोले—"मुनियो! आप मुझ पर क्यों क्रुद्ध हैं, मुझसे जो अपराध बन गया हो उसे क्षमा कर दो और मुझे मेरी भूल बता दो, मैं उसे स्वीकार कर लूँगा।"

क्रोध में भरकर ऋषियों ने कहा—"क्या बता दें महाराज! आप तो मनमानी करते हो और फिर दोष मढ़ते हो हमारे सिर पर। हमसे तो कहते हो—"स्त्री का स्पर्श मत करो। काठ की बनी स्त्री की मूर्ति को पैर से भी मत छूओ।" स्वयं दो दो तीन तीन सहस्र स्त्रियों से विवाह कर लेते हैं। लक्ष्मीजी को सदा अपनी छाती में ही दुबकाये रहते हो। जैसा हम तुम्हें करते देखेंगे वैसे ही हमारी भी इच्छा होगी। तुम तो क्षण भर को लक्ष्मी का साथ नहीं छोड़ते। समुद्र मथा उसमें से लक्ष्मी निकली, तुरन्त उसे हथिया लिया। सुअर बन के भी बहू के बिना न रह सके, पाताल में से उसे ले आये कृष्णावतार में जो तुमने किया उसमें तो आपने पराकाष्ठा ही कर दी। रामावतार में आपकी पत्नी को रावण ले गया था। रोते रोते आपने अपने कमल नयनों को सुजा लिये। कितनी आसक्ति प्रकट की। जब ऐसी ही बात है तो हमें 'तप करो, तप करो, यह क्यों कहते हो। तप में जब गड़बड़ हो जाती है विघ्न हो जाते हैं, तो आप हमें दंड देते हो। हम तप करें और आप लक्ष्मीजी के साथ आनन्द उड़ावें।"

भगवान् ने हाथ जोड़कर कहा—"हाँ मुनियो! बड़ी भारी भूल हो गयी। मैंने इधर ध्यान ही नहीं दिया। कहने वाले तो संसार में बहुत हैं। दूसरों को उपदेश देने वालों की कमी नहीं है। गला फाड़ फाड़कर उपदेश तो बहुत लोग देते हैं किन्तु उसका आचरण नहीं करते। जो आचरण नहीं

मुनियों को सन्तोष हुआ कि चलो हमें
मिल जायगा। मुनिगण अपने अपने आश्रमों
भगवान् ने एक नहीं—नर नारायण—दो रूप
बदरीवन में जाकर घोर तप करने लगे। तप
वेष बना लिया और दिन रात्रि तपस्या
रहने लगे।

महालक्ष्मीजी ने सोचा—"कहाँ चले गये
छोड़कर, चलो उनकी खोज करूँ। नमक
लक्ष्मीजी निकलीं खोज करने के लिये। खोजते
वन में पहुँचीं। दूर से देखकर ही पहचान
कोई वहाँ था नहीं, लपकीं आगे बढ़कर मिलने
ने दूर से ही डाँटकर कहा—"देखो, सावधान
मत करना।"

लक्ष्मीजी हक्की बक्की रह गयीं, क्या बात है
नहीं हूँ, स्नान भी कर चुकी हूँ। ये क्यों मुझे छू

विनय के साथ लक्ष्मीजी बोलीं—"क्यों
निष्ठुर बन गये हो ? पैरों में पड़कर प्रण
करने देते ?"

आप सिर हिलाकर बोले—"नहीं नहीं, मेरे
काम नहीं, दूर रहो।"

लक्ष्मीजी ने दृढ़ता के स्वर में कहा—"
है ? कारण बताओ मुझसे ऐसी घृणा क्यों हो गयी

भगवान् बोले—"मैंने तपस्वी का वेष बनाया है। स्त्री स्पर्श न करने का व्रत ले रखा है।"

लक्ष्मीजी ने रोष में भरकर कहा—"अजी महाराज ! तुम्हारी मति मारी गयी है क्या ? दूसरों की स्त्री का स्पर्श निषेध है। अपनी पत्नी तो अपना आधा अंग ही है।"

भगवान् ने डाँटकर कहा—"मैं पढ़ा पढ़ाया हूँ श्रीमतीजी ! मुझे आप पाठ न पढ़ावें। कृपया लौटकर अपने घर जावें। मैंने आपसे निवेदन कर दिया। तपस्वी के लिये अपनी कोई पत्नी ही नहीं उसके लिये स्त्री जाति माता के समान है। इस रूप में आप कभी भी मेरे साथ नहीं रह सकतीं। तपस्वी को स्त्रियों से बहुत बातें भी न करनी चाहिये केवल प्रयोजन की बात कह देनी चाहिये। अब चली जाओ।" यह कह कर भगवान् समाधि में मग्न हो गये। महालक्ष्मी जी तो भगवान् समाधि में मग्न हो गये। महालक्ष्मी जी तो भगवान् के बिना रह नहीं सकतीं। उन्होंने सोचा—"मुझे तो इनकी सेवा करनी है। स्त्री रूप में तो सेवा लेंगे नहीं। लाओ जिस पेड़ के नीचे ये बैठे हैं उसी में घुस जाऊँ।" यह सोच कर वे बदरीवृक्ष में घुस गयीं। तभी से ऋषि-मुनियों के सम्मुख तपस्या का आदर्श स्थापित करते हुए भगवान् नर नारायण अब तक बदरीवन में तपस्या कर रहे हैं और कल्प के अन्त तक करते रहेंगे। एक यही ऐसा अवतार है जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य के व्रत का सर्वोत्कृष्ट आदर उपस्थित किया है।

कावेरी नदी की इच्छा थी भगवान् अर्चाविग्रह से मेरे बीचमें मेरे घर में निवास करें। किन्तु भगवान् के सब अवतार हुए उत्तर भारत में। कावेरी थी दक्षिण भारत में, वह दक्षिण से आना नहीं चाहती थी। उस समय भगवान् का श्रीरंगम् अर्चा-

विग्रह अयोध्याजी में था। इक्ष्वाकु वंश के राजा उनको परम्परा से पूजा करते थे। वह पूजा कौशलेन्द्र भगवान् रामचन्द्र को भी दशरथजी के पश्चात् प्राप्त हुई। कालान्तर में विभीषणजी आये। उस सुन्दर मूर्ति पर उनकी आँख लग गयी, उनकी दृष्टि पर वह मूर्ति चढ़ गयी। भक्तवत्सल भगवान् तो घट घट की जानने वाले हैं। विभीपणजीके अभिप्राय को समझकर बोले—"विभीषणजी! बोलो तुम क्या माँगना चाहते हो, तुम जो माँगोगे वही हम तुम्हें देंगे।"

विभीषणजी ने कहा—"महाराज! आप देना ही चाहते हैं, तो मुझे भगवान् की इस मूर्ति को दे दें।"

भगवान तो वचनबद्ध थे। श्रीरङ्गजी की मूर्ति उन्हें दे दी। अब श्रीरंगजी तो रसिया ठहरे। उन्हें तो लक्ष्मणजी के सुकोमल करों से पैर दबवाने का अभ्यास पड़ा है, यह राक्षस न जाने कहाँ लंका में ले जायगा, किन्तु करते क्या? पूजा करनेवाले ने दे दिया है, तो मना भी कैसे करें। वे बोले—"विभीषणजी! देखो, सुन लो हमारी बात। आप हमें लिये चलते हो, हम चलने को तैयार हैं, किन्तु एक प्रतिज्ञा आपको करनी पड़ेगी।"

विभीषणजी ने कहा—"यह कौनसी प्रतिज्ञा है महाराज।"

श्रीरंग भगवान् अर्चाविग्रह रूप से बोले—"देखो, तुम हमें ले चलो किन्तु पृथिवी पर मत रखना। जहाँ तुम हमें पृथिवी पर रख दोगे, वहीं हम रह जायँगे।"

विभीषणजी को अपने बल पराक्रम का भरोसा था, वे बोले—"नहीं महाराज! पृथिवी पर रखने का क्या काम। हम आपको अपने सिर पर ले जायँगे और अपने भवन में ही उतारेंगे।"

श्रीरंग भगवान् बोले—"अच्छी बात है चलो।"

यह सुनकर विभीषणजी ने सिर पर भगवान् को रखा और बड़े वेग से दक्षिण की ओर चले। जहाँ वे कावेरी नदी के समीप पहुँचे कि कावेरी के नेत्र भगवान् को देखकर खिल उठे। भगवान् ने भी देखा। चार नेत्र होते ही संकेत से बहुत सी बातें हो गयीं। अब भगवान् उपाय सोचने लगे। कावेरी रोने लगीं, उनका हृदय धड़कने लगा। वे सोचने लगीं राक्षस इन्हें ले गया, तो मेरी इच्छा पूरी न होगी।" कावेरी के बीच में एक छोटा सा टापू सा था। विभीषणजी ने उसमें ज्योंही पैर रखा त्योंही उन्हें लघु शंका का अत्यन्त ही वेग हुआ। उन्होंने बहुत चाहा कि मैं इसे रोकूँ किन्तु वह रुका ही नहीं। इतने में ही भगवान् एक छोटे बालक का रूप रखकर उनके सम्मुख प्रकट हुए और बोले—"विभीषणजी! किस चिन्ता में हो? क्या सोच रहे हो?"

विभीषणजी ने कहा—"अरे भैया! तुम अच्छे आ गये। ये हमारे भगवान् हैं, तनिक देर तुम इन्हें लिये रहो तो मैं लघु शंका कर लूँ।"

बालक ने कहा—"महाराज! मैं लिये तो रहूँगा, किन्तु एक तो मैं बालक हूँ, दूसरे मुझे आवश्यक काम से शीघ्र ही जाना है। आप शीघ्र ही आ जायँ तो मैं ले सकता हूँ।"

विभीषणजी ने कहा—"अरे, भाई! लघुशंका में कितना समय लगता है। यहाँ कोई और है नहीं मुझसे रुका नहीं जाता तुम लिये रहो।" यह कहकर शीघ्रता के साथ तुरन्त उस बालक को श्रीविग्रह देकर वहीं विभीषणजी लघुशंका को बैठ गये। अपने आप लघु शंका लगती तो दूसरी बात थी, अनन्त भगवान् की लगायी लघु शंका थी। वह समाप्त न हो, एक छोटी सी नदी ही बन गयी। कावेरी वहाँ से भागी, कि राक्षस की

लघुशंका मुझसे आकर न मिले। एक धार तो पीछे रह गयी। जिधर लघुशंका का जल बह रहा था, उधर कावेरी भागती जाती थीं।

अब ये बालक बोले—"विभीषणजी! क्या कर रहे हो तुम? लघुशंका में इतनी देर थोड़े ही लगती है। मैं तो थक गया। आइये।"

विभीषणजी बड़े चक्कर में पड़े। लघुशंका करते करते बोले कैसे, वे हूँ हूँ करने लगे।

बालक ने खीजकर कहा—"अब तुम चाहे हूँ हूँ करो चाहे फूँ फूँ मैं तो जाता हूँ।"

यह कहकर वह भूमि पर भगवान् के श्रीविग्रह को रखकर चला गया। चला क्या गया, वह तो वे ही थे, वहीं अन्तर्धान हो गये। भगवान् ने देखा अब तो कावेरी के बीच में बैठ गये। अयोध्या जी से इतनी दूर आये थे, कुछ थक भी गये थे, इसलिये वहीं लेट गये, उनका जो आसन था उसने शेषजी का रूप रख लिया। अब विभीषणजी की लघुशंका शान्त हुई, उन्होंने उठकर हाथ पैर मुख धोये कुल्ला किया स्नान किया, फिर भगवान् के समीप आये और बोले—"चलो महाराज।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले—"विभीषण जी! हमने तो आपको प्रथम ही वचनबद्ध करा लिया था। अब तो हम भूमि पर बैठ गये, अब हम यहाँ से नहीं हट सकते।"

रोष में भरकर विभीषणजी ने कहा—"यह तो महाराज! आपने हमारे साथ छल कपट किया।"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे, भाई काहे का छल कपट।

इस अबला कावेरीका भी मन रख दो। इसका भी मान बढ़ाओ। तुम तो पुरुष हो। लंका से नित्य आकर दर्शन कर जाया करना। यहीं मेरा मन्दिर बना दो। तभी विभीषण जी ने कावेरी के बीच में श्रीरंगमजी का मन्दिर बनवा दिया। वह आद्यावधि वर्तमान है।

इन सब उद्धरणों का एक मात्र सारांश यह है, कि भगवान् जो भी कुछ करते हैं भक्तों की प्रसन्नता के लिये करते हैं। उनके सब काम निर्दोष होते हैं। क्योंकि वे कामनाहीन होते हैं क्रीड़ा के लिये होते हैं। नाटकों में जो भी होता है सब अनुकरण ही तो होता है।

भगवान् पंचवटी में रहते थे। सीताजी के साथ सुख से समय बिता रहे थे। रावण सीताजी को हर ले गया। श्रीराम अपनी प्रिया को ढूँढ़ते हुए चले। आगे मरणासन्न गृद्धराज को देखा। रामजी ने पूछा—"चाचाजी! क्या हाल है?"

उसने कहा—"राघव! रावण जनकनन्दिनी को हर ले गया है, मुझे मरणासन्न बनाकर चला गया है। अब मैं मरना चाहता हूँ।"

राम बोले—"मरो मत, मेरे चाचा! मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।"

चाचा बोले—"राघव! तुम्हारी गोद में मरना कौन न चाहेगा, मुझे मरकर अमर हो जाने दो। यह कहकर राम की गोद में गीधराज मर गये। राम ने उनकी चिता बनायी कपाल क्रिया की, तर्पण किया श्राद्ध किया। जितनी आशा दशरथजी करते थे, वह सब सम्मान मिला मृतक मांस भोजी पक्षियों में अत्यन्त अधम गीध को। दशरथजी को वह क्यों नहीं मिलीजी? राम ने उनका दाह संस्कार क्यों

किया ? गीध पिता न होने पर भी पिता का सम्मान पा गया, दशरथजी पिता होते हुए भी उस सम्मान से वञ्चित क्यों रहे।" इसलिये कि दशरथ स्वयं पिता बने थे, उन्होंने अपनी ओर से याचना की थी। गीध को भगवान् ने पिता बनाया था। दशरथजी को पिता बनाने में भगवान् ने सम्मति दी थी, गीध को स्वयं उन्होंने वरण किया था। भगवान् जिसे वरण कर लेते हैं, वही उन्हें प्राप्त करता है। भगवान् तो विशुद्ध भाव से रीझते हैं। जप, तप, संयम सदाचार तो परिश्रम हैं, जो जितना परिश्रम करेगा उसे उतना फल मिलेगा।

गीध को गति देकर गति दाता राम आगे बढ़े शबरी का पता पूछकर वे उसकी कुटी पर गये। ऋषि मुनियों के आश्रम पर पहिले क्यों नहीं गये जी ? अब तुम्हें बार बार तो बता चुके राम जप, तप के तो भूखे हैं नहीं। जो बड़ाई चाहते हैं, उन्हें वे बड़ा बना देते हैं, जो उन्हें चाहते हैं, उनके घर वे स्वयं चले जाते हैं। शबरी कायक्लेश के लिये जप तप नहीं करती थी, वह तो केवल कालक्षेप के निमित्त माला ले लेती थी। उसका मन तो राम की ओर लगा रहता उसके नेत्र राम के पथ को ही निरन्तर निहारते रहते। मुनियों के राम ने पैर छूए, शबरी के जूठे बेर खाये। नियम से प्रेम बड़ा है यह शिक्षा राम ने दी।

फिर हनुमान्जी ने सुग्रीव से उनकी मित्रता करा दी। राम ने बालि को छिपकर मार दिया। छिपकर क्यों मारा जी ? इसकी निर्दोषता के सम्बन्ध में राम ने बहुत कुछ कहा। वे बातें तो हमारी बुद्धि में विशेष बैठती नहीं, किन्तु एक बात हम सोचते हैं, मान लो बालि को छिपकर मारकर राम ने नीति के विरुद्ध ही किया, किन्तु किया तो मित्र के ही लिये। अपने मित्र चन्द्रमा

के लिये क्या सूर्य जल की चोरी नहीं करता है। मैत्री का निर्वाह करना अत्यन्त कठिन है। प्रथम उपकार करके तब मित्र से आशा रखे। राम को अपनी पत्नी प्राप्त करनी थी। बालि को न मारते तो सुग्रीव को एक ही पत्नी मिलती। एक पत्नी को ढुँढ़वाई में सुग्रीव को एक ही पत्नी देते तो राम और सुग्रीव में अन्तर ही क्या रहता। राम ने बालि को मारकर सुग्रीव को दो पत्नियाँ दीं तब उनसे अपनी पत्नी ढुँढ़वाई, यहाँ राम ने मैत्री निर्वाह का आदर्श उपस्थित किया। मित्र का दुगुना उपकार कर दे, सो भी प्रथम, तब उससे कुछ आशा रखे।

सुग्रीव दो पत्नियों को पाकर राम के काज को भूल गया। अब राम निरन्तर रोते रहते थे। कभी सीता के लिये रोते कभी अवधकी याद आती। एक दिन वे अपने भाई लक्ष्मण से बोले— "सुमित्रानन्दनवर्धन ! लक्ष्मण ! कितनी सरदी पड़ रही है। हाथ ठिठुर रहे हैं। अवध में तो इससे भी अधिक सरदी पड़ती होगी। यहाँ वन में मेरी पत्नी हर गयीं, अकेले रहते रहते मुझे ये जाड़े के दिन काटने को दौड़ रहे हैं, मुझे अवध की याद आ रही है।"

लक्ष्मण ने आज खुलकर कहा—"महाराज ! बड़ों की बात बड़े ही जानें। आज आप जाड़े के कारण दुःख प्रकट कर रहे हैं, पश्चात्ताप कर रहे हैं। मैंने आपसे तभी कहा था आप राज्य न छोड़ें। मैं पिता को पकड़कर बन्द कर देता आप सिंहासन पर बैठ जाते। ये सब इतने क्लेश क्यों सहने पड़ते, तब तो आप बड़े पितृभक्त बन गये, बड़ा त्याग दिखाया। अब आप पश्चात्ताप कर रहे हैं।"

अत्यन्त प्यार से श्रीराम लक्ष्मण से बोले—"अरे, लक्ष्मण ! तू इतने दिन मेरे साथ रहकर भी मेरे भाव को नहीं समझा।

भैया, राज्य के लिये चिन्ता नहीं कर रहा हूँ, न मुझे अपनी ही चिन्ता है, मैं तो सोच रहा हूँ, कि भरत अत्यन्त सुकुमार है, वह राजकुमार है। सदा सुख में पला, दुख उसने देखा भी नहीं। अब वह मेरे वियोग में वनवासियों का वेश बनाकर बस्ती के बाहर वल्कल वसन पहिनकर वास करता है। सरयू का जल अत्यन्त शीतल होता है। प्रातः ऊषाकाल में उठकर वह वल्कल पहिनकर कैसे स्नान करता होगा, मुझे उसी की चिन्ता है आज की सरदी को देखकर मुझे भरत की याद आ रही है। यह कहते कहते राघव को भरत की वह तापसी मूर्ति याद आ गयी और वे हा भरत! हा भरत! कहकर रुदन करने लगे। उस समय वे सीता की सुधि भूल गये थे। शरणागत वत्सलता का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और कहाँ मिलेगा।

बानरी सेना के सहित राम समुद्र के समीप पहुँचे। विभीषण वहाँ शरणापन्न हुआ। सब साथी उस पर सन्देह करते रहे। राम ने सबको डाँटकर कहा—"शरणागत की परीक्षा नहीं की जाती। एक बार जिसने कह दिया—"मैं शरण में हूँ" वह मेरा हो गया। रावण भी कह दे, तो मैं उससे भी युद्ध न करूँगा। भय तो निर्बल करता है। विभीषण जैसा भी हो, मैं उसका परित्याग न करूँगा यह कहकर विभीषण को तुरन्त लंकेश्वर के पद पर प्रतिष्ठित करके उसे अपना निजी मन्त्री भी बना लिया। उससे पूछा—"समुद्र के पार कैसे जायँ ?"

विभीषण ने कहा—"महाराज! आप समुद्र की शरण जायं उसकी प्रार्थना करें।"

राम ने कहा—"अच्छी बात है ऐसा ही करेंगे।

इतना सुनते ही लक्ष्मण की आँखें लाल हो गयीं वे बोले—"राघव! तुम्हारी यही दुर्बलता तो मुझे अच्छी नहीं लगती।

भला जड़, समुद्र से क्या प्रार्थना करना। पानी की शरण जाने से लाभ क्या ?"

राम ने धैर्य के साथ कहा—"अरे, भैया ! यह दुर्बलता नहीं, तू समझता तो है नहीं बीच में कूद पड़ता है। अब विभीषण ने कितना सोचकर तो सम्मति दी है। उसे न मानेंगे तो उसका मन खट्टा हो जायगा। तू देखता तो जा भक्तों का मन रखने को मैं सब कुछ कर सकता हूँ। तीन दिन हम बैठे ही रहे, तो हमारा बिगड़ता ही क्या है।"

इसका लक्ष्मणजी के पास चुप होने के अतिरिक्त कोई उत्तर ही नहीं था। वे चुप हो गये राम कुशासन बिछाकर समुद्र की शरण में गये उसका पूजन करने लगे। तीन दिन तक पूजा किया समुद्र प्रकट नहीं हुआ। राम को क्रोध आ गया, समुद्र बड़ा जड़ है ? मेरी प्रार्थना नहीं सुनता। शरणागत प्रतिपालक प्रभु धनुष पर बाण तानकर खड़े हो गये। अब समुद्र आया उपहार लेकर।"

राम ने कहा—"क्यों जी, लात के देवता, तुम बातों से न माने।"

समुद्र ने कहा—"महाराज ! भूल आपकी थी या मेरी ?"

राम ने कहा—"मेरी क्या भूल थी भाई ! मैं तो भैया ! तुम्हारी शरण गया था।"

हाथ जोड़कर समुद्र ने कहा—"कृपानाथ ! अपराध क्षमा हो यही तो आपने भूल की। संसार को शरण देने वाले तो आप हैं, सबको आप शरण देते हैं और फिर आप मेरी शरण गहते हैं, यह उल्टी गंगा बहाना नहीं तो और क्या है। किसी बच्चे के कोई वृद्ध पैर पकड़े तो क्या बच्चा वृद्ध को आशीर्वाद देगा। स्वामी यदि सेवक की शरण ग्रहण करे, तो क्या सेवक

उन्हें सुख दिया सकता है? जब तक आपने उल्टा काम किया मैं तब तक दुबका रहा। जब आपने स्वामी का काम किया मेरे ऊपर शासन किया तब मैं प्रकट हुआ। अब आप आज्ञा दें क्या मैं सूख जाऊँ? अथवा उतना हट जाऊँ अथवा लंका को बहा लाऊँ?"

भगवान् ने कहा—"समुद्र देव! मेरी ही भूल थी, मैं आप पर शासन नहीं करता। मैं आपको आज्ञा देना नहीं चाहता। आप मुझे उचित सम्मति दें।"

समुद्र ने कहा—"नाथ! जैसे आप मर्यादा सेतु बाँध रहे हैं। वैसे ही मेरे ऊपर सौ योजन लम्बा सेतु बाँध दें। इससे सभी पार जा सकेंगे।"

राम ने नल नील से कह सागर पर पुल बँधवा दिया। जिससे सब भालु वानर पार हो गये।"

संसार सागर से पार करने वाले राम! हमारी ओर भी कृपा की कोर करो। हमारे भी सम्मुख हो जाओ नाथ! आप तो सदा सर्वदा तीर कमान लिये रहते हो। यह तीर कमान हमारे किस काम की? काम हमें व्यथित करता रहे और तुम तीर कमान लिये घूमते रहो। यह क्या अच्छी बात है राघव! अच्छा तुम ही बताओ यह उचित है? आप यह न कहें कि तुम पापी हो। कहाँ हैं पापी हम, अवधकुल कुमुदकलाधर! पापी ही होते तो आप तार देते। न हम पुण्यत्मा ही हैं न पापी ही। हम तो उभय भ्रष्ट हैं। अपने पापियों को तारा पुण्यात्माओं को तारा हम अधकचरों की भी कहीं गति है क्या तुम्हारी सभा में नाथ! यह तो निश्चय हो गया, हम अपने पुरुषार्थ से—साधनों द्वारा—नहीं तर सकते। अब क्या करें। तुम्हारी कथाओं को पढ़ते हैं सुनते हैं लिखते

हैं। धर्म की बात यह है, कि हृदय पसीजता है नहीं, तुम प्यारे नहीं लगते हो जिस लक्ष्मी को निकालने के दिये देवता और असुरों ने समुद्र को मथा वह भी उन्हें छोड़कर तुम्हारे हृदय का हार बन गयी। उस लक्ष्मी की छाया-जो धन है उसी को हम सब कुछ समझते हैं, कोई धनी आता है, तो उससे आशा रखते हैं। हाय! जिस धन से दुखी होकर शान्ति पाने वाले हमारे पास आते हैं उससे ही हम आशा रखते हैं, कैसी हमारी मति मारी गयी है। राम! हमारी ओर कृपा भरी दृष्टि से एक बार निहार लो। तुम्हारा बड़प्पन हमारे हृदय में बैठ जाय, तुम्हें ही हम सब कुछ समझें। राम इस काम शत्रु पर एक बाण छोड़ दो। देखो, तुम तो सोने के मृग को मारने गये थे। यह काम तो मलका मृग है। नाक बन्द करके एक बाण इसपर छोड़ दो मेरे स्वामी! हम अपना कोई अधिकार नहीं जताते कि हम पापी हैं, पुण्यात्मा हैं, दीन हैं, दुखी हैं, निराश्रित हैं, तुम्हारे हैं, जैसे भी कुछ हैं तैसे ही हैं, माँगना भी हम पर नहीं आता। तुम अपनी ही ओर से कृपा करो। जहाँ भी कहीं इस संसार का ओर छोर हो, पार हो, वहीं हमें पटक दो राम! तुम ही पार लगा सकते हो? कब तक प्रतीक्षा करें हे रावणारि!

विनीत—

संकीर्तन भवन, झूसी (प्रयाग)
माघ, कृ० ९, २०१२

तुम्हारा ही दत्त
प्रभुदत्त

सर्वभूतसुहृद् श्रीराम

(६६५)

दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबन्धम् ।
सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ।
बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यै—
र्वेलामगात् स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ।❀
(श्री भा० ९ स्क० १० अ० १२ श्लो०)

छप्पय

निरखि सीयपद चिन्ह पुष्प मृत हय टूट्यो धनु ।
सिय सिर सेवित सुमन भये लखि मृत अमृत-जनु ॥
गृद्ध राजकी दशा देख भूले सिय विछुरन ।
चाचा कहि कहि चरन पकरि प्रभु लागे रोवन ॥
जनम मरन तैं छूटि तनु-तज्यो गीधमरि मोदमहँ ।
रामरूप हिय राम मुख, देह राम की गोद महँ ॥

शरीर पाने का यथार्थ फल यही है, कि वह राम के काज में लगे। जो शरीर, राम काज में नहीं आता वह व्यर्थ है। उस

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! विचित्र कृत्य करने के कारण जिनके समस्त कृत्य नष्ट हो गये हैं। उन जटायु का दाह संस्कार करके, कबन्धको मार कर, कपियों से मित्रता करके बाली को मारकर वानरों से श्रीराम ने अपनी प्रियतमा का पता लगाया। फिर वे भगवान् वानर राज की सेना के सहित समुद्र के समीप आये जिनके पादपद्मों की प्रजापति तथा पशुपति भी पूजा करते हैं।"

शरीर से कोई लाभ नहीं। बहुत से लोग कहते हैं, हम बड़े कुलीन हैं, हमारा जन्म उच्च वर्ण में हुआ है। हम धनवान, रूपवान, विद्यावान्, तेजस्वी, यशस्वी ऐश्वर्यशाली, सात्विक आहार करने वाले तथा नियम से रहने वाले श्रेष्ठ हैं। अमुक-नीच कुल में उत्पन्न व्यक्ति हमारी बराबर कैसे कर सकता है।' अरे भाई! तुम्हारी कुलीनता, शालीनता, धन, विद्या, वय, रूप तेज, यश, ऐश्वर्य व्रत तथा नियम आदि तभी सार्थक हैं, जब इनके द्वारा रामकी सेवा का सुयोग प्राप्त हो। यदि इन सब वस्तुओं को पाकर भी इस सुन्दर शरीर से राम का भजन न बना तो ये सब किसी काम के नहीं। ये केवल विडम्बना हैं! अहंकार को और बढ़ाने वाले हैं। इसके विपरीत जिनके मन में राम के प्रति भक्ति है, प्रभु पाद पद्मों में प्रेम है, तो फिर वह चाहे पशुपक्षी ही क्यों न हो। लोकनिन्दित अधम, घृणित आहार करने वाला अस्पृश्य और अशुभ ही क्यों न हो, प्रभु प्रेम के कारण वह विश्ववन्दित और जगत् पूज्य बन जाता है। भक्तराज महाभाग जटायु इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जटायु का जन्म अंडज योनि में हुआ। वे पक्षी थे। पक्षी भी शुक, सारिका, स्यामा के सदृश शोभनीय तथा पूजनीय नहीं थे। वे घृणित मृतक मांस भोजी गिद्ध थे। शास्त्रों में गृद्ध को इतना अशुभ बताया है, कि जिस भवन की छत पर वह बैठ जाय, उस भवन का पुनः संस्कार कराना चाहिये। गृद्ध की दृष्टि, गृद्ध का दर्शन, गृद्ध का स्पर्श परम अमंगलप्रद-अशुभ-माना जाता है। वे ही गृद्धराज जटायु, राम भक्ति के कारण-शक्ति स्वरूपा सीता के निमित्तकार्य करने और तनुत्यागने के कारण विश्ववन्द्य तथा लोक पूज्य बन गये। राम भक्ति के सम्मुख सभी व्यर्थ हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सीताजी का अन्वेषण करते

हुए लक्ष्मण सहित श्रीराम जब उस स्थान पर आये जहाँ जटायु जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, तब श्रीराम ने दूर से उसे कोई राक्षस ही समझा। क्योंकि उसके दोनों ही पङ्ख कट गये थे। रावण ने उसकी चोंच और पंजों को नष्ट कर दिया था। रक्त में सने वे एक मांसका की लोथके समान दिखाई देते थे। वे तड़प रहे थे गले में खड्ग घुस जाने से वे बोल नहीं सकते थे। वे बार-बार रक्त उगल रहे थे और साँस-साँस पर राम राम रट रहे थे। श्रीराम लक्ष्मण से बोले—"लक्ष्मण! अवश्य ही इस राक्षस ने मेरी पत्नी को खाया है। आज मैं इसे मारे बिना न छोड़ूँगा। "यह कहकर श्रीराम सर सन्धान करने को उद्यत हुये। उस समय गृद्धराज ने बड़े कष्ट के साथ कहा "राम!"

राम का नाम सुनकर लक्ष्मण दौड़कर जटायु के समीप गये और चिल्लाकर बोले—"रघुनन्दन! ये तो हमारे पितृव्य महाभाग जटायु हैं। इन हमारे चाचा गृद्धराज की दुर्दशा किसने कर दी। ये तो जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। तात! इन्हें आकर अवलोकन करें।"

चाचा जटायु का नाम सुनते ही सर्वभूत सुहृद श्रीराम दौड़कर गृद्धराज के समीप आये। वे गृद्ध के क्षत विक्षत शरीर को देखकर सीता के वियोग दुःख को भूल गये। जटायु पङ्ख कटे पर्वत शिखर के समान पृथिवी पर पड़े थे। रक्त से भीगा शरीर धूल से लिपटा हुआ था। श्रीराम ने उनकी मुड़ी हुई रक्त से लथपथ चोंच सावधानी से उठाकर अपनी गोद में रखी और उनके सिर पर शनैः शनैः अपना कोमल कर फेरते हुए लक्ष्मण से बोले—"लक्ष्मण! देखो, इस पक्षी ने हमारा कितना उपकार किया है। निश्चय ही यह सीता हरण करने वाले से लड़ा होगा।

उसीने इसे घायल किया है। देखो, इसने सीताकी रक्षा के निमित्त कितना दुष्कर कार्य किया है। यह धर्मात्मा और यशस्वी है।' इस प्रकार लक्ष्मण से कहकर श्रीराम रोते रोते बोले— "पक्षिराज! यदि तुम बोल सकते हो, तो मुझे इतना ही बता दो, मेरी प्राणप्रिया को कौन हर कर ले गया है। किसने यह क्रूरकर्म किया है। कौन मक्खी को खाकर पचाने का साहस कर सकता है। तुम्हारी यह दुर्दशा किसने कर दी है?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीराम के इस प्रकार बार बार पूछने पर दुखी और मरणासन्न गृद्ध प्रसन्न हुए। श्रीराम के दर्शन पाकर मानों उनके शरीर में पुनः जीवन और उत्साह आ गया हो। बड़े कष्ट से वे कहने लगे—"राम! राक्षसों का राजा रावण राजकुमारी सीता का बल पूर्वक हरण करले गया है। मैंने उससे छुड़ाने का प्रयत्न किया। हम दोनों में घनघोर युद्ध हुआ। अन्त में उस दुष्टने मेरी चोंच, पंजे और पङ्ख काट दिये और वह सीता को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला गया। राघव! आप चिन्ता न करें। मैं ज्योतिष विद्या में निष्णात हूँ जिस योग में वह सीता को ले गया है, उस योग में वह उसके पास रह नहीं सकती। सीता आपको अवश्य मिलेगी। आप चिन्ता न करें मुझे बोलने में बड़ा कष्ट हो रहा है। अब मेरे प्राण पखेरु उड़ना ही चाहते हैं, राम!" इतना कहते ही उसके मुख से फिर रक्त निकल पड़ा। जटायु की लाल लाल आँखें फट गयीं। उसने श्रीराम की गोदी में ही सिर रखे रखे अपने शरीर को त्याग दिया। जो गति बड़े बड़े ज्ञानियों योगियों और विरागियों को भी प्राप्त नहीं होती वह गति उस मृतक मांस भक्षी गृद्ध ने रामभक्ति के प्रभाव से प्राप्त कर ली। उसका पाञ्च-भौतिक नश्वर शरीर श्रीराघव की गोदी में पड़ा रह गया। उसके

प्राण पखेरू परलोक को प्रयाण कर गये। उस जटायु की मृत्यु से श्रीराघव अत्यन्त दुखी हुये, समीप में ही बैठे लक्ष्मणजी से वे बोले—"लक्ष्मण! ये गृद्धराज हमारे पिता के मित्र थे। जैसे हमारे चक्रवर्ती पिता पृथ्वी के समस्त पुरुषों के सम्राट थे वैसे ही ये जटायु समस्त गृद्धों के राजा थे। ये कुलीन और धर्मात्मा थे। हमारे लिये तो ये पिता दशरथ के समान ही माननीय पूजनीय और वन्दनीय थे। देखो, जानकी की रक्षा के निमित्त इन्होंने अपने प्रिय प्राणों का प्रसन्नता पूर्वक परित्याग किया है। ये हमारे आत्मीय स्वजन थे। इस अरण्य में ये ही एक मात्र हमारे शुभ-चिन्तक हितेच्छु बन्धु थ। लक्ष्मण! मैं इनका आत्मीय पुरुष की भाँति दाह संस्कार करना चाहता हूँ। तुम अरण्य से सूखी सूखी लकड़ियाँ बीन लाओ। विलम्ब करने का काम नहीं है। इनका दाह संस्कार करके इन्हें विधिवत् पिंड देकर गोदावरी में हम इनके निमित्त तर्पण करेंगे।"

अपने बड़े भाई के वचन सुनकर लक्ष्मण तुरन्त वन से बहुत सी सूखी सूखी लकड़ियाँ चुन लाये। उन लकड़ियों से श्रीराम ने स्वयं ही विधिवत् चिता बनाकर, उस पर मृतक गृद्ध राजा के शरीर रखकर रोते-रोते उसमें अग्नि लगा दी। जटायु के जर्जरित शरीर जलकर भस्म हो गया। तब श्रीराम ने जटायु का आहार की वस्तुओं से गोल गोल पिंड से बनाकर मन्त्र पढ़कर उनके उद्देश से पक्षियों को दिये। अन्त में गोदावरी के तट पर जाकर साश्रुनेत्रों से दोनों भाइयों ने अपने पितृव्य सदृश गीधराज को जलाञ्जलि दी और कहा—"हे चाचा जी! आप हमारे दिये हुए इस जल को ग्रहण कीजिये।"

सूतजी कहते हैं—मुनियों! जिनके चरणों की रज के लिये ब्रह्मादिक बड़े बड़े देवता तरसते रहते हैं, वे ही सर्वलोकनाथ

रघुनाथ अपने हाथों से एक माँसभोजी पक्षी का पिता के सदृश और्ध्वदैहिक कार्य कर रहे हैं, यह उनकी कैसी भक्तवत्सलता, कैसी शरणागत प्रतिपालकता है। इस प्रकार गृद्धराज की क्रिया करके लक्ष्मण को साथ लिए हुए सीताजी की खोज में श्रीराम निकले। अब उन्हें यह तो विदित हो गया कि सीता मरी नहीं जीवित है, उसे राक्षसों ने खाया नहीं किन्तु काम पीड़ित राक्षस राज ने उन्हें हरा है। वह हरकर जानकी को दक्षिण दिशा में ले गया है, किन्तु वह कामचारी राक्षस रहता कहाँ है, इस समय सीता को लेकर उसने कहाँ किस दिशा में छिपा दिया है, यही बात श्रीराम को जाननी थी। वे राक्षसों की माया से अनभिज्ञ थे अथवा उनके लिये विज्ञता अनभिज्ञता, क्या वे तो भीतर बाहर की सब जानते हैं, घट घट की जानते हैं, केवल लोक शिक्षार्थ नर नाट्य कर रहे हैं। क्रीड़ा के निमित्त ये कारुणिक कौतूहल कर रहे हैं।

सीताजी को ढूँढ़ते हुये श्रीराम अपनी धुन में चले जा रहे थे, लक्ष्मण उनके पीछे थे उसी समय दूर से ही लक्ष्मण ने एक विकराल वेष वाली राक्षसी को देखा। वह देखने में बड़ी मोटी थी, सिर के बाल उसके खुले थे। आँखें चमकीली भयानक थीं। ओठ मोटे और काले थे। दाँत बड़े और भयानक थे। सूप के समान उसके दोनों कान थे। पर्वत की कन्दरा के समान उसका मुख था, उसमें बिजली के समान उसकी चमकीली जिह्वा लपलप कर रही थी। उसका कंठ कठोर था, शरीर का चर्म रूखा और मोटा था। स्तन पर्वत के शिखर के समान थे। पेट फूला हुआ लम्बा और मोटा था। उसके नितम्ब स्थूल थे। वह लक्ष्मण के रूप पर आसक्त हुई उनकी ओर दौड़ी आ रही थी। आते ही उसने न पूछा न जाँचा लक्ष्मण से आकर लिपट गयी और गाढ़ा-

लिंगन करती हुई बोली—"हा प्राणनाथ ! मुझे तुम अपनी अनुचरी बना लो, मुझ काम पीड़िता अनुरक्ता को अपना लो इस अपने भाई को छोड़ दो, मेरे साथ वन वन उपवनों में विहार करो।" यद्यपि राम दुखी थे, किन्तु राक्षसी की बातें सुनकर उन्हें हँसी आ गयी। लक्ष्मण जी तो सूर्पणखा की हँसी से सम्हल गये थे। उन्होंने देखा अब बात मत बढ़ाओ, उसी प्रयोग को काम में लाओ इस कामिनी को अपने किये का फल चखाओ, इसे भी सूर्पणखा की बहिन नकटी बूची बनाओ।" ऐसा सोचकर उन्होंने तीक्ष्ण तलवार से निशाचरी की नाक जड़ मूल से उखाड़ दी। कानों का अस्तित्व मिटा दिया और स्तनों को छाँट कर सम कर दिया और कह दिया—"भाग जाओ, आनन्द से इस वन में स्वच्छन्द विहार करो।" नाक कटने पर वह राक्षसी रक्त बरसाती रोती चिल्लाती वहाँ से भाग गयी। उसके चले जाने पर दोनों आगे बढ़े।

आगे उन्होंने एकत्रित एक विचित्र खेल देखा। एक चार कोश लम्बा हाथ मृग, पशु पक्षी, भैंसा हाथी सभी को पकड़ रहा है। राम लक्ष्मण भी उसके पीछे झपट्टे में आ गये। लक्ष्मण ने देखा एक बिना सिर पैर का राक्षस पृथिवी पर पड़ा है। उसके पेट में दाँत हैं उन्हीं में एक आँख चमक रही है। जाँघें पेट में घुस गयी हैं दो बड़ी बड़ी बाहें वन में विचरण करने वाले जीवों को समेट लाती हैं और वह पेट वाले मुख में रखकर सबको निगल जाता है। दोनों भाइयों को उस राक्षस ने कसकर अपने बाहु पाश में बाँध लिया और अट्टहास करते हुए बोला—"आज सुन्दर आहार मिला। इन वृषभों के समान दोनों चिकने और मोटे पुरुषों को खाकर मैं तृप्त हो जाऊँगा। मनुष्य का मांस मुझे अत्यधिक प्रिय है।"

भयङ्कर राक्षस की ऐसी आकृति, ऐसा बल पुरुषार्थ और साहस देखकर लक्ष्मण तो डर गये। बालकपन के कारण वे घबरा से गये। शीघ्रता के साथ वे बोले—"राम! अवश्य ही हम मृत्यु के मुख में पहुँच गये हैं। आप एक काम करें, इसी प्रकार मुझे इसके मुख में छोड़कर आप किसी प्रकार बचकर भाग जायँ। आप मेरी चिन्ता न करें। उद्योग करके आप सीता को खोजें और अवधपुरी जाकर सुखपूर्वक राज्य भोगें।"

यह सुनकर वीरता के स्वर में श्रीराम ने कहा—"क्षत्रियर्षभ लक्ष्मण! तुम्हें ऐसे वचन शोभा नहीं देते। वीर, तुम इस अधम राक्षस के एक हाथ को काट दो दूसरे को मैं काटता हूँ, इस पहाड़ के समान मायावी राक्षस को मार कर पृथिवी में गाड़ दो।"

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी ने उस कबन्ध राक्षस की भुजा काट दी। दूसरी भुजा श्रीराम ने जड़ मूल से उड़ा दी। भुजाओं के कट जाने पर उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए बड़ी नम्रता के साथ पूछा—"वीरो! तुम दोनों कौन हो और इस भयंकर बीहड़ वन में किस कारण से विचरण कर रहे हो। यदि अनुचित न समझो तो मुझे अपना यथार्थ परिचय दो।"

यह सुनकर लक्ष्मण बोले—"ये अवध के चक्रवर्ती महाराज दशरथ के सबसे बड़े पुत्र श्रीराम हैं, मैं इनका आज्ञाकारी छोटा भाई लक्ष्मण हूँ। पिता की आज्ञा से श्रीराम अपनी प्रिया सीता के साथ वन आये थे वन में राक्षसों ने इनकी पत्नी को हर लिया हम उन्हीं देवी का अन्वेषण करते हुए घूम रहे हैं। तुम कौन हो क्या तुमने देवी सीता को राक्षसराज रावण के फंदे में फँसी इधर से जाती हुई देखा है?"

कबन्ध ने कहा—"धन्य भाग अहो भाग्य! राम! मैं

ही प्रतीक्षा कर रहा था। मैं राक्षस नहीं दनु नामक दानव का पुत्र हूँ। पहिले मैं ऐसा भयंकर राक्षस वेष बनाकर प्राणियों को भयभीत किया करता था। इसीलिये स्थूलशिरा मुनि ने मुझे शाप दिया तुम ऐसे ही भयंकर हो जाओ। मुनि के शाप से मेरा सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया मैं भयानक कुरूप राक्षस हो गया। इस शरीर से भी मैंने घोर तप करके लोक पितामह ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। उन्होंने मुझे दीर्घ जीवी होने का वर दिया। इससे मुझे बड़ा दर्प हो गया मैं देवराज इन्द्र से भिड़ गया। वज्रपाणि शतक्रतु ने अपने अमोघ वज्र से मेरा सिर तथा जंघायें पेट में घुसेड़ दीं। मेरे हाथ लम्बे-लम्बे हो गये। योजनभर में जो जीव आ जाता है, उसे ही मैं पकड़ कर खा जाता हूँ। मुनि ने मुझे बता दिया था, जिस दिन श्रीरघुकुलतिलक श्रीराघव आकर तेरी बाहु को काट देंगे और तेरे शरीर को जला देंगे उसी दिन तू शाप से विमुक्त हो जायगा। सो राघव आपने अनुग्रह करके मेरा उद्धार कर दिया, मुझे शाप से छुड़ा दिया अब आप मुझे जला और दीजिये। मैं आपका उपकार करूँगा। जानकी के पाने का अव्यर्थ उपाय बताऊँगा मेरे बताये उपाय से आप जनकनन्दिनी को अवश्य प्राप्त कर लेगे।

कबन्ध के इन वचनों से श्रीराम को बड़ी प्रसन्नता हुई लक्ष्मण की सहायता से एक बड़े भारी गड्ढे में सूखी-सूखी लकड़ियाँ एकत्रित कीं। चारों ओर से कबन्ध के शरीर को ढककर उसमें आग लगा दी। आग लगते ही वह दिव्य देह बनाकर दमकते हुए दिव्य रथ पर सवार होकर अग्नि शिखा से दूसरी अग्नि के समान निकला। उसने कृतज्ञता पूर्वक प्रभु के पादपद्मों में प्रणाम किया और बोला—"राघव! अब मेरी दिव्य दृष्टि हो गई है। अब मैं सब देख और समझ सकता हूँ। यहाँ से समीप ही

पम्पा नामक सुन्दर स्वच्छ सलिल वाला सुखद सरोवर है। उसके पास में ही ऋष्यमूक नामक पर्वत है। उससे सटा हुआ है। मतंगवन में है। महर्षि मतंग ने वहाँ बहुत वर्षों तक कठोर तप किया था। उन्हीं के नाम से वह वन विख्यात है। मुनि तो वैकुंठ वासी बन चुके उनकी शिष्या परम तपस्विनी शबरी यहाँ रहती है। वह रात्रि दिन आपके आगमन की प्रतीक्षा में बैठी रहती है! महाभाग! जब आप चित्रकूट पधारे थे, तभी मतंग मुनि स्वर्ग चले गये। जाते समय अपनी शिष्या से कह गये थे, कि कुछ काल में श्रीराम इस आश्रम पर आवेंगे। उनका आतिथ्य सत्कार करके ही तू स्वर्ग में हमारे समीप आना। गुरु के बिना उस भामिनी की इस दुःख पूर्ण जगत् में रहने की इच्छा नहीं थी, किन्तु राम दरश की प्यासी प्रभु के सत्कार करने के लोभ से उसने गुरु आज्ञा शिरोधार्य की। राघव! उसी दिन से वह तपस्विनी बहुत प्रातःकाल उठती है। आश्रम को लीपती है, बहुत दूर तक पथ को परिष्कृत करती है। नीची भूमि में कोमल मृत्तिका बिछाती है। जल भरकर घड़ा लाती है समीप ही से सुन्दर-सुन्दर चख-चख कर स्वादिष्ट फल लाती है। फल तोड़ते समय भी देखती जाती है, मेरे जीवन धन, सर्व श्रेष्ठ अतिथि आ तो नहीं गये हैं। फलों को धोकर रखती है। माला लेकर एक टक भाव से वह आपकी पथ की ओर निहारती रहती है। पत्तों की तनिक भी खड़खड़ाहट हुई कि वह संभ्रम के साथ उठकर खड़ी हो जाती है। कहने लगती है—"मेरे अच्युत आ गये अपने राम को आते न देखकर पुनः बैठ जाती है। आपके श्रुतमधुर परम पावन नामों का जप करती रहती है। सायंकाल तक जब आप नहीं, आते तो सोचती है, आज किसी मुनि के आश्रम पर रह गये होंगे। काल अवश्य आ जायँगे।" यही सोचते-सोचते सो जाती है।

स्वप्न में भी वह आपको साँवरी सूरत को निहार कर संभ्रम के साथ उठ पड़ती है। पाद्य अर्घ्य लेने दौड़ती है। आपको न पाकर पुनः आपके लोक वन्दित सुमधुर नामों का कीर्तन करने लगती है। इस प्रकार उसकी नित्य की चर्या है। हे पतितोद्धारक राम! आपके दर्शनों की प्रतीक्षा में बैठी हुई उस शबरी की इच्छा पूर्ति कीजिये। उसे दर्शन देकर कृतकृत्य कीजिये। पुनः ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव से मित्रता कीजिये। वह बड़ा बली, विद्वान् और विवेकी वानर है। वह कृतज्ञ और कृपालु है। वह जानकी का पता अवश्य लगा सकेगा।"

यह सुनकर श्रीराम उल्लास के साथ बोले—"दानव! सुग्रीव कौन है, वह हमसे मित्रता क्यों करेगा? हम तो राज्यभ्रष्ट हैं, हमारी स्त्री हरी गई हैं, हम दुखी घर बार विहीन होकर वन वन भटक रहे हैं। ऐसे ऐश्वर्यहीन व्यक्ति से वानरों का राजा मैत्री क्यों करने लगा?"

यह सुनकर दिव्य दानव बोला—"राघव! मैत्री सदा समान शील वालों में होती है। निःस्वार्थ मैत्री करने वाले तो सर्वश्रेष्ठ होते हैं, ऐसे मित्र संसार में विरले होते हैं बड़े बड़े भाग्य से मिलते हैं। जिनसे हमारा कार्य निकले और हमसे जिनका कार्य निकले ऐसे परस्पर भाव भावित मित्र मिलने भी दुर्लभ हैं। जिस प्रकार आप राज्यभ्रष्ट हैं, उसी प्रकार वह भी राज्यभ्रष्ट हैं, जिस प्रकार आपकी पत्नी हरी गई है, उसी प्रकार उसकी भी पत्नी हरी गई है, जिस प्रकार घर द्वार छोड़कर आप वन-वन भटक रहे हैं, उसी प्रकार वह भी अपना नगर छोड़कर वन में काल यापन कर रहा है। जिस प्रकार आपके सहायक लक्ष्मण हैं उसी प्रकार उसके सहायक पवनतनय हनुमान हैं। जिस प्रकार आप भक्त की खोज कर रहे हैं उसी प्रकार वह

भी किसी स्वामी का अन्वेषण कर रहा है जिसके अधीन रहकर वह अपनी गई हुई श्री को पुनः प्राप्त कर सके। प्रभो! आप अग्नि को साक्षी देकर सुग्रीव से मैत्री करें आपका कल्याण होगा।"

श्रीराम ने कहा—"दानव! प्रतीत होता है, तुम सर्वज्ञ हो। कृपा करके मुझे यह बताओ कि सुग्रीव किसका पुत्र है। उसे नगर से किसने निकाल दिया? उसकी स्त्री क्यों हरी गई? इन बातों को सुनकर मैं निश्चय करूँगा, कि सुग्रीव से मैत्री उचित होगा या नहीं?

यह सुनकर दानव बोले—"प्रभो! ब्रह्माजी के एक मानसिक पुत्र ऋक्षराज हुए। एक सरोवर में स्नान करने के कारण वे सुन्दर स्त्री हो गये और सूर्य की दृष्टि उस पर पड़ने से उसके बालि और सुग्रीव दो पुत्र हो गये। उन दोनों पुत्रों को लेकर वह ऋक्षराज या ऋक्षराजी ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्माजी की कृपा से उसे पुंसत्व प्राप्त हुआ और समस्त वानर भालुओं का वह राजा हुआ। सहस्रों लक्षों वर्षों तक वह धर्म पूर्वक राज्य करके पञ्चत्व को प्राप्त हुआ। तदनन्तर मंत्री पुरोहित और प्रजाके लोगोंने बालिको राजा बनाया। उन दोनों भाइयों में बड़ा स्नेह था। एक साथ खाते थे, एक साथ उठते बैठते थे। उसी समय दुन्दुभि का बड़ा भाई मायावी नामक दानव बालि से लड़ने आया। बालि उसके पीछे लड़ने दौड़ा। सुग्रीव भी भ्रातृ स्नेह वश उसके पीछे-पीछे गया। मायावी एक गुफा में घुस गया। बालि भी सुग्रीव को गुफा के द्वार पर बिठाकर भीतर गया। सुग्रीव द्वार पर बैठा-बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। एक वर्ष पर्यन्त बालि नहीं निकला। अंत में बहुत सा रक्त आदि निकला। जिससे सुग्रीव ने समझा मेरे भाई को राक्षस ने मार डाला। अतः वह

बड़ी मारी शिला से द्वार बंद करके अपने घर चला आया। प्रजा के लोगों ने उसे राजा बना दिया।

कुछ काल के अनंतर बालि आया। अपने भाई को राज्य सिंहासन पर बैठा देखकर और रानियों के साथ सुखोपभोग करते देख उसे क्रोध आया। उसने समझा राज्य पाने को ही यह मुझे बिल में बंद करके चला आया था। अतः उसने सुग्रीव को मार पीट कर घर से निकाल दिया। उसकी स्त्री को अपनी स्त्री बना लिया। बालि के डर से सुग्रीव समस्त पृथिवी पर घूमा है। उसे सप्तद्वीपा वसुमती के कोने कोने का ज्ञान है। ऋष्यमूक पर्वत पर बालि को मतंग मुनि का शाप है, अतः वह वहाँ आ नहीं सकता। इसीलिये सुग्रीव अपने हनुमान आदि चार सचिवों के सहित उस पर्वत पर निर्भय होकर रहते हैं। राघवेन्द्र आप उस सुग्रीव से मैत्री करें। आप दोनों ही समान दुखी हैं। दोनों ही परस्पर में सहायक के इच्छुक हैं। सुग्रीव से सौहार्द्र होने पर सीता आपको अवश्य मिल जायगी। अच्छा, अब मुझे तो आज्ञा दीजिये।" यह कहकर वह दानव दिव्य देह रखकर सुर लोक सिधार गया। श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण के सहित पम्पा पुरी की शोभा निहारते हुए आगे बढ़े। वे तपस्विनी शबरी का आश्रम पूछते-पूछते चले। पम्पासर के समीप ही मतंगवन में तपस्विनी शबरी रहती थी। दूर से ही उसने श्रीराम को आते देखा। उसके नेत्र आनंद के कारण खिल उठे। वह परम प्रमुदित हुई उसकी चिरकाल की अभिलाषा पूरी हुई। वह प्रेम में विभोर होकर अपने आपे को भूल गई। उसने नयनों के नीर से प्रभु को पाद्य प्रदान किया। पलकों के पावड़े बिछाकर उन्हीं से उनके चरणों की धूलि झाड़ी। गद्-गद् वाणी से वह भक्त वत्सल भगवान् की स्तुति करने लगी, किन्तु कुछ कह न सकी। श्रीराम

उसके प्रेम को समझ गये, क्योंकि वे ही सबके हृदय के यथार्थ भाव को जान सकते हैं। अत्यंत ही स्नेह से राघव ने कहा—"माताजी! बड़ी भूख लगी है, कुछ प्रसाद तो खिलाओ।"

"हाय! मेरे राम को भूख लगी है, वे तो सदा प्रेम के भूखे ही रहते हैं। उनके अनुरूप मेरे पास भोजन कहाँ है। जो भी रूखे सूखे कुछ फल हैं। जैसे भी मीठे खट्टे ये जंगली बेर हैं उन्हीं का मैं अपने जीवन सर्वस्व को भोग लगाऊँगा। उन्हीं का नैवेद्य चढ़ाऊँगी। उन्हीं को खिलाकर अपनी चिर अभिलषित आशा को फलवती बनाऊँगी।" ऐसा सोचकर वह भीतर से बेर आदि फल ले आयी श्रीराम ने अत्यन्त ही सराहना करते हुए, स्वयं बार-बार माँग-माँगकर बड़ी रुचि और आह्लाद के सहित उन फलों को खाया। शबरी को कृतकृत्य बनाया।

समीप में रहने वाले मुनियों ने भी श्रीराम के पधारने की सूचना सुनी थी। वे अपने तेज, तप, प्रभाव, विद्या, वय तथा व्रतनियमादि के अभिमान में निश्चिन्त थे, कि राम स्वयं ही हमारे यहाँ आवेंगे। किसी ने सोचा हम यहाँ के तेजस्वी मुनि हैं। राम जिससे भी पूछेंगे यहाँ सर्व श्रेष्ठ मुनि कौन हैं? तो सब हमारा ही नाम बतावेंगे, अतः वे हमारे ही आश्रम में सर्व प्रथम आवेंगे। किसी ने सोचा—"सर्वत्र हमारे उग्र तप की ख्याति है। राम तपस्या से ही प्रसन्न हैं। स्वयं भी तपस्वी वेष बनाये हुए हैं। अतः प्रथम हमारा ही दर्शन करेंगे, हमें ही कृतार्थ करेंगे। कुछ सोचते थे, हम ही यहाँ सब से अधिक प्रभाव शाली हैं, हमारे समान विद्वान् कोई दूसरा नहीं है, हम ही सबसे अवस्था में बड़े हैं हम कुलीन हैं। हमारे नियम, व्रत सदाचार आदि की सर्वत्र ख्याति है। श्रीराम हमारे ही निकट सर्वप्रथम आवेंगे। किन्तु सबकी आशा पर पानी फिर गया। राम

प्रथम पहुँचे एक शूद्रा की कुटी पर। जो शबर जाति की भिलि

थी। जिससे कुलीन कहलाने वाले घृणा करते थे। सबका श्री

मान चूर हो गया। राम उसी की कुटी पर जमकर बैठ गये। अब मुनि क्या करते सबके सब मिलकर शबरी की कुटी पर गये। आज समस्त मुनियों को अपनी कुटी पर आते देखकर शबरी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उसने बड़ी ही श्रद्धा भक्ति के सहित भूमि में सिर टेककर सभी ऋषि मुनियों को प्रणाम किया और उनका यथोचित स्वागत सत्कार किया।

कुशल प्रश्न के अनन्तर मुनियों ने कहा—"भगवन्! आप हमारे यहाँ नहीं पधारे?"

भगवान् ने कहा—"कोई बात नहीं सब आपका ही है। यहाँ आप सबके एक ही स्थान पर दर्शन हो गये मेरे योग्य कोई सेवा बताइये।"

मुनियों ने कहा—"प्रभो! और तो आपकी कृपा से सब ठीक ही कार्य चल रहा है। हमें यहाँ जल का बड़ा कष्ट है। पम्पा सरोवर यहाँ से दूर है। पहिले हमारे यहाँ एक सुन्दर सरोवर था। उसमें आजकल कीड़े पड़ गये हैं।"

घट घट की बात जानने वाले श्रीराम समझ गये, कि इन सब ने अभिमान में भर कर मेरी परम भक्ता शबरी का अपमान किया है, इसीलिये ये जल के कष्ट का दुख भोग रहे हैं। जल ही जीवन है। जो भक्त का अपमान करता है उसका जीवन सुखमय कैसे हो सकता है। उन्होंने सरलता के साथ कहा—"मुनियो! मेरी परम भक्ता शबरी यदि उस जल में स्नान करले तो इसके अङ्ग स्पर्श मात्र से वह जल स्वच्छ हो जाय।"

यह सुनकर शबरी तो थर थर काँपने लगी। उसे महान् आश्चर्य हुआ। मुझ भक्ति शून्या पतिता अबला को राघव परम भक्ता बता रहे हैं। मुझमें तो भक्ति की गंध भी नहीं। प्रेम का लेश भी नहीं है। अनुराग का अंकुर भी नहीं। मुनियों ने अब

भक्ति का महत्व समझा। जो अपने को तृण से भी नीच समझते हैं जो वृक्ष से भी अधिक अपमान सहन में सहिष्णु हैं। जो स्वयं अमानी रहकर सदा दूसरों को मान देता रहता है, वही यथार्थ में भक्त है। सभी महर्षि शबरी को सादर सरोवर के समीप ले गये उसके स्नान करते ही जल दुग्ध के समान सुन्दर स्वच्छ सुस्वादु बन गया। अब महर्षियों ने भक्ति की महिमा जानी। शबरी ने अपने गुरु का सम्पूर्ण आश्रम दिखाया, उनके अभी तक वृक्षों पर सूखते हुए वल्कल दिखाये। उनकी अग्निहोत्र की प्रज्वलित अग्नि के भी दर्शन कराये। शबरी राम दर्शनों से कृतार्थ हो गयी थी, उसकी सभी इच्छायें पूरी हो गयी थीं। उसने राम को पा लिया। उनका आतिथ्य करके मानव शरीर का यथार्थ फल पा लिया। उसकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति हो गयी। उसके हृदय की अज्ञानमयी ग्रन्थि खुल गयी, उसके समस्त संशय दूर हो गये। उसके समस्त पाप पुण्य क्षीण हो गये। वह राम के नाम का उच्चारण करती हुई, राम के रमणीय रूप का हृदय में चिन्तन करती हुई, इस शरीर को त्याग कर परम पद को प्राप्त हुई। गुरुओं के मार्ग का उसने भी अनुसरण किया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! इस प्रकार कबन्ध का उद्धार करके, शबरी को अपने अमोघ दर्शन देकर श्रीराम पम्पासर की शोभा देखते हुए सुग्रीव से मैत्री करने के निमित्त ऋष्यमूक पर्वत को लक्ष्य करके आगे बढ़े।"

छप्पय

गीध कर्म सब करे परम गति ताहि दिखाई।
कियो कबन्ध कृतार्थ सुरति शबरीकी आई॥
शबरी निरखे राम धाम शोभा सुखखानी।
समुझि साधना सफल सकल फल कर्म भुलानी॥
आतिथ करि रघुनाथ को, भगतिनि अति प्रमुदित भई।
राम नाम मुख हृदय छवि, धरि तनु तजि हरिपुर गई॥

(६६६)

नेदंयशो रघुपतेःसुरयाञ्चयाऽऽत्त
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः
किं तस्य शत्रु हनने कपयः सहायाः ॥*
(श्री भा० ९ स्क ११ अ० २० श्लोक०)

छप्पय

प्रेम बेर चखि चले सोच सीता हित भारी।
कपि कस होवै मित्र मिलै कस जनकदुलारी ॥
अगनित जे छिन माहिँ विश्व ब्रह्माण्ड बनावें।
ते कपि मैत्री चहैं करुण नरनाट्य दिखावें ॥
राम लखन सुग्रीव लखि, पवनतनय पठये तहाँ।
सिर चढ़ाइ लाये तुरत, धरि कपिवर बैठे जहाँ ॥

एक लोकोक्ति है संसार में कोई भी ऐसा अक्षर नहीं जो मंत्र

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं— "राजन् जिन्होंने देवताओं की याचना पर लीला से ही नर तनु धारण किया है, जिनसे बढ़कर या जिनके बराबर भी प्रभावशाली कोई नहीं है, उन रघुनन्दन के लिये बहुत से राक्षसों को मार डालना या समुद्र के ऊपर पुल बँधवा देना यह कोई बहुत यश वाली बात नहीं है। उन सर्वसमर्थ लीलाधारी के लिये राक्षसों के वध में वानर भला क्या सहायता दे सकते हैं। यह सब उनकी वीय क्रीड़ा है, लीला है।"

न हो, कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो ओषधि न हो। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसमें कुछ न कुछ योग्यता न हो, किन्तु इन सबको नियमन करना, सबसे योग्यतानुसार काम लेना यही कठिन कार्य है। संसार में सब सुलभ है, एक मात्र योजक ही दुर्लभ है। कुछ न कुछ काम तो सभी कर सकते हैं। काम कर लेना यह कोई महत्व की बात नहीं है। दूसरों से प्रसन्नता पूर्वक उनकी रुचि रखते हुए काम करना यही कठिन कार्य है। वानर एक तो स्वभाव से ही चंचल होते हैं, फिर वे एक नियम में निबद्ध होकर कार्य नहीं कर सकते। एक स्थान में स्थिर नहीं रह सकते, स्वेच्छानुसार उछलते हैं, कूदते हैं, किलकारियाँ मारते हैं। उनको सैनिक विधानुसार संगठित करके काम लेना नियम में आबद्ध करके युद्ध करना यह भगवान् का ही कार्य है। भगवान् जानते थे चंचल और अस्थिर स्वभाव के वानरों को नियमन करना सरल नहीं है। श्रीराम तो सरल हैं। वे तो बड़े भोले हैं। सबका मन रखकर काम करते हैं। सबको प्रोत्साहित करते हैं, स्वयं अर्थी बनकर उनके द्वार पर जाते हैं। स्वयं अनाथ से होकर उन्हें सनाथ करने स्वयं जाते हैं। यह तो उनकी भगवत्ता है। यही तो उनकी अपने आश्रित अनुचरों के प्रति असीम अनुकम्पा है। प्रभु सर्वसमर्थ होकर भी वानरों के सम्मुख रोते हैं, गिड़-गिड़ाते हैं उनसे सहायता करने की प्रार्थना करते हैं, उनकी कृपा के इच्छुक होते हैं। राम का कैसा जनम रंजन करने का सुन्दर स्वभाव है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! राम शबरी के आश्रम से पम्पा की ओर जा रहे हैं। पम्पासर परम सुखद है, उसमें भाँति-भाँति के सुन्दर सुगन्धियुक्त कमल खिल रहे हैं। उनमें विविध रंग की मछलियाँ इधर से उधर फुदक रही हैं, उनके फुदकने से कमल

के नाल हिल रहे हैं। विविध जातियों के वृक्षों पर नाना प्रकार के पुष्प लग रहे हैं। कोई फलों से लदा है कोई फूलों से फूल रहा है। भ्रमर इधर से उधर गुञ्जार करते हुए मँड़रा रहे हैं। मृगवृन्द अपनी अपनी भाषा में कलरव कर रहे हैं। श्रीराम सर की शोभा को देखकर सुखी के स्थान में दुखी हुए। वे कहने लगे—"यह सरोवर कितना सुन्दर है, इसका सलिल कितना सुखद सुगन्धित और स्वच्छ है, किन्तु जानकी के बिना यह मुझे अग्निकुंड से भी अधिक दाहक प्रतीत होता है। मेरी प्रिया होती, तो वह इस रमणीक सरोवर को देखकर कितनी प्रमुदित होती। इसके शीतल जल में वह मेरे साथ स्नान करती। हाय। आज मैं इसके अमृतोपम जल को स्पर्श करने में भी असमर्थ हूँ। मेरी प्रिया को कमल अत्यन्त ही प्रिय थे। वह नील कमल को हाथ में लेकर बार-बार कहती—"प्राण नाथ! आप नालाम्बुज श्यामल हैं। आप नील सरोरुह श्याम हैं। आपका नीलवर्ण तो इस कमल को तिरस्कृत कर रहा है। जल भरे मेघ से भी सरस आपका स्वरूप है। तब मैं कहता तुम कमलनयनी हो। तुम्हारे पाद कमल के सदृश कोमल हैं। तुम कमल वन में क्रीड़ा-कमल लिये साक्षात् कमल के सदृश दिखाई देती हो। सचमुच उस तन्वङ्गी को कमल से उपमा देना उसका अनादर करना है। हाय! उसके बिना ये कमल मुझे काटने दौड़ते हैं। मैं कमल की जड़ को तोड़कर लाता सो वह उसका साग बनाती। कमल गट्टा की मिगी निकालकर उसके विविध व्यंजन बनाती। उसके बिना इन कमलगट्टों को तोड़कर मैं क्या करूँगा। लक्ष्मण! क्या जानकी हमें फिर मिलेगी? मैं उसके मिलने की आशा से ही जी रहा हूँ। मैं उसे पुनः पालूँ, इसीलिये अपने हृदय में उठे क्रोध को पी रहा हूँ। संसार में इतना भीषण दुःख सहने

को मैं ही रहा हूँ। लक्ष्मण! क्या वानरराज सुग्रीव मेरे ऊपर कृपा करेंगे! क्या वे मेरी प्रियतमा का पता लगावेंगे? क्या वे हमें अपनावेंगे। सौमित्र यदि मुझे जानकी न मिली तो मैं निश्चय ही मर जाऊँगा! जानकी के बिना अवध न जाऊँगा, वहाँ जाकर मैं कैसे अपने परिजन और पुरजनों को मुँह दिखाऊँगा। हाय! भैया! पूर्वजन्म में हमने कौन-कौन से पाप किये हैं, जिनके परिणाम स्वरूप हमें इतने क्लेश सहन करने पड़ रहे हैं।"

श्रीराम को इस प्रकार अधीर होते देखकर शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण बोले—"प्रभो! आपको इस प्रकार प्राकृत पुरुषों की भाँति शोक करना शोभा नहीं देता। आप धैर्य धारण करें, मोह को त्याग दें, पुरुषार्थ का सहारा लें। पुरुषार्थ से सभी संभव है। उद्योग के आगे कोई बात कठिन नहीं। जब धनुष धारण किये हुए आपका सेवक मैं आपके साथ हूँ, तब आपको क्या चिन्ता। सीता यदि पृथिवी के भीतर होंगी, तो मैं पृथिवी को फोड़कर उन्हें ला सकता हूँ, यदि वे स्वर्ग में होंगी तो मैं स्वर्ग जा सकता हूँ। रावण को जीवित पकड़ ला सकता हूँ। आप सोच को छोड़ दें। दीनता धारण न करें।"

लक्ष्मण की वीरतापूर्ण वार्ता बात सुनकर रघुवर स्वस्थ हुए। उन्होंने कहा—"लक्ष्मण! अब मैं स्वस्थ हुआ। अब तुम यही उद्योग करो, जिससे जनकनन्दिनी मिल सके, सुग्रीव से जिस प्रकार मैत्री हो, वह उपाय सोचो। चलो ऋष्यमूक पर्वत को ही लक्ष्य करके सीधे चलें।" यह कहकर श्रीराम लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत की ओर चल दिये।

ऋष्यमूक शैल के एक सुन्दर सुहावने शिखर पर अपने सचिवों सहित सुग्रीव जी बैठे सम्मति कर रहे थे। उसी समय

सामने से सूर्य के सदृश तेजस्वी श्रीराम लक्ष्मण को देखकर वे डर गये। उन दोनों के विशाल धनुष और अक्षयतूणीर तथा बड़ी-बड़ी विशाल बाहुओं को देखकर वानरों के छक्के छूट गये। व्यग्रता प्रगट करते हुए सुग्रीव बोले—"ये दोनों कौन हैं, क्यों ये हमारी ही ओर आ रहे हैं? इनकी आकृति प्राकृति चाल ढाल को देखने से तो ये कोई वीर शिरोमणि दिखाई देते हैं। इन दोनों के कन्धे वृषभ के समान हैं, ये मत्त मातंग के समान निर्भय होकर चले आ रहे हैं। इनके धनुष विशाल हैं। बाण विचित्र नुकीले और अव्यर्थ हैं। ये शूरवीर विजयी और यशस्वी प्रतीत होते हैं। कहीं वालि ने मुझे मारने के निमित्त तो इन्हें नहीं भेजा है। वह स्वयं तो शाप के कारण यहाँ आ नहीं सकता। यदि उसने इसीलिये इन्हें भेजा है, तो ये अवश्य मुझे मार डालेंगे। अवश्य ही ये बनावटी वेष बनाकर घूम रहे हैं नहीं तो इनके वस्त्र तो मुनियों जैसे हैं और धनुषबाण शूरवीरों जैसे। ये साधारण मुनि नहीं हैं। ये हमारी ही ओर बढ़े चले आ रहे हैं अब हमें क्या करना चाहिये। इनके सम्मुख जाना चाहिये या छिप जाना चाहिये। इनसे बातें करनी चाहिये या मौन होकर गुहाओं में घुस जाना चाहिये। छिपकर हम इनसे कहाँ जा सकेंगे। जहाँ हम जायँगे वहीं ये भी पहुँच जायँगे।"

सूतजी कहते हैं—"राजन्! सचिवों सहित सुग्रीव बहुत ही भयभीत हो गये थे। वे शैल शिखर से उतर कर नीचे आ गये। वानर वृक्षों पर चढ़ गये, कोई इधर से उधर जाने लगे, कोई उछलने कूदने लगे, कोई दुखी होकर रोने लगे। सभी वानर ऋष्यमूक को छोड़कर उसके समीप के मलय नामक पर्वत पर चले गये। वे सब भयभीत थे। सुग्रीव किसी बड़ी गुफा में छिपने की बात सोच रहे थे। उन सब वानरों को भयभीत

देखकर सुग्रीव के सर्वश्रेष्ठ सचिव- अंजनानन्दवर्धन पवनतनय श्री हनुमान्‌जी बोले—"आप लोग इस प्रकार क्यों डर रहे हैं आप साधारण शाखावृन्द जंगली वानर तो हैं नहीं। आप देव पुत्र हैं। आप सब सभ्य और सुशिक्षित हैं। ये जो दो धनुषधारी वीर सिंह के समान चले आ रहे हैं, इन्हें मैं बालि का भेजा हुआ नहीं समझता। ये तो कोई दिव्य पुरुष हैं। आप सब भय का परित्याग करें, मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ, ये कौन हैं? और किस कारण इस गहन निर्जन वन में पैदल ही भ्रमण कर रहे हैं।"

हनुमान जी के पास ऐसे सुन्दर सरल धीरता और वीरता युक्त वचन सुनकर सुग्रीव बोले—"हनुमान! तुम बड़े ही वीर, विवेकी, बुद्धिमान और बली हो। तुम जाकर बुद्धिमानी के सहित इनके अंतःकरण की बात को जानो, ये किस उद्देश्य से हमारे समीप आ रहे हैं।"

सुग्रीव की आज्ञा पाकर महाबली हनुमान्‌जी साधु का वेष बनाकर शीघ्रता पूर्वक श्रीराम और लक्ष्मण के समीप आये, उनका अभिनन्दन और जयजयकार करके हनुमान्‌जी ने पूछा—"आप लोग कौन हैं? यहाँ क्यों विचरण कर रहे?"

श्रीराम जी यह सुनकर लक्ष्मण की ओर देखने लगे। बुद्धिमान लक्ष्मण भी भगवान् के भाव को समझकर हनुमान् जी से पूछने लगे—"साधुवर्य! आप कौन हैं? पहिले आप अपना परिचय दें।"

लक्ष्मण जी के प्रश्न को सुनकर और उनकी चेष्टा आकृति और प्रश्न करने के ढंग से उनके मनोगत भावों को समझकर हनुमान्‌जी निर्भय होकर बोले—"मैं वानर राज सुग्रीव का सचिव हूँ, पवन का तनय हूँ, हनुमान् मेरा नाम है। अपने

स्वामी की आज्ञा से आपका परिचय पाने के निमित्त मैं आया हूँ।"

लक्ष्मणजी ने आश्चर्य के साथ कहा—"वानर का सचिव साधु कैसे हुआ ? तुम तो मनुष्य हो, शुद्ध संस्कृत में बातें कर रहे हो। आपकी वाणी विशुद्ध है, इसमें व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी नहीं। इस विषय में हमें संदेह है।"

यह सुनकर हँसते हुए हनुमान् बोले—"देव ! मैं पवन का पुत्र हूँ, साधारण वानर नहीं। हम सब इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हैं, जब जिसका चाहें रूप बना सकते हैं। आपका भेद जानने के लिये मैंने साधु वेष बना रखा है, मैं साधु नहीं वानर हूं, मेरे स्वामी सुग्रीव को उसके भाई वालि ने घर से निकाल दिया है, उसकी स्त्री को हर लिया है। राज्य से भ्रष्ट स्त्री के हरे जाने से दुखी मेरे स्वामी आपका पूर्ण परिचय जानना चाहते हैं।"

हनुमान् सुग्रीव के सचिव हैं। सचिव से सचिव ही बातें करें, इस भाव से श्रीराम अपने सुहृद् सखा सचिव तथा अनुज लक्ष्मण की ओर देखने लगे। श्रीराम के मनोगत भावों को चेष्टा से ही समझने वाले सुमित्रानन्द वर्धन समस्त शुभ लक्षणों से लक्षित लक्ष्मि सम्पन्न लक्ष्मण बोले—"अवध के चक्रवर्ती महाराज दशरथ के ये बड़े पुत्र कौशल्यानन्द वर्धन श्रीराम हैं। मैं इनका अनुज भृत्य और सेवक हूँ। मुझे सब लोग लक्ष्मण कहते हैं। मैं अपने भाई और भाभी के साथ इनकी सेवा के निमित्त पिता की आज्ञा से वन में आया था। यहाँ राक्षसों ने मेरी भाभी श्रीसीताजी को हर लिया है। उसी का अन्वेषण करते हुए हम यहाँ आये हैं। हम वानरराज सुग्रीव की सहायता चाहते हैं।"

हनुमानजी ने कहा—"आपको वानरराज सुग्रीव का पता किसने बताया ?"

लक्ष्मणजी बोले—"समीप ही हमें शाप युक्त कबन्ध मिला था। जब मरकर उसने दिव्य देह धारण कर ली, तो उसी ने हमें सब बातें बताईं। उसने कहा—"आप सुग्रीव की सहायता से सीताजी को अवश्य प्राप्त कर लेंगे।"

हनुमान जी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"प्रभो! हम सब प्रकार से आपकी सेवा करेंगे। हम दशों दिशाओं में जगज्जननी जानकी का अन्वेषण करेंगे। वानरराज सुग्रीव भी अपने भाई के कारण दुखी हैं, इनकी भी भार्या हरली गई है. वे भी राज्यच्युत होकर वन में निवास कर रहे हैं। वे भी आप वीरों को पाकर परम प्रमुदित होंगे। वे भी आपसे मैत्री करने को इच्छुक हैं। चलिये, मैं आपको वानरराज सुग्रीव के समीप ले चलूँ।" इतना कहकर हनुमान् जी ने साधु वेष त्याग दिया। वे अपने यथार्थ रूप में आ गये। उन्होंने एक कंधे पर श्रीराम को और दूसरे कंधे पर श्रीलक्ष्मण जी को चढ़ा लिया और वायु वेग से क्षण भर में ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँच गये। दोनों भाइयों को शिला खम्भों पर सत्कार पूर्वक बिठाकर वे मलय पर्वत पर गये और सुग्रीव से बोले—"राजन! ये शूरवीर पराक्रमी क्षत्रिय कुमार हैं। दोनों चक्रवर्ती महाराज दशरथ के पुत्र हैं। आप मैत्री करने को समुत्सुक हैं, आप उनसे चलकर वार्तालाप करें।"

हनुमानजी के ऐसे वचन सुनकर सुग्रीव को परम प्रसन्नता हुई। उन्होंने वानर वेष छोड़कर मनुष्य रूप धारण किया और हनुमानजी के साथ श्रीराम लक्ष्मण के समीप आये। सुग्रीव से मिलकर श्रीराम परम सन्तुष्ट हुए। सुग्रीव ने भी सहर्ष श्रीराम की चरण वन्दना की और अपना दुःख उन्हें सुनाया। सुग्रीव

का दुख श्रवण करके श्रीराम का हृदय करुणा से भर गया। वे वानर राज सुग्रीव को धैर्य बधाते हुए बोले—"सुग्रीव तुम चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारा दुःख दूर करूँगा। तुम्हारे समस्त शत्रुओं का शीघ्र ही संहार करूँगा। तुम्हें राज्य सिंहासन पर बिठाऊँगा।"

सुग्रीव ने कहा—"राघव ! मैं आपसे मैत्री चाहता हूँ। आप को मित्र पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। आपकी मैत्री अमोघ है। आप मुझे अपना लेंगे तो मैं अनाथ से सनाथ हो जाऊँगा। मैं अपने गये हुए गौरव को पुनः प्राप्त कर लूँगा। यदि आप मुझे अपना मित्र बनाना स्वीकार करते हों, तो देखिये, यह मेरा हाथ फैला हुआ है। इसे आप अपने वरदहस्त में ग्रहण करें। अग्नि को साक्षी देकर आप मुझसे प्रतिज्ञा पूर्वक मैत्री करें।"

सुग्रीव के ऐसे सुन्दर सुखद कोमल और करुणा पूर्ण वचन सुनकर भक्त वत्सल श्रीराम परम प्रमुदित हुए। उन्होंने सुग्रीव के हाथ को अपने हाथ में लिया। उसी समय हनुमानजी ने दो लकड़ियों को जलाकर अग्नि पैदा की। दोनों मित्रों ने अग्नि को साक्षी देकर प्रतिज्ञा की तथा अग्नि की प्रदक्षिणा की। मित्रता हो जाने पर परस्पर एक दूसरे को स्नेह भरी दृष्टि से देखने लगे। सुग्रीव श्रीराम के रूप रस का पान करते-करते अघाते ही नहीं थे। कमल दल लोचन श्रीराम दूर्वादल द्युति श्रीदशरथ तनय के दर्शनीय रूप को निहारते-निहारते वानरराज की तृप्ति ही नहीं होती थी। तब बड़े स्नेह से श्रीराम ने कहा—"सखे ! तुम्हारा भाई वालि तुमसे शत्रुता क्यों करता है ? उसने तुम्हें नगर से क्यों निकाल दिया ? क्यों तुम्हारी प्यारी पत्नी का अपहरण कर लिया ?"

श्रीराम के वचन सुनकर सुग्रीव आदि से अन्त तक सब

कथा सुना दी। पिता के परलोक वास के अनन्तर भाई-भाई में प्रेम, दैत्य का आगमन, उसके पीछे दोनों का जाना, बालि का गुफा में उसे मारने को घुसना, एक साल तक न निकलना, रक्त के निकलने से बालि वध का संदेह होने पर गुफा से लौटकर राज गद्दी पर बैठना, पीछे बालि के आने पर उसका क्रुद्ध होना, उसे नगर से निकाल कर स्त्री का अपहरण कर लेना, ये सब बातें बतायीं। उन्हें सुनकर श्रीराम बोले मित्र ! तुम धैर्य धारण करो, मैं तुम्हारे सभी दुःखों को दूर कर दूँगा। तुम्हारे शत्रु रूप भाई को मैं यमसदन पठाऊँगा, तुम्हें पुनः राज्य दिलाऊँगा, तुम्हारी पत्नी से तुम्हें मिलाऊँगा। मित्रवर ! अपने अनुकूल आचरण करने वाली पति प्राणा पत्नी के बिना पुरुष को कितनी मार्मिक वेदना होती है, कितना अधिक क्लेश होता है, इसका अनुभव मैं पग-पग पर कर रहा हूँ। भैया, मैं भी अपनी प्राण प्रिया के हरे जाने से दुखी हूँ। मैं भी सीता के वियोग जन्य क्लेश से क्लेशित हूँ।"

यह सुनकर सुग्रीव बोला—"राघव ! मेरे सचिव हनुमान् ने मुझे सब बातें बताई हैं। वैदेही को दुष्ट रावण हर ले गया है, यह बात मैंने सुन ली है। मैंने जानकी को भली प्रकार देखा तो नहीं, किन्तु आकाश में एक स्त्री पीली साड़ी पहिने हा राम ! हा लक्ष्मण ! चिल्लाती हुई जा रही थी। उसे कोई राक्षस लिये जाता था। अब मैं अनुमान करता हूँ, कि वह अवश्य ही आप की प्यारी पत्नी रही होगी, निश्चय ही वह राक्षसराज रावण रहा होगा। वह कोमलाङ्गी तड़प रही थी विलाप कर रही थी। हमें देखकर उसने अपने वस्त्र में लपेट कर कुछ आभूषण डाल दिये थे। आप उस वस्त्र और आभूषणों को पहिचानें।"

इतना सुनते ही मानों श्रीराम के कर्णों में किसी ने अमृत

उंड़ेल दिया हो। वे अत्यन्त ही उत्सुकता के साथ बोला—"वानर राज! लाओ, लाओ, उन आभूषणों को अविलम्ब लाओ, शीघ्र लाओ मेरे तन की तपन बुझाओ। वैदेही के वस्त्राभूषणों को मैं अवश्य पहिचान लूँगा। उनमें से मेरी प्रिया के श्रीअङ्ग की गंध आती होगी, उसे सूँघने से मुझे सुख होगा। अब देरी करने का काम नहीं।"

श्रीराम को इस प्रकार अत्यधिक उत्सुक देखकर सुग्रीव तुरन्त उठे और एक गहन गुफा में घुस गये। वहाँ वस्त्र में बँधे आभूषणों को लेकर वे तुरन्त लौट आये और आकर बोले—"रघुनन्दन! देखिये, ये वे ही आभूषण हैं, वेही वस्त्र है, ऊपर से विलाप करती हुई देवी ने ये सब वस्तुएँ डाली थीं।"

श्रीराम ने लपक कर बड़ी उत्कंठा से वे वस्तुएँ लीं। वस्त्र को लेकर वे बार-बार सूँघने लगे। उस समय उन्हें ऐसा सुख हो रहा था, मानों वैदेही मिल गई। उनके नयनों से निरन्तर नीर निस्रत हो रहा था, जिससे वह वस्त्र गीला हो गया था। एक-एक करके वे आभूषणों को देखने लगे। 'यही मेरी प्रिया की चद्दर का टुकड़ा है। जब मैं माया मृग के पीछे गया था तब वह इसी पीली रेशमी चद्दर को धोती के ऊपर ओढ़े हुए थी। ये मेरी प्रिया के कुंडल हैं, जब ये उसके कानों में बार बार हिलते थे, तब उसके कपोलों की कैसी आभा होती थी। ये मेरी कालान्तर के कमनीय कंकण हैं। इसके नग और मणि माणिक्य उसके पतले पतले कोमल करों में उसी प्रकार दमका करते थे, मानों सुवर्ण लता पर रंग विरंगे सुन्दर पुष्प खिले हों। इन कंकणों से विभूषित उसकी सुन्दर बाहुएँ बड़ी ही सुन्दर प्रतीत होती थीं।

चूड़ियों से जब वे लड़ जाते तो उनसे विचित्र झनकार निकलती। ये मेरी प्राणवल्लभाके नूपुर हैं। अरुण चरणके अत्यंत गुद-

गुदे, जिनके तल देश सम थे, ऐसे मेरी हृदयेश्वरी के कमलों

भी तिरस्कृत करने वाले पैरों में जब ये नूपुर बजते थे, तो ऐस

लगता था, मानों कोई मधुर-मधुर वाद्य बज रहा हो, हंसिनि के समान वह इधर से उधर घूमती। दूर से ही इन नूपुरों की ध्वनि सुनकर मेरे हृदय में गुदगुदी होने लगती। इन कंकणों में लग जाने से जब ये शब्द करने लगते हैं, तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानों मेरी प्रिया आ रही है। सौमित्र! तुम इन आभूषणों को देखो, शोक के कारण मुझे बुद्धिभ्रम तो नहीं हो गया है? ये कुंडल सीता के ही हैं न? ये कंकण मेरी कान्ता के करों को ही सुशोभित करने वाले हैं न? इन नूपुरों की ध्वनि से तुम परिचित हो न? बताते क्यों नहीं? तुम इन्हें पहिचानते हो न?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्रीराम ने बार बार अपने छोटे भाई लक्ष्मण से आभूषणों के सम्बन्ध में प्रश्न के ऊपर प्रश्न किये, तब हाथ जोड़कर अत्यंत ही नम्रता के साथ लक्ष्मण ने कहा—"प्रभो! देवी सीता के मुख को मैंने कभी स्वेच्छा से देखा नहीं। इसलिये मैं उनके कुंडलों को नहीं पहिचानता। मैं तो सदा उनके सम्मुख नत मस्तक होकर खड़ा होता था इसलिये मैं उनके करों के कंकणों को भी पहिचानने में असमर्थ हूँ। हाँ, जगज्जननी के पादों के इन नूपुरों को मैं भली भाँति जानता हूँ। नित्य ही मैं सायं प्रातः उनके पाद पद्मों में प्रणाम किया करता था। अतः इनसे मैं भली भाँति परिचित हूँ। ये जगज्जननी जानकी के ही चरणों के आभूषण हैं।"

इतना सुनते ही श्रीराम ने लक्ष्मण को कसकर हृदय से लगा लिया और बार-बार अश्रु विमोचन करते हुए कहने लगे—"लक्ष्मण! तुम धन्य हो! ऐसे भाई को पाकर मैं धन्य हुआ, कृतार्थ हुआ। लक्ष्मण! मैं इन आभूषणों को भली भाँति जानता हूँ। देवी के अंग स्पर्श के साथ न जाने मैंने इन्हें कितनी बार छुआ है, इनकी प्रशंसा की है। इन आभूषणों को बचा

बनाकर न जाने कितनी वार मेरी सीता से प्रेम-कलह हुई है। हाय ! मुझे मेरी प्रिया कभी फिर मिलेगी ? कभी फिर मैं उसके सुकुमार कोमल अंगों में इन्हें पहिनाऊँगा। आज प्रिया से विहीन ये आभूषण रोते हुए से दुखी दिखाई देते हैं। जैसे सरोवर से कमल पृथक होने से म्लान हो जाते हैं वैसे ही ये आभूषण श्रीहीन से दिखाई देते हैं। फिर भी ये मेरे लिये सुखकर ही हैं ये मुझे मेरी प्रिया की याद दिला रहे हैं।" इस प्रकार प्रलाप करते हुए श्रीराम उन आभूषणों को बार बार देखने लगे। बार बार हृदय से लगाने लगे। बार बार उनकी प्रशंसा करने लगे। वे कभी रोते कभी चिल्लाते। कभी कभी हा! प्रिये! कहकर रुदन करने लगते। उनकी ऐसी दशा देखकर सुग्रीव उन्हें धैर्य बँधाते हुए बोले—"राघव ! आप इतने अधीर न हों। देखिये, मैं तो वानर हूँ, वानरों की कामुकता सर्व विदित है। स्त्री मेरी भी हरी गई है, किन्तु मैं तो इतना अधीर कभी होता नहीं। आप पुरुष नहीं पुरुषोत्तम हैं नर नहीं नारायण हैं, मानव नहीं सनातन पुराण पुरुष हैं। फिर भी आप ऐसे अधीर हो रहे हैं ! रामचन्द्र आप शोक का परित्याग कीजिये। मन में दीनता न लाइये अधीरता धारण न कीजिये। हृदय दौर्बल्य को छोड़िये। मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ, कि मैं आपकी प्रिया को खोजकर लाऊँगा। वह कहीं भी हो मैं उसे अपने वानरों के सहित ढूँढकर आपसे मिला दूँगा। जानकी को कोई भी उसी प्रकार नहीं पचा सकता जिस प्रकार विष मिले अन्न को, कच्चे पारे को, ग्रास के साथ गयी मक्खी को तथा भूल से निगले हुए काँच को कोई पचा नहीं सकता। रघुनन्दन ! आप मेरे ऊपर विश्वास करें, मैं जैसे होगा तैसे जानकी को रावण से छुड़ाकर लाऊँगा। आपकी कृपा से ही मैं यह कार्य कर

सकता हूँ। मैं मित्र के नाते आपके शत्रु का संहार कर दूँगा।"

मित्र शब्द सुनते ही श्रीराम बोल उठे—"वानरराज! मैंने अग्नि को साक्षी देकर तुमसे मित्रता की है, आर्य कुलीन पुरुषों का ऐसा सदाचार है, कि वे मित्र का उपकार प्रथम करते हैं और उसका कभी प्रत्युपकार नहीं चाहते। मैं सर्वप्रथम तुम्हारे बन्धुरूप में उत्पन्न शत्रु का संहार करूँगा। पहिले तुम्हें क्लेश देने वाले, तुम्हारी स्त्री और राज्य को अपहरण करने वाले बालि को अपने बाण का लक्ष्य बनाऊँगा। पहिले उसे यम सदन पठाऊँगा। तुम मुझे बालि के समीप ले चलो।"

सुग्रीव ने कहा—"नरनाथ! मैं समझता हूँ आपका बालि के समीप चलना उचित नहीं। बालि के बल को मैं भली-भाँति जानता हूँ, आप यद्यपि शूरवीर, तेजस्वी और धनुर्धर हैं, किन्तु मैंने आज तक आपके बल को कभी देखा नहीं। बालि इतना बली है कि उसने इतने बलवान् इस दुंदुभी असुर को मारकर यहाँ पर्वत पर योजनों दूर फेंक दिया था। देखिये, सम्मुख ये दुंदुभि की हड्डियाँ पड़ी हुई हैं।"

श्रीरामचन्द्रजी ने उस विशाल दैत्य की अस्थियों को पैर के अँगूठे से दश योजन फेंक दिया और हँसकर बोले—"कहो, तुम्हें विश्वास हुआ या नहीं।"

सुग्रीव बोला—"विश्वास तो प्रभो! मुझे आपके वचनों पर ही है। मैं आप पर अविश्वास नहीं करता, न मैं आपकी परीक्षा ही करता हूँ, किन्तु इस बात से मैं यह निर्णय नहीं कर सकता कि मेरे विश्वविजयी भाई को आप मार सकेंगे। जिस समय मेरे भाई ने ये अस्थियाँ फेंकी थीं उस समय दुंदुभि तुरन्त मरा था। उसके शरीर में मास मेदा सभी थे। सूखे गीले में बहुत अन्तर है। अब तो ये अस्थियाँ मात्र हैं।

सूख गई हैं। यद्यपि आपने दूसरों के न करने योग्य दुष्कर कर्म किया है, फिर भी मुझे अभी बालि के वध होने में संदेह हो रहा है।"

भगवान बोले—"तुम्हें जिस कार्य से विश्वास हो जाय वही मैं करके दिखा दूँ।"

सुग्रीव बोले—"महाराज यह तो परीक्षा हुई। आपकी परीक्षा लेने योग्य मेरी योग्यता नहीं है।

भगवान् बोले—"परीक्षा की क्या बात है भैया! तुम विश्वास के लिये संतोष के लिये जो भी कहो वही मैं कर सकता हूँ। तुम संकोच मत करो। बताओ।"

अत्यंत संकोच के साथ दीन वाणी में सुग्रीव ने कहा—"प्रभो सम्मुख ये सात ताल के वृक्ष हैं। बालि की बाहु इन्हीं तालों के समान है, यदि आप एक ही बाण में एक ताल को वेध दें तो मैं समझ लूँगा आप बालि को मार सकते हैं।" इतना सुनते ही भगवान् ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। वह बाण उन आकाश चुम्बी विशाल सातों तालों को एक साथ ही वेधकर पाताल में होकर तुरन्त श्रीराम के तूणीर में लौट आया। इस अद्भुत आश्चर्य को देखकर सुग्रीव के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उसने गद्गद् वाणी से कहा—"राघव! मैंने आपका बल जान लिया। मेरे सब संशयों का छेदन हुआ। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया, कि एक बालि की तो बात ही क्या है आप सहस्र बालियों को एक साथ मार सकते हैं। हिमालय को जड़ से उखाड़ सकते हैं, पृथिवी को फाड़ सकते हैं। आप विश्व ब्रह्माण्ड का बात की बात में विनाश कर सकते हैं आप सर्व समर्थ हैं। आप जैसे मित्र को पाकर मैं सनाथ हुआ। कृतकृत्य हुआ। राघव अब आप जो भी उचित समझें करें।"

श्रीराम ने कहा—"सुग्रीव! सर्व प्रथम तो मुझे तुम्हारे शत्रु वालि को मारना है, तुम्हें वानरों के राज्य सिंहासन पर बैठाना है, तुम्हें तुम्हारी स्त्रियों को दिलाना है। जब तुम सुखी हो जाओ तो मित्रता के नाते जो भी उचित समझना करना। मैं सीता के बिना जी नहीं सकता। वे मेरी प्राण प्रिया मेरे बिना न जाने कैसे कैसे क्लेश सह रही होंगी।"

सुग्रीव ने कहा—"हे राघव! आप चिन्ता न करें, मैं दशों दिशाओं में सहस्रों वानर भेजकर आपकी पत्नी का पता अवश्य लगाऊँगा। जैसे होगा तैसे सीताजी को मैं राक्षसों से छीन लाऊँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सुग्रीव के वचन सुनकर श्री राम को महान् हर्ष हुआ। प्रेम के कारण उनकी आँखों में आँसू आ गये। वे बोले—"सुग्रीव! इस बीहड़ वन में तुम्हें मित्र पाकर मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ। अब मैं अपने को सनाथ पाता हूँ। अब तुम मेरे साथ किष्किंधा चलो अपने भाई को मुझे दिखाओ जब तुम दोनों लड़ोगे तो मैं वालि को मार डालूँगा। तुम इस विषय में निश्चित हो जाओ।" इतना कहकर श्रीराम ने अपने सखा सुग्रीव के साथ वालि वध के लिये किष्किन्धा की ओर प्रस्थान किया।"

छप्पय

रघुवर परिचय पाइ आइ बैठे सब वानर।
करें सखा सुग्रीव, राम करुना के सागर॥
रोइ रोइ सुग्रीव दुखद निज कथा सुनाई।
दशा देखि अति दीन दृगन महँ जल भरि आई॥
भुज उठाइ प्रभु प्रन करो, [illegible]
सिय पट भूषन कपि दये, [illegible]

मैत्रीनिर्वाहक श्रीराम

[६६७]

न जन्म नूनं महतो न सौभगम्-
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस—
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥*
(श्री भा० ५ स्क० १९ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

एक बान तैं सात ताल वेधे जब रघुपति ।
भइ प्रतीति कपि हृदय हर्ष मनमहँ बाढ्यो अति ॥
सँग लिये सुग्रीव बालि वध हित हरि आये ।
समर हेतु सुग्रीव बालि ढिंग तुरत पठाये ॥
बालि भिड़्यो सुग्रीव तैं, गुत्थम गुत्था ह्वै गई ।
भग्यो दुखित लघु बन्धु जब, पुनि, पठये उर लग दई ॥

इस संसार की स्थिति सहयोग पर मैत्री पर परस्पर के स्नेह पर ही निर्भर है। संसार में सभी सबका सहयोग चाहते हैं।

---

* श्रीहनुमानजी अपने स्वामी श्रीसीतापतिकी स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"भगवान्को प्रसन्न करनेके निमित्त उच्च कुल में जन्म सुन्दरता चतुरता, बुद्धि की तीक्ष्णता, आकृति और इनमें से कोई भी कारण नहीं है। देखिये, हम वानरों में इनमें से कोई भी गुण नहीं हैं फिर भी इन लक्ष्मण के भाई ने हम लोगों से मित्रता की।"

सब काम को सभी नहीं कर सकते। श्रम जीवी श्रम करें, अन्न वस्त्र तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं को उत्पन्न करें, बुद्धि जीवी उन्हें सदुपयोग की शिक्षा दें। उन्हें व्यवहार में सुचारु रीति से वर्तने की शिक्षा दें, इस प्रकार परस्पर के सहयोग से ही समाज का कार्य चल सकता है। यदि समाज में मैत्री भाव न हो; परस्पर में एक दूसरे की सहायता न करें। तो सृष्टि का कार्य ही रुक जाय। सबल दुर्बलों को रहने ही न दें। यदि कोई अपने से अधिक बलवान् है, तो पहिले उसे समझावें, ऊँच नीच परिस्थिति का ज्ञान करावें। जब वह अपने से वली की सम्मति को भी न माने तो फिर उसका भेद नीति से भी वध करा देना अन्याय नहीं। क्योंकि ऐसे अभिमानी हठी का वध के अतिरिक्त और कोई उपाय है ही नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सुग्रीव को साथ लिये श्रीराम चन्द्रजी किष्किन्धा की ओर चले। समीप के ही एक गहन वन में वृक्षों की आड़ में श्रीरामचन्द्रजी छिपकर बैठ गये और अपने सखा सुग्रीव से बोले—"वानरश्रेष्ठ! तुम किष्किन्धा जाओ। शत्रुरूप में उत्पन्न अपने बड़े भाई को बुलाओ। उसे युद्ध के लिये ललकारो। वह वीराभिमानी तुम्हारी ललकार को कभी सहन न करेगा। तुरन्त युद्ध के लिये आ जायगा। उसे तुम यहाँ समतल भूमि में ले आना। मैं उसका एक ही बाण में संहार करा दूँगा उसे यमपुर का प्रवेशपत्र पकड़ा दूँगा।"

भगवान् श्रीराम के ऐसे आश्वासन पूर्ण वचनों को सुनकर सुग्रीव निर्भय होकर किष्किन्धा में गया। वह वार वार वालिका नाम लेकर उसका तिरस्कार करने लगा। उसे युद्ध के लिये कारने लगा और भयंकर दहाड़ मारने लगा! उसकी सुनकर बालि परम क्रुद्ध हुआ। वह सुग्रीव को

सहन करनेमें समर्थ नहीं हुआ, वह रणके निमंत्रणकी अवहेलना न कर सका, लँगोट बाँधकर नगर से निकल पड़ा और सुग्रीव के ऊपर झपटा। सुग्रीव उसे कौशल से कौशलकिशोर के समीप ले गया। अब दोनों में घनघोर युद्ध होने लगा। घूँसों का शब्द थप्पड़ों की तड़तड़ाहट मुकों के घोर रव से आकाश मंडल भर गया। दोनों वीर आकृति-प्रकृति-लंबाई-चौड़ाई में समान थे। दोनों ही बली वीर थे, किन्तु बाल के बल की थाह नहीं थी। सुग्रीव कुछ काल तो उत्साह के साथ युद्ध करता रहा। अन्त में उसके पैर उखड़ गये, वह रक्त से लथ पथ हो गया। उनके विचित्र युद्ध को श्रीराघव मन्त्र मुग्ध की भाँति देखते। युद्ध देखने में उन्हें इतना अधिक आनन्द आया, कि वे वालि सुग्रीव का भेद ही भूल गये। दोनों भाई परस्पर में लड़ते हुए ऐसे लगते थे मानों दो साँड़ लड़ रहे हों। अथवा दो मदोन्मत्त हस्ती युद्ध कर रहे थे। अब राम यह निर्णय न कर सके, कि इनमें कौन सा सुग्रीव है कौनसा वालि है। दोनों के मुख एक से थे। दोनों की उठन बैठन आकृति, लम्बाई, चौड़ाई, वस्त्र, आभूषण तथा युद्ध कला समान थी। श्रीराम ने बाण नहीं छोड़ा। वे सोचने लगे कहीं वालिके भ्रममें मेरा बाण सुग्रीव के लग गया, तब तो महान् अनर्थ हो जायगा, मेरा सर्वस्व लुट जायगा।" यही सोचकर वे चुपचाप युद्ध को देखते ही रहे। वालिने एक कसकर घूँसा सुग्रीव की नाक पर मारा। उसके लगते ही सुग्रीवकी नाक से मुखसे रक्त की धारा निकलने लगी। वह युद्ध को छोड़कर रक्त उगलता हुआ ऋष्यमूक पर्वत की ओर भागा। उसे श्रीराम पर बड़ा क्रोध आ रहा था। वालि ने कुछ दूर तो उसका पीछा किया, फिर शापके भय से यह कहता हुआ कि—"जा आज तो मैं तुझे छोड़े देता हूँ, फिर कभी ऐसा दुस्साहस न करना" वह अपनी नगरी को लौट गया।

बालि के लौट जाने पर और सुग्रीव के ऋष्यमूक की ओर भागने पर श्रीराम भी हनुमान् और लक्ष्मण को साथ लिये हुए सुग्रीव के समीप आये। श्रीराम को देखते ही खिसियाकर सुग्रीव ने कहा—"रहने भी दो महाराज! आपने तो मुझे अच्छा उल्लू बनाया। उत्साहित करके मुझे मेरे बन्धुरूप शत्रु के समीप भेज दिया और पीछे आप हँसते रहे। मारा तक नहीं। देखिये, उसने मेरी कैसी दुर्दशा की है। आपने अच्छी मेरी कुटाई कराई।"

मुख से रक्त उगलते हुए रोते हुए सुग्रीव को देखकर भगवान् को हँसी आ गयी। अपनी हँसी को छिपाकर बोले—"वानर्षभ! तुम मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो। मैंने बाण क्यों नहीं छोड़ा पहिले इसका कारण जान लो तब मुझे दोष देना।"

सुग्रीव ने कहा—"हाँ, बताइये आपने क्यों नहीं बाण छोड़ा ?"

श्रीराम बोले—"देखो, तुम दोनों भाई आकृति, प्रकृति में सर्वथा समान थे। मैं अनुमान भी नहीं कर सकता था, तुम दोनों भाइयों में ऐसा साम्य होगा। युद्ध देखते-देखते मैं इस बात को भूल ही गया, कि तुम दोनोंमें कौन बालि है कौन सुग्रीव है। मैं बड़े चक्कर में पड़ गया। मेरा बाण तो अमोघ है, कभी व्यर्थ जाता नहीं। यदि बालि के भ्रम से तुम्हारे शरीर में बाण लग जाता, तब तो सब अनर्थ ही हो जाता। तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता था। मैं मर जाता तो लक्ष्मण भी प्राण त्याग देता, सीता भी शरीर त्याग देती। भरत भी मेरा मरण सुनकर जीवित न रहता। भैया, मैंने जान बूझकर तुम्हारे साथ विश्वासघात नहीं किया। रूप सादृश्य के ही कारण

मुझे भ्रम हो गया, तुम कोई दूसरी शंका मेरे सम्बन्ध में न करना।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए सुग्रीव ने कहा—"रघुनन्दन! मैं आप पर कोई शंका नहीं करता। संदेह होने पर आपने बाण न छोड़कर उचित ही किया। यथार्थ में हम दोनों भाई एकसे ही हैं। साधारण परिचय होने वाले को तो भ्रम होना स्वाभाविक ही है। कभी कभी विशेष परिचय वालों को सदा समीप रहने वालों को भी हमारे रूप सादृश्य से भ्रम हो जाता है। तारा जब नई ही नई विवाह होकर आई थी, तब बालि के भ्रम से कई बार मेरे समीप आयी। मैंने उसे बालिका स्थान बता दिया था। अब ऐसे कीजिये कि आप हम दोनों भाइयों को पहिचान सकें इसके लिये शरीर में कोई चिन्ह बना दें।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए श्रीराघव लक्ष्मणजी से बोले—"लक्ष्मण! श्वेत पुष्पों से फूली हुई इस नागवल्ली लता की माला बनाकर वानर राज सुग्रीव को पहिना दो, जिससे मैं इन्हें पहिचान सकूँ।"

भगवान् की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने अत्यन्त फूली हुई गज-पुष्पी लता को उखाड़कर उसकी सुन्दर माला बनाकर सुग्रीव के कंठ में पहिना दी, मानों उन्हें अभी से विजय माल पहिना दी हो। उस सुन्दर फूली हुई लतासे सुग्रीवकी शोभा अत्यन्त ही बढ़ गयी। अब श्रीराम और लक्ष्मण को आगे कर सुग्रीव किष्किन्धा की ओर चले। भगवान् वन, उपवन, नदी, नद और सघन वृक्षों की शोभा निहारते हुए आगे-आगे चल रहे थे; उनके पीछे लक्ष्मण सुग्रीव और उनके सचिव हनुमान्, नल, नील और तार चल रहे थे। चलते-चलते वे सब बालि की राजधानी

किष्किन्धा के निकट पहुँचे। वह नगरी परम रमणीक थी। युद्धोपयोगी सभी सामग्रियाँ उसमें विद्यमान् थीं। उपवनों के बाहुल्य से वह नगरी परम रमणीक शोभा युक्त और सुन्दर दिखायी देती थी। सुग्रीव ने कहा—"राघव! यही मेरे भाई बालि की राजधानी है।"

श्रीरामचन्द्रजी ने अत्यन्त ही स्नेह से कहा—"अच्छा भैया! तुम जाओ। अबके फिर तुम बालि को युद्ध के लिये ललकारो, अबके मैं उसे अवश्य मार दूँगा।"

सुग्रीवने कहा—"हाँ, महाराज! मैं जाता तो हूँ, किन्तु पहिले की भाँति भूल न जायँ।"

भगवान् ने हँसकर कहा—"अरे, भैया! अब भूलने की कौन सी बात है। अब तो लक्ष्मण ने तुम्हें शुभ चिह्नों से चिह्नित कर दिया है, अब तो उन्होंने तुम्हारे गले में विजयमाला पहिना दी है। अब तुम किसी प्रकार की शंका मत करो। अबके तुम्हारा भाई बच नहीं सकता। उसे इस लोक में कोई रख नहीं सकता। अबके मैं उसे अवश्य ही इस लोकसे सदा के लिये विदा कर दूँगा।"

श्रीराम का ऐसा आश्वासन पाकर सुग्रीव किष्किन्धा की ओर चले। उनका वर्ण सुवर्ण के समान था, गले में श्वेत पुष्पों की माला से वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों सायंकालीन आकाश में बगुलों की पंक्ति उड़ रही हो उन्होंने जाते ही आकाश को गुंजाते हुए भयानक गर्जना की। ताल ठोककर उन्होंने बार बार बालि को युद्ध के लिये ललकारा। उस समय बालि अन्तःपुर में अपनी स्त्री तारा के साथ आनन्द विहार कर रहा था। अपने भाई की ऐसी ललकार को सुनकर उसे अत्यन्त क्रोध आया। वह शत्रु की दहाड़ ललकार तथा गर्जना को सहन न कर सका; उसने अपने

समीप में बैठी हुई तारा से कहा—"प्रिये ! मैं सुग्रीवसे युद्ध करने जाता हूँ ।"

अत्यन्त स्नेह से अपने पति से लिपटकर तारा बोली—"प्राणनाथ ! आप इस समय युद्ध करने न जायँ ।"

बालि ने कहा—"प्रिये ! यह बात वीर की वीरता के अनुरूप नहीं। वीर को शत्रु जब भी युद्ध के लिये ललकारे, तभी उसके समीप सब काम छोड़कर जाना चाहिये और शत्रु की इच्छा पूर्ति करनी चाहिये ।"

तारा ने कहा—"प्राण वल्लभ ! इस समय आपका जाना वहाँ उचित नहीं ।"

बालि ने पूछा—"क्यों उचित नहीं ?"

तारा ने कहा—"देखिये, अङ्गद कल वन में गया था। उसने मुझे बताया कि चाचा सुग्रीव के समीप अवध के दो राजकुमार आये हुए हैं। वे परम तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, शूरवीर, बली तथा दर्शनीय हैं। उनकी सुग्रीव से मैत्री हो गयी है ।"

बालि ने कहा—"मैत्री हो गयी है, तो इससे क्या हुआ। संसार में किसी से मैत्री हो जाती है, किसी से शत्रुता ।"

तारा ने कहा—"सुग्रीव उन्हीं के बल पर उछल कूद कर रहा है नहीं तो उसमें इतना साहस कहाँ, वह तो अभी-अभी आपसे पराजित होकर भागा है। मैंने ऐसा सुना है, राम रण में अजेय हैं। उन्हें कोई भी जीत नहीं सकता ।"

बालिने कहा—"मैंने रामचन्द्र का कुछ बिगाड़ा तो है नहीं वे मुझसे शत्रुता क्यों करेंगे ? राम धर्मात्मा हैं, वे हम दो भाइयों के बीच में क्यों पड़ेंगे ? वे सुग्रीवका पक्ष लेकर मुझसे क्यों लड़ेंगे ?

तुम रामचन्द्र की ओर से निश्चिन्त हो जाओ, तुम्हीं सोचो; मैं वीर होकर शत्रु की ललकार कैसे सह सकता हूँ।"

तारा ने कहा—"प्राणनाथ! सुग्रीव ने आपका क्या बिगाड़ा है, वे तो आपसे कितना प्रेम करते थे। वे धर्मात्मा हैं, आपके सगे भाई हैं। पिताजी ने उन्हें युवराज बनाया था, आप उन्हें स्नेह से बुलाकर पुनः युवराज बनावें। कैसा भी हो, भाई-भाई ही हैं। आप सुग्रीव पर कृपा करें, उन्हें अपना शत्रु न समझें।"

वालि ने कहा—"प्रिये! शत्रु तो शत्रु है। फिर वह चाहे सगा भाई ही क्यों न हो। सुग्रीव सिंह के समान दहाड़ रहा है, मुझे युद्ध के लिये ललकार रहा है। इस समय उससे युद्ध न करना मेरी वीरता के लिये कलंक की बात होगी। तुम विश्वास रखो, मैं सुग्रीव के प्राण न लूँगा, उसे पराजित करके भगा दूँगा। तुम चिन्ता मत करो, उस डरपोक को पराजित करके मैं अभी लौटकर आता हूँ।"

तारा ने अपने पति को कसकर पकड़ लिया, वह उससे उसी प्रकार लिपट गई, जिस प्रकार वृक्ष से लता लिपट जाती है, उसने रोते रोते कहा—"प्राणनाथ! मेरा हृदय धक् धक् कर रहा है। इस समय आपका जाना भय से रहित नहीं। मुझे अशुभ चिन्ह दिखायी दे रहे हैं। हृदय फटा सा जा रहा है। आप इस समय युद्ध करने न जायँ।"

वालिने अत्यंत प्यारसे कहा—"स्त्रियोंका हृदय ऐसा ही होता है। प्रेम में पग पग पर अनिष्ट की शंका दिखाई देने लगती है। तुम प्रेमवश मुझसे ऐसा कह रही हो। स्नेह के कारण तुम्हारा हृदय खिंच रहा है। तुम चिंता मत करो। मैं तुम्हें

अपनी शपथ दिलाता हूँ, तुम लौट जाओ और मेरे आने की प्रतीक्षा करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब वालि ने बार बार ... दिलाकर तारा को लौटने को कहा, तो वह रोते २ खड़ी हो गयी युद्ध के लिये उद्यत अपने पति का उसने स्वस्त्ययन किया ... शंकित चित्त से वह खड़ी की खड़ी ही रह गयी। वालि ... हुआ तथा सुग्रीव को बुरी भली बातें कहता हुआ, उससे युद्ध करने नगर से बाहर अकेला ही निकल पड़ा।"

सुग्रीव ने जब वालि को अपनी ओर आते देखा तो वह दौड़कर वहाँ गया जहाँ श्रीराम थे। अब वे दोनों परस्पर में भिड़ गये। वह उसे मारता वह उसके ऊपर प्रहार करता। एक दूसरे को गिराने और मारने का प्रयत्न करने लगे। मुक्का बाँधकर, थप्पड़, और घूँसों से वे लड़ने लगे। उस समय पृथ्वी डगमगा रही थी। आकाश से दिन में उल्कापात होने लगे। दोनों एक दूसरे के रक्त के प्यासे बने हुये थे। वे आपस में प्राणों का मोह परित्याग करके लड़ रहे थे। श्रीरामजी ने देखा, सुग्रीव ढीला पड़ गया है, उसके अङ्ग शिथिल हो गये हैं, उसका बल घट गया है, तब श्रीराम ने अपना सुन्दर सुवर्ण मंडित अमोघ बाण छोड़ा। कभी व्यर्थ न होने वाले उस रामबाण ने वालि के हृदय को वेध दिया। बाण के लगते ही वह कटे वृक्ष के समान धरती पर गिर पड़ा। मरते समय वह श्रीराम से बहुत कटु शब्द कहने लगा। क्रोध में भरकर श्रीराम की निन्दा करते हुये उसने कहा—"श्रीराम तुम्हारा संसार में बड़ा यश है। तुम तो सज्जनों में पुण्य श्लोक कहलाते हो। तुम तो सर्वत्र परम धार्मिक यशस्वी करके प्रसिद्ध हो, फिर तुमने यह धर्म विरुद्ध यश का नाश करने वाला कार्य क्यों किया?"

श्रीराम ने सरलता के साथ पूछा—"मैंने कौन सा अधर्म का

र्य किया है ?"

वालि ने कहा—"इससे बड़ा अधर्म और क्या हो ... हैं। मैंने तुम्हारा तो कुछ बिगाड़ा नहीं था। अकारण तुमने मार डाला। मैंने तुमसे युद्ध नहीं कर रहा था। तुमने छि... युद्ध धर्म के विरुद्ध मेरे ऊपर बाण छोड़ दिया। धर्म को... वाले मत्त, प्रमत्त असावधान शस्त्रहीन, युद्ध में भगने शरण में आये हुए शत्रु को भी नहीं मारते। मैं अपने भाई युद्ध कर रहा था, असावधान था। आपने मेरे ऊपर अकारण अस्त्र क्यों छोड़ दिया! मेरी पत्नी तारा ने मुझे मना किया था, सुग्रीव के सहायक श्रीराम हैं, आप उनसे युद्ध करने न जावें. किन्तु मुझे तुम्हारी धार्मिकता पर विश्वास था। मैं सोचता था, तुम मुझे क्यों मारोगे। मैंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु तुमने तो अधर्माचरण किया। मुझे मारने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं था।"

श्रीराम ने कहा—"देखो, भाई! हम क्षत्रिय हैं। यह समस्त वन, उपवन सहित सप्तद्वीपा वसुमती इक्ष्वाकुवंशियों की है भरत इसके सम्राट् हैं, हम उनकी ही आज्ञा से दुष्टों को दंड देते हैं, शिष्टों का पालन करते हैं। तुम भी भरत की प्रजा हो, अतः मुझे तुम्हें दंड देने का अधिकार है।"

वालि ने कहा—तुमने मेरी कौन सी दुष्टता देखी ?"

श्रीराम बोले—"देखो, छोटे भाई की स्त्री पुत्री के समान होती हैं, उससे जो काम सम्बन्ध रखता है वह पापी है। तुमने अपने छोटे भाई सुग्रीव की स्त्री रुमा को अपनी स्त्री बना लिया है। उसके साथ काम सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, इसलिये तुम पापी हो, कामी हो, तुम्हारा वध धर्म संगत ही है।"

यह सुनकर वालि बोला—"राघव! स्वार्थी लोग अपनी बात को सिद्ध करने के लिये भाँति भाँति के व्यर्थ तर्क देते हैं। मैं

मनुष्य तो हूँ, नहीं, वानर हूँ वानरों में छोटे बड़े भाई की स्त्री का भेद होता ही नहीं। जब मैं दुन्दुभि के पीछे गया था, तो सुग्रीव ने मेरी स्त्री को रख लिया था। यह तो हमारे यहाँ का वानर जाति का सदाचार है, इसमें आप हस्तक्षेप करने वाले कौन होते हैं।"

श्रीराम ने कहा—"वास्तव में तुम पशु तो हो नहीं, साधारण शाखा मृग नहीं हो। तुम्हारी सभ्यता मनुष्यों की जैसी है। तुम्हारे घर हैं राजधानी है पंडित हैं पुरोहित हैं, अस्त्र शस्त्र है। अच्छा मान लो तुम वानर ही सही जंगली पशु ही सही, तो क्षत्रियों का मृगया करना जन्म सिद्ध अधिकार है। आखेट में यह नहीं देखा जाता, कि यह पशु बैठा है या चर रहा है या दौड़ रहा है अथवा खा पी रहा है। जैसे भी होता है मृगया करने वाले अपने वध्य पशु को मारते हैं। यह भी नियम नहीं पशु को सामने ही पड़ कर मारा जाय। कुत्तों से मरवाते हैं, पेड़ पर चढ़कर उन पर प्रहार करते हैं मृगया के पशु को जैसे भी हो तैसे मारा जाता है।"

वालि ने कहा—"मैं पाँच नख वाला पशु हूँ। शास्त्रकारों ने पाँच नख वाले ५ पशुओं को छोड़कर सभी अवध्य बताये हैं। मृगया करने वाले वानरों को कभी नहीं मारते। मृगों की तरह वानरों की छाल न पहिनी जाती है, न ओढ़ी जाती है। वानरों के बाल निन्दित समझे जाते हैं। उनका मांस भी कुत्ते की तरह अभक्ष्य होता है। फिर आपने मृगया धर्म के विरुद्ध भी मुझे क्यों मारा?"

भगवान् ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा—"तुम बार बार मुझे दोष क्यों दे रहे हो? अपने को निरपराध क्यों बता रहे हो? मान लो तुम अभक्ष्य ही सही, किन्तु प्राणियों

पीड़ा पहुँचाने वाले पापी पशु तो हो ही अपकारी पुरुष या पशु कैसा भी क्यों न हो, राजा को उसका वध बिना विचारे करना चाहिये। सुग्रीव से मेरी मित्रता हुई है। हमारी उसकी यह प्रतिज्ञा हो चुकी है, कि वह सीता का पता लगावेगा, मैं बालि का वध करूँगा। इसलिये मैंने प्रतिज्ञा का पालन किया है, तुम्हें मारकर अपना प्रण पूरा किया है।"

बालि ने कहा—"तुम बल पराक्रम हीन क्षत्रिय हो। यदि तुम में कुछ बल होता, तो तुम मेरे सामने आकर युद्ध करते। तब तुम्हें दाल आटे का भाव मालूम पड़ता। तब मैं तुम्हे युद्ध में सन्तुष्ट करता। तुमने तो डरपोक की भाँति अधर्म पूर्वक छिप कर मेरे ऊपर प्रहार किया। रही सीता अन्वेषण की बात, सो इस छोटी सी बात के लिये तुमने ऐसा घोर पाप क्यों किया। अरे, जैसे तुम इस निर्बल भयभीत आश्रय हीन सुग्रीव की शरण में आये वैसे मेरी भी शरण में आते तो मैं तुम्हारी बहू को ला ही देता साथ ही उस दुष्ट रावण को जो चोर की भाँति तुम्हारी स्त्री को हर ले गया है, उसे बाँध कर तुम्हारे सम्मुख खड़ा कर देता। तुम्हें आत्म विश्वास नहीं। तुम निर्बल हो।"

इस पर श्रीराम ने कहा—"देखो भैया! बलवान् निर्बल की बात नहीं। सीधी और सच्ची बात यह है, कि मुझे मित्रता का निर्वाह करना था। मुझे अपने मित्र के दुख को दूर करना था। अपने सुहृद् सुग्रीव को सुखी और निर्भय बनाना था। सुग्रीव को सबसे अधिक दुख तुमसे था, तुम उसके सहोदर बन्धु होते हुए भी शत्रु थे। तुम्हारे मरने पर ही मेरे मित्र का सुखी होना सम्भव था। अब चाहे धर्म हो या अधर्म, मुझे अपनी मैत्री का निर्वाह करना था। जिसका मैंने अग्नि को साक्षी देकर

हाथ पकड़ा है, उसे प्रसन्न और सुखी बनाना मेरा परम धर्म है। अब चाहें धर्म समझो या अधर्म सुग्रीव को मुझे राजगद्दी पर बिठाकर सुखी बनाना है। देखो, चन्द्रमा को प्रसन्न करने के लिये तीनों लोकों के प्रकाशदाता, तेज के राशि जगत् के पति, सभी शुभाशुभ कर्मों के साक्षी श्रीसूर्यनारायण जल की चोरी करते हैं। नद, नदी, कूप, तालाब तथा समस्त प्राणियों के शरीरों से पानी को चुरा लेते हैं इसीलिये उनका एक नाम वारितस्कर भी है। सो भैया! मुझे दोष मत दो, धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है, वेदों से स्मृतियों से, बड़े बड़े ऋषियों के आचरण से और अपने शुद्ध अन्तःकरण से धर्म का निर्णय किया जाता है। मैं सब प्राणियों का सुहृद् हूँ। मेरे बाण से तुम्हारी भी सद्गति होगी। तुम्हारा भी कल्याण होगा। सुग्रीव को भी सुख होगा। मैं कभी अकल्याणप्रद कार्य नहीं करता। मेरे सभी अनुकूल से दीखने वाले या प्रतिकूल से प्रतीत होने वाले कार्यों में विश्व का कल्याण ही निहित है। तुम मरना चाहो, तो सुख पूर्वक मरो। जीना चाहते हो, तो अभी अपना बाण निकाल कर तुम्हें जीवित कर सकता हूँ।"

अब बालि की बुद्धि ठिकाने आयी। उसने भगवान का यथार्थ मर्म समझा। भगवान् को तो वही जान सकता है, जिसे वे जनाना चाहें। बालि के अन्तःकरण में भक्ति उत्पन्न हुई। उसने श्रद्धा सहित श्रीराम की मनोहर मूर्ति के दर्शन करते हुए कहा—"राघव! आप ईश्वर हैं। मैं चंचल स्वभाव का वानर जाति में उत्पन्न हुआ अज्ञ पशु क्या जानूँ? आप कभी अनुचित करते ही नहीं। प्रभो! आप तो पतित-पावन हैं। मुझसे अधिक पतित और धर्महीन कौन होगा। हे रघुकुल तिलक मैं आप के उदार द्वार पर शरण पाने की अभिलाषा से आया हूँ। आप

मेरा। उद्धार करें मुझे अपनावें।" इतना कहते कहते वालि हाँपने लगा। वह अपलक होकर श्रीराम के रमणीय रूप रस का पान कर रहा था। वह श्रीराम के दर्शन करते करते अघाता ही नहीं था।

करुणा वरुणालय श्रीराम ने अपना वरद हस्त उसके मस्तक पर फेरा और बड़े ही स्नेह से बोले—"वानरराज! तुम्हारी अंतिम इच्छा क्या है? संसार छोड़ते समय तुम्हें किसकी चिन्ता व्यथित कर रही है? तुम्हारी जो भी इच्छा हो, उसे मुझसे कहो मैं उसे पूरी करूँगा।"

वालि ने बड़े कष्ट से कहा—"राघव! मेरे मरने के पश्चात सुग्रीव का राजा होना तो उचित ही है। मेरे पिता ने ही उसे युवराज बना दिया था। राजा होने पर वह जैसे सभी का पालन करेगा वैसे ही तारा का भी पालन करेगा। इसलिये मुझे तारा के लिये भी सोच नहीं। सबसे अधिक सोच मुझे अपने इस प्यारे पुत्र अंगद के लिये है। यह मेरा इकलौता पुत्र है। यह अत्यन्त ही लाड़ प्यार के साथ पाला पोसा गया है। इससे कभी दुःख सहा नहीं। आप इससे शत्रु पुत्र का-सा व्यवहार न करें। उसे अपना अनुचर बनावें। इसका हाथ मेरे सम्मुख पकड़ें।"

श्रीराम ने अत्यन्त ही स्नेह प्रकट करते हुए वालि से कहा—"वानरराज! मुझे लोग सर्वभूत सुहृद कहते हैं। अंगद को मैं अपने पुत्र के समान रखूँगा। सुग्रीव के पश्चात् वानर और भालुओं का वही राजा होगा। तुम्हारे सम्मुख ही मैं इसे युवराज पद पर अभिषिक्त किये देता हूँ।" यह कहकर श्रीराम ने तुरन्त अंगद को युवराज घोषित कर दिया।"

अब तो वालि की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा, उसने श्रीराम के रूप को हृदय में रखा। मुख से राम राम उच्चारण करते

हुए उसने परमपद पाया। जो गति ज्ञानियों और योगियों को भी दुर्लभ थी, वह उस वानरराज ने राम के बाण से मरकर सहज में ही प्राप्त कर ली। मरते समय बालि ने अंगद का हाथ श्रीराम के हाथ में दिया। सुग्रीव को स्नेह पूर्वक छाती से लगाकर उसने अपने कृत्यों के लिये पश्चात्ताप किया। बालि की स्त्री तारा ने अपने पति के लिये अत्यन्त शोक प्रकट किया। श्रीराम ने उसे समझाया सुग्रीव ने बालि का यथोचित संस्कार किया। मंत्री और सचिवों ने मिलकर सुग्रीव का राज्यतिलक किया। उन्हें समस्त वानर और भालुओं का राजा बनाया। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से लक्ष्मण जी ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। चिरकाल के पश्चात् अपनी प्यारी पत्नी रुमा और तारा को पाकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ। आज बहुत वर्षों से वह वन वन भटकता फिरता था। कहीं रहने का स्थान नहीं, खाने पीने का ठिकाना नहीं ओढ़ने पहिनने को उचित वस्त्राभूषण नहीं, जैसे तैसे जीवन के दिन व्यतीत कर रहा था। श्रीराम के दर्शनों का प्रत्यक्ष फल यह हुआ, कि उसके दुख दूर हो गये। श्रीराम को मित्र मानते ही उसके सब संकट टल गये। राज्यलक्ष्मी ने उसके वरण कर लिया। विजयश्री ने उसके कंठ में जयमाल पहिना दी। सर्वसुन्दरी तारा और रुमा को पाकर सुग्रीव श्रीराम को भूल गया। काम के फँदे में फँसकर प्राणी राम को भुला ही देता है। जहाँ काम है, वहाँ राम रहते नहीं। अतः सुग्रीव तो किष्किन्धा में रहकर इन्द्रियों के विषयों में फँस गया। उसी समय चतुर्मास आ गया। प्रस्रवण पर्वत पर एक सुन्दर गुफा थी। उसी में रहकर श्रीराम सीताजी के विरह दुख में दुखी हुए समय की प्रतीक्षा करने लगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जो सबके सहायक हैं, सबके

स्वामी हैं, वे ही श्रीराम वानरों के राजा सुग्रीव से सहायता पाने के लिये कष्ट से दिन व्यतीत करने लगे। उन्हें आशा थी, सुग्रीव स्वयं ही सोचेगा, किन्तु काम के फँदे में फँसा राम की याद किसी के करने से करता है, अतः सुग्रीव के भूल जाने पर राम और राम के दूत हनुमान् नहीं भूले। श्रीराम ने भी सोचा चिरकाल में इसे सुख प्राप्त हुए हैं, उसका उपभोग करने दो, फिर तो जीवन भर हमारी सेवा इसे करनी ही है। यही सोचकर श्रीराम चार महीने कुछ भी नहीं बोले।

छप्पय

मालातैं पहिचान बालि उर शर हरि मार्यो।
राम बानतैं मरत तुरत हरिलोक सिधार्यो॥
सुत अङ्गदकूँ सौंपि परमपद पायो कपिपति।
राज पाइ सुग्रीव काम महँ फँसी तासु मति॥
चारि मास गिरि गुहामहँ, बसे राम कपि काम महँ।
फँस्यो किन्तु हनुमान मन, सदा बसै श्रीराम महँ॥

लङ्का—दहन

(६६८)

यद्‌ध्योदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः
सेतुं कपीन्द्रकरकम्पित भूरुहाङ्गैः।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै
र्लङ्कां विभीषणदृशाऽऽविशदग्रदग्धाम् ॥*

(श्री भा० ६ स्क० १० अ० १६ श्लो०)

छप्पय

हनुमत सिखतैं सीय खोजिबे दूत पठाये।
राम रजायसु पाइ लखन कपिगत धमकाये॥
त्यागि काम सुग्रीव काम रघुपति के आये।
इत उत भेजे और पवन सुत लंक पठाये॥
अंगदादि कपि सँग चले, दई मुद्रिका सीयपति।
सिन्धु लाँघि लंका गये, हनुमत हिय उत्साह अति॥

जो काम राम नहीं कर सकते उसे उनकी कृपा से उनके

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! उस शैल शिखरों से जिन पर वृक्ष उग रहे थे और जिन वृक्षों की शाखाएँ वानर वीरों के करों द्वारा कम्पित हो रही थीं उनसे श्रीरामचन्द्रजी ने समुद्र पर पुल बँधवाया। विभीषण ने जिस लंकापुरी का मार्ग दिखलाया है उसे जिसे हनुमान् जी ने पहिले ही जला दिया था, उसमें सुग्रीव नील तथा हनुमान् आदि वानरों के सहित भगवान् ने प्रवेश किया।"

अनुचर दास कर लेते हैं। राम तो भक्तों के अधीन हैं। सेवक के सम्मुख लघु बन जाते हैं। सेवक के पद की प्रतिष्ठा बढ़ाने के निमित्त वे उनसे दुष्कर कार्य करा लेते हैं। इसीलिए राम से बढ़कर राम के दास को बताया है। भगवान् की जितनी अवतार लीलाएँ हैं वे सब भक्तों के उत्कर्ष को बढ़ाने के निमित्त ही हैं। नहीं तो उन सर्वान्तर्यामी प्रभु को किसी की सहायता की क्या आवश्यकता है। वे तो भक्तों को सुख देने के लिये ही विविध क्रीड़ाएँ किया करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर सुग्रीव तो किष्किन्धा पुरी में रहकर विविध प्रकार के संसारी भोगों को भोग रहे थे। उधर प्रभु माल्यवान पर्वत की गुहा में निवास कर वर्षा के अन्त की प्रतीक्षा करने लगे। वर्षात के वे चार मास श्रीराम ने अपनी प्रिया के विरह में बड़े कष्ट के साथ बिताये। वे जानकी के लिए अत्यन्त ही अधीर हो रहे थे। जिधर भी उनकी दृष्टि जाती उधर ही उन्हें सीता की स्मृति व्यथित बनाती। वे अपने दुःख को अपने लघुबन्धु लक्ष्मण से कहते और बात बात पर रुदन करते। इस प्रकार शनैः शनैः वर्षा के चार मास व्यतीत हो गये। श्रीरामचन्द्रजी को आशा थी, सुग्रीव शीघ्र ही सीता के अन्वेषण के लिये प्रयत्न करेगा, किन्तु भगवान् तो उससे दूसरी लीला करा रहे थे। सुग्रीव काम के वशीभूत होकर राम को ही नहीं भूल गये, अपने आपे को भी भूल गये थे, किन्तु सदा सचेष्ट रहने वाले हनुमान्जी भला कैसे भूल सकते थे। उन्होंने एक दिन सुग्रीव से कहा—"राजन्! आपने जिनकी कृपा से यह राज्यवैभव प्राप्त किया है, उनको सर्वथा भूल ही गये। बालिवध के पूर्व जो आपने प्रतिज्ञा की थी, उसका स्मरण आपको नहीं रहा क्या? देव? अब वर्षा बीतना ही चाहती है। श्रीराम

अपनी प्रिया के वियोग में अत्यन्त ही दुखी हैं। आप उसके लिये अभी कोई उद्योग नहीं कर रहे हैं।"

सुग्रीव ने कहा—"हे हनुमान्! मुझसे कहने की क्या आवश्यकता है। देखो मुझे बहुत दिनों के पश्चात् मेरी प्यारी पत्नी प्राप्त हुई है। इस समय मुझे और कुछ सूझता ही नहीं। श्रीराम के कार्य के लिये तुम जो भी उचित समझो वह करो। मैंने तो तुम्हें सब अधिकार दे ही रखे हैं।"

सुग्रीव का इतना संकेत पाते ही हनुमान्‌जी ने दशों दिशाओं में रहने वाले वानर भालुओं को एकत्रित करने के लिये सहस्रों दूत भेजे। सबको चेतावनी दे दी गयी थी, कि जो सुग्रीव के शासन को मानकर न आवेंगे वे दण्डनीय समझे जायँगे। दूतों ने जा कर वानर भालुओं के अध्यक्षों से सुग्रीव का सम्वाद सुनाया। सुनते ही सबके सब रामकाज समझकर बड़े उत्साह से गरजते तरजते किष्किन्धा की ओर चले।

इधर वर्षा का अवसान हो गया था। शरद्ऋतु के निर्मल चन्द्रमा आकाश में अपनी शीतल सुखद किरणें छिटकाकर सभी के मन को प्रफुल्लित बना रहे थे। शरदकालीन कमल सरोवरों में खिल रहे थे हिल रहे थे। नदियों के जल का गँदलापन दूर हो गया था। कीच नीचे बैठने से सलिल स्वच्छ हो गया था। शरद की शोभा देखकर सीता से रहित श्रीराम [illegible] दुखित हुए। वे अत्यन्त ही करुणा भरी वाणी में अपने अनुज लक्ष्मण से कहने लगे—"भाई लक्ष्मण! वर्षा बीत गई। शरद्ऋतु में जो व्यापारी चार महीने रुके हुए थे वे अपने बैलों के टांडों को लाद कर व्यापार के लिये निकल पड़े। जो साधु चार महीने चातुर्मास्य [illegible] के लिये एक स्थान में [illegible] थे, वे भी अपने [illegible] के लिये [illegible]

जिन राजाओं ने वर्षा के कारण चार महीने युद्ध स्थगित कर दिया था, अब उन्होंने भी अपने शत्रुओं पर चढ़ाई करने के लिये अपनी सेना की भी यात्रा आरम्भ कर दी। सभी अपने २ आवश्यक कार्यों में लगे हैं। एक मैं ही ऐसा हूँ जो कुछ भी उद्योग नहीं करता, मेरी प्रिया न जाने कहाँ कष्ट सहन कर रही होगी, मैं उसे ढूंढ़ने के लिये कुछ भी उद्योग नहीं कर रहा हूँ। सौमित्र! मुझे सुग्रीव से बड़ी बड़ी आशाएँ थीं। मुझे विश्वास था, वह समस्त वानरों की सहायता से सीता को खोजेगा। किन्तु उसने तो कुछ भी नहीं किया। जब से उसे राज्य प्राप्त हो गया है, तब से उसने हमारी सुधि भी नहीं ली। यह भी पूछने कभी नहीं आया, कि आपको कोई कष्ट तो नहीं है। भैया! चञ्चलचित्त वाले प्राणियों की मैत्री अस्थिर होती है। वे किये हुए उपकार को भूल जाते हैं। देखो, सीता के बिना मैं कितना दुखी हूँ, कितना दीन हो गया हूँ। खोजते २ मैंने सुग्रीव की सहायता चाही, प्रथम उसका कार्य कर दिया, किन्तु उसने मेरे ऊपर कृपा नहीं की। कृतज्ञता नहीं की। अतः मुझे उस पर क्रोध आ रहा है। अब मैं उसे उसकी अशिष्टता का फल चखाऊँगा। जिस बाण से बालि का वध किया, उसी से उसे यमसदन पठाऊँगा।"

अपने भाई श्रीराम को दुखित और कुपित देखकर भातृभक्त लक्ष्मण बोले—"राघव! मक्खी को मारने के लिये भुसुंडी नहीं चलाई जाती। उस वानर सुग्रीव को मैं अभी किष्किन्धा में जाकर मारे आता हूँ। मैं आज ही वानरों के सिंहासन पर बालि के पुत्र अंगद का अभिषेक करूँगा, अंगद सीता की खोज लगन से करेगा। सुग्रीव कृतघ्न है, शठ है उसे मैं ही बालि का मार्ग दिखाऊँगा, बड़े को आपने मारा अब छोटे को उसकी कृतघ्नता का फल मैं चखाऊँगा।" इतना कहकर लक्ष्मण धनुष बाण लेकर

शीघ्रता के साथ किष्किन्धा की ओर लपके। अपने छोटे भाई को क्रुद्ध होकर जाते देखकर श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें अपने समीप बुलाया और अत्यंत ही प्यार दुलार के साथ बोले—"लक्ष्मण! मैंने जो कुछ सुग्रीव के सम्बन्ध में कहा है वह दुःख में सीता के वियोग में कहा है। तुम वानर राज पर न तो प्रहार ही करना न उन्हें कटु वचन ही कहना। भैया, उन्हे हमने अग्नि को साक्षी देकर मित्र बनाया है। मित्र का कभी स्वप्न में मन से भी अपकार न करना चाहिये। तुम किष्किन्धा जाकर मधुर वाणी में सुग्रीव को समझाकर यहाँ बुला लाओ। अब वर्षा बीत गयी है। वैदेही के अन्वेषण के लिये उद्याग करना चाहिये। यही बात सुग्रीव से कहना।"

श्रीरामचन्द्र की आज्ञा शिरोधार्य करके लक्ष्मण वायु वेग के सदृश किष्किन्धा में पहुँचे। वे नव वधू के समान सजी सजाई वासंती वाटिका के समान फली फूली, किष्किन्धा पुरी को देखकर विस्मित हुए। वहाँ चारों ओर रंग राग दिखाई देता था। सब ओर से वीणा पणव भेरी के मधुर मधुर शब्द सुनाई दे रहे थे, ताल, स्वर और लय के साथ शास्त्रीय संगीत उपवनों में और भवनों में हो रहा था। जाते ही लक्ष्मण को महल द्वार पर वालि पुत्र अंगद मिले। अंगद तो लक्ष्मण के ऐसे क्रुद्ध रूप को देखकर डर गये। वे हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण के सम्मुख थर थर काँप रहे थे। उन्हें बालक समझ कर लक्ष्मण ने कहा—"बेटा, देखो जाओ अपने चाचा से कहना लक्ष्मण आये हैं और तुमसे मिलने को द्वार पर खड़े हैं। इस संवाद को सुनकर वह जो भी कुछ कहे उसे शीघ्र आकर मुझसे कहना भूल मत जाना भला! तुरन्त लौट आना अच्छा!" लक्ष्मण के ऐसे मधुर प्रेम युक्त वचन सुनकर अंगद का भय कुछ कम हुआ। उसने कहा—"मैं

अभी चाचीजी को समाचार देकर आता हूँ।" यह कहकर वह दौड़ा दौड़ा सुग्रीव के समीप गया। सुग्रीव सुरा के मद में विह्वल हो रहा था। अंगद ने क्रुद्ध हुए लक्ष्मण का आगमन सुनाया। सुनते ही उसका मद उतर गया। उसने शीघ्रता से कहा—"उन्हें यहाँ ले आओ।" लक्ष्मण के क्रोध की बात सुनकर अपराधी सुग्रीव अत्यन्त ही भयभीत हो रहा था। उसने मंत्रियों को बुला कर सम्मति की। हनुमानजी ने कहा—"तुमने बड़ा अपराध किया है। अब जैसे हो तैसे लक्ष्मण की अनुनय विनय करके, उन्हें प्रसन्न करो। ये सब बातें ही हो रही थी कि लक्ष्मण जी ने अपने धनुष की टंकार की। जिसे सुनकर अन्तःपुर के स्त्री पुरुष सभी भयभीत हुए। सुग्रीव के छक्के छूट गये। उसने समीप में ही बैठी अत्यन्त सुन्दरी सुमुखी तारा से कहा—"प्रिये लक्ष्मण के क्रोध का कारण जान नहीं पड़ता। वैसे मुझे राम लक्ष्मण से कोई भय तो नहीं है, किन्तु राम से मैंने अग्नि को साक्षी देकर मैत्री की है। मेरे द्वारा मित्र का कोई अपकार न होना चाहिये। क्रुद्ध आदमी न जाने क्या अनर्थ कर बैठें। अतः तुम आगे जाकर लक्ष्मण का स्वागत करो, विनय के साथ मधुर वचन कहो, सलज्ज हास के द्वारा उन्हें प्रसन्न करो। कैसा भी क्रुद्ध पुरुष क्यों न हो अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को विनय और नम्रता के साथ सम्मुख देखकर उसका क्रोध कपूर के समान उड़ जाता है। जब वे तुम्हारे स्वागत सत्कार से प्रसन्न हो जायँ, तब तुम उन्हें मेरे समीप लाना।"

अपने पति की ऐसी बात सुनकर लजाती और इठलाती हुई तारा लक्ष्मण के समीप गयी। उसके कमर की करधनी हिल रही थी, पैरों के नूपुर रुनु झुनु रुनु झुनु करके बज रहे थे। उसने मंद मंद मुस्कराते हुए लक्ष्मण से कहा—"राजपुत्र! आप इतने

क्रुद्ध क्यों हैं ? मुझे अपने क्रोध का कारण बताओ। किसने आपका अपकार किया है। किसने आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया है।"

तारा को सम्मुख देखकर लजीले लक्ष्मण और भी अधिक लज्जित हुए। उनका क्रोध जाता रहा। तारा की बात का उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब तारा बोली—"राजकुमार! वानर राज सुग्रीव तथा हम सब आपके आश्रित हैं, अनुचर हैं, यदि सेवकों से कुछ अपराध हो भी जाता है, तो स्वामी उसे क्षमा कर देते हैं।"

श्री लक्ष्मण ने कहा—"भामिनि! मैं सुग्रीव से मिलना चाहता हूँ, तुम मुझे उसके पास ले चलो।"

लक्ष्मण को शान्त और क्रोध रहित समझकर तारा उन्हें सुग्रीव के समीप ले गयी।" लक्ष्मण जी ने सुग्रीव को पहिले तो बहुत डाँटा फटकारा। फिर मैत्री धर्म का मर्म बताया कृतघ्नता के दोष बताये।

इस पर सुग्रीव लज्जित हुआ। तारा ने लक्ष्मण को समझाते हुए हँसी हँसी में कहा—"कुमार! अब मैं तुम्हें क्या समझाऊँ तुमने तो बाबाजियों का सा वेष बना लिया है। देखो, सुग्रीव को बहुत दिनों के पश्चात् राज्य सुख मिला है। एक साथ ही उन्हें अपनी प्यारी पत्नी के साथ मैं भी प्राप्त हुई हूँ। महाराज! आप जैसे यतियों को छोड़कर संसार में ऐसा कौन होगा, कि सम्मुख सुन्दर चित्तार्पक सांसारिक विषय भोग उपस्थित हो और उन्हें पाकर भी निर्विकार बना रहे। उसके चित्त में चंचलता न आ जाय। हे उर्मिला हृदय धन! सुग्रीव तो वानर है। कण्डु मुनि एक अप्सरा के साथ सहस्रों वर्षों तक रमण करते हुए यह भी न समझ सके कि कब दिन हुआ कब रात्रि। सहस्रों वर्षों के अनन्तर

वे जब सायं सन्ध्या के लिये निकले तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ। मानों यह अप्सरा आज प्रातः काल ही आई है और अब मैं सायंकाल की सन्ध्या करने जा रहा हूँ। सो, कुमार! तुम इनके अपराध को क्षमा करो। अब ये प्रमाद न करेंगे। सीता के अन्वेषण के लिये उद्योग करेंगे।"

तारा की बात सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए। उन्होने सुग्रीव का अभिनन्दन किया। उन्हे प्रेमपूर्वक समझाया। उसी समय हनुमानजी द्वारा भेजे हुए दूतों से सम्वाद पाकर सहस्रों लक्षों वानर आ गये। उनके किलकिला शब्दों से सम्पूर्ण किष्किन्धापुरी गूँजने लगी। उन सबने सुग्रीव को नाना उपहार लाकर समर्पित किये। उन सबके उपहारों को स्वीकार करके लक्ष्मण के साथ पालकी में बैठकर सुग्रीव श्रीराम के समीप आये। उनके पीछे पीछे जय जयकार करते हुए असंख्यों वानर चल रहे थे। सुग्रीव अपराधी की भाँति हाथ जोड़कर श्रीराम के सम्मुख गये और दीन होकर श्रीराम के चरणों में गिर पड़े। करुणा वरुणालय प्रणत प्रतिपालक दीन वत्सल श्रीराम ने अपने सखा सुग्रीव को सादर उठाकर हृदय से लगाया। उनके शरीर की धूलि स्वयं झाड़ी और उनके संकोच को दूर करते हुए बोले—"वानरराज! कोई बात नहीं। अभी तो चातुर्मास बीता ही है। लक्ष्मणने तुमसे कोई कड़ी बात तो नहीं कह दी। जानकी के अन्वेषण के लिये तुमने क्या उद्योग किया?"

सुग्रीव ने गद्गद् वाणी से कहा—"प्रभो! आपकी माया विचित्र है। आप जिसे जैसा नाच नचाना चाहते हैं, वह वैसा नाच विवश होकर नाचता है। दशों दिशाओं से ये बड़े बलवान् वानर आ रहे हैं। कुछ आ गये हैं, कुछ मार्ग में आ रहे हैं और कुछ आने वाले हैं। ये सब मिलकर जानकी का पता

लगायेंगे। ये वन, उपवन, नगर, खेट, खर्वट, गौशाला, व्रज पहाड़ की कन्दराएँ खोजेंगे। पृथिवी में तिल भी स्थान ऐसा न रहेगा, जहाँ वानर न जायेंगे। जानकी जहाँ भी होंगी वहीं से वानर उनका पता लगा लेंगे। पहिले पता लग जाय, तब उन्हें लड़कर लाने का उद्योग करेंगे।"

सुग्रीव की सम्मति सबको सुन्दर प्रतीत हुई। सभी दिशाओं में बलवान् विद्वान् कार्यपटु वानर भेजे गये। दक्षिण दिशा में चुनकर अत्यन्त बुद्धिमान् हनुमान्जी, जाम्वन्त, अङ्गद आदि वानरों को भेजा। श्रीराम को विश्वास था, हनुमानजी ही सीता का पता लगाकर आवेंगे, इसलिये चलते समय उन्हीं को उन्होंने राम नाम अङ्कित अपनी मुद्रिका दी और शीघ्र ही सीता का समाचार लेकर लौटने के लिये कहा। अंगद के नेतृत्व में जिसके प्राण हनुमान थे यह दल दक्षिण के सभी वन उपवन में खोजता हुआ समुद्र तट पर पहुँचा। गृद्धराज जटायु का भाई संपाति मिला वानर सीता का पता न लगने से अनशन कर रहे थे उन्होंने प्राणों का परित्याग करने का संकल्प कर लिया था। संपाति उन्हें खाने के लिये आया। वानर बात कर रहे थे, कि एक जटायु भी गृद्ध था, जो श्रीराम के काम आया। राम की सेवा करते करते तनु त्याग कर दिया।"

जटायु की मृत्यु की बात सुनकर संपाति ने अपना परिचय दिया और वानरों से परिचय देने के लिये आग्रह करने लगा। जब उसने आद्यान्त श्रीरामचरित्र सुना, तब तो उसने सीताजी का सब पता बताया और यह भी कहा—"उसे मैं यहीं से लंका में बैठी हुई देख रहा हूँ। जो १०० योजन सागर को पारकर जाय; वही लंका जाकर सीता का पता लगा सकता है।" इस पर सभी ने अपनी अपनी सामर्थ्य बताया। हनुमानजी को वृद्ध जामवंत ने

उनके बल का स्मरण दिलाया। तब वे सबसे मिल भेंटकर समुद्र को पार कर गये और रात्रि में घुसकर वे रावण के महलोंमें पहुँच गये।

सुमेरु के शिखर के समान जिस रावण के भवन का शिखर है, कैलाश के समान जो ऊँचा है। समुद्र के समान जो गंभीर है। मूर्तिमान् सौन्दर्य के समान जो सुन्दर है, गहन वन के समान जो अगम्य है, उस रावण के सुहावने भवनों में वानर श्रेष्ठ हनुमान् पहुँच गये। पहरे वालों की दृष्टि बचाकर वह रावण के अन्तःपुर में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने विशाल काय दशानन को सुवर्ण के पलंग पर पड़े देखा, जिसके पाये हाथी दाँत के थे और जिस पर सुन्दर गुदगुदे गद्दे अस्तर बिछे थे। जिस पर छोटे बड़े सुन्दर दुग्ध फेन के समान स्वच्छ खोल वाले उपवर्हण (तकिये) रखे हुए थे। जिसके आस पास सैकड़ों सुन्दरियाँ सो रहीं थीं। उनमें कोई गोरी थीं कोई काली, कोई लम्बी थी और ठिगनी, किन्हीं की नाक लम्बी था, किन्हीं की गोल, किन्हीं के बाल घुंघराले थे, किन्हीं के सीधे। कोई तपाये सुवर्ण के समान थीं कोई काले कमलके समान। उन सबकी यद्यपि आकृति प्रकृति भिन्न भिन्न थीं, किन्तु वे सबकी सब सुन्दरी थीं। उनमें कुरूपा कोई भी नहीं थी। वे सबकी सब सुरापान करके उसके मद में चूर हुई सो रही थीं, कोई गाते गाते सो गई थी, कोई किसी के ऊपर पड़ी थीं, किसी के बाल खुल रहे थे, किसी के मुख से लार बह रही थी। कोई स्वप्न देख रही थी, कोई कुछ बड़बड़ा रही थी। हनुमान् एक साथ इतनी सुन्दरी स्त्रियों को देखकर यह निर्णय न कर सके, कि इनमें सीता कौनसी है। वे जिसे ही देखते उसे ही सीता समझने लगते। फिर उन्होंने अपने मन से सोचा—"सीताजी श्रीराम से विलग होकर न तो सुरापान ही

र सकती हैं और न ऐसा सुख का नींद ही सो सकती हैं। अतः समें से कोई भी सीता नहीं हैं। फिर उन्हें संदेह हुआ, रावणके समीप ही जो अत्यन्त सुन्दरी स्त्री सो रही है जो देखने में बड़ी गंभीर और प्रभावशालिनी प्रतीत होती है, सम्भव है वही सीता हो। फिर उन्होंने सोचा—"सीता इस प्रकार रावण के समीप नहीं सो सकती। वह राम से रहित होकर शृङ्गार भी नहीं कर सकती अंगराग भी नहीं लगा सकती। पान भी नहीं खा सकती और सुन्दर सुखद शैयापर सुखसे सो भी नहीं सकती। वे स्वेच्छा से रावण का स्पर्श भी नहीं कर सकतीं। संभव से जैसा मैंने सुना है यह रावण की पटरानी मन्दोदरी हो। हाँ, अब समझ यह वही मन्दोदरी है, इसका उदर भी कृश है और यह रावण में पतिभाव माने सो रही है। तब फिर सीता कहाँ गयी। होना तो उसे लंका में ही चाहिये। जटायु का भाई संपाति झूठ नहीं बोल सकता। उसने बतलाया था रावण मेरे सामने सीता को ले गया है और मैं उसे लंका में देख रहा हूँ। अच्छी बात है लंका तो बहुत बड़ी है इस सब लंका को खोज डालूँ।" इतना सोच-कर हनुमानजी अति सूक्ष्मरूप बनाकर लंका के घरों में गये मन्दिरों में गये, क्रीड़ा और उद्यानों में गये। उपवनों के सजाये भवनों में गये। जब उन्हें कहीं सीता न मिली तो वे लंका की तिलतिल भूमि को खोजने लगे। अश्वशाला, गजशाला रथशाला तथा गोशाला आदि में जानकी को खोजने लगे। फिर सोचने लगे। मैं पागल तो नहीं हो गया हूँ गजशाला में सीता क्यों रखी जायगी। रावण तो काम भाव से उन्हें हरकर लाया है। अवश्य ही उसके अन्तःपुर में ही सीता होनी चाहिये।" यह सोचकर वे फिर रावण के शयन गृह में गये। वहाँ मद की गंध से उनके सिर में चक्कर आने लगे। अर्ध-नग्न अस्त-व्यस्त सोती

हुई स्त्रियों को देखकर उन्हें घृणा भी हुई। फिर उन्होंने अपने आप ही कहा—"सीता यहाँ नहीं हो सकती। फिर वह गयी कहाँ, कहाँ खोजूँ, कैसे करूँ, न हो तो लौट ही चलूँ; किन्तु लौटने से लाभ क्या ? सब की आशा टूट जायगी, श्रीराम सुनते ही प्राण छोड़ देंगे। कितनी आशा से उन्होंने मुझे मुद्रिका दी थी। उनकी आशा निराशा में परिणित हो जायगी। वे प्राण हीन होकर पृथिवी पर गिर पड़ेंगे; उनके बिना लक्ष्मण भी जीवित न रहेंगे। अवधि पर श्रीराम के लौटने पर भरत भी मर जायँगे, फिर शत्रुघ्न कैसे जीवित रह सकते हैं। माताएँ भी मर जायँगी। वह सब अनर्थ मेरे लौटने से हो सकते हैं। अतः मुझे बिना सीता का पता लगाये लौटना न चाहिये। अच्छा न लौटूँगा, तो करूँगा क्या ? सीता का पता न लगा तो मैं उपवास से शरीर को कृश करके मर जाऊँगा। उपवास में देर लगेगी तो न होगा तो समुद्र में ही डूब जाऊँगा। संभव है समुद्र में न डूब सकूँ, तो सूखे-सूखे काष्ठों को एकत्रित करके चिता बनाऊँगा। उसमें अग्नि लगाऊँगा, उसी में जलकर मर जाऊँगा। फिर सोचा—"मरने से क्या लाभ ? आदमी यदि जीता रहे तो कभी न कभी उसके दिन फिर जाते हैं उसे सुख मिलता है। न हो तो मैं बाबा जी बन जाऊँगा। शिलोञ्छ-वृत्ति करके निर्वाह किया करूँगा। अजी, क्यों शिलोञ्छ-वृत्ति के झगड़े में पड़ूँ, मैं तो वानर हूँ, जहाँ बहुत से फलों के वृक्ष होंगे, जल का भी सुपास होगा, वहाँ रहकर एक समय फलाहार करके "राम राम" रटा करूँगा। यदि किसी ने देख लिया तो राक्षस का रूप रख लिया करूँगा। फिर सोचा—"अजी, राक्षस क्यों बनना; पेड़ों पर सर्वत्र वानर रहते ही हैं। विशुद्ध वानर बनकर कालयापन करूँगा। फिर सोचा—"श्रीराम चन्द्रजी किसी प्रकार आ जायँ और मुझे मिथ्या बाबाजी बने

देखकर क्रुद्ध हों और कहें कि तू यहाँ आकर क्यों बैठ गया ? मेरी मुद्रिका भी पचाली, तब मैं क्या कहूँगा। वे मेरे स्वामी सुग्रीव को मार देंगे, सब वानरों को एक बाण में भस्म कर देंगे। अच्छा, तो एक काम करूँ इस रावण को ही पकड़ कर ले चलूँ। राम को दे दूँगा कि इसी ने आपकी पत्नी को चुराया है। परन्तु सीता के बिना रावण को लेकर श्रीराम क्या करेंगे। उन्हें तो सीता चाहिये, किन्तु सीता, जीवित न हो तो संभव है आकाश में लाते समय रावण के हाथ से छूट पड़ी हो, या इतने भारी समुद्र को देखकर उसका हृदय फट गया हो।" फिर सोचा—"सीता मर नहीं सकती। वह तो श्रीराम को अर्धाङ्गिनी हैं। अच्छा, चलो फिर से खोजूँ। अब रात्रि का अवसान भी होना चाहता है लोग जागने लगेंगे। फिर खोजना कठिन हो जायगा। नगर में तो जनक कुमारी हैं नहीं, यह तो निश्चय है। अब चलूँ नगर के बाहर वन उपवन और वाटिकाओं में उन्हें फिर से खोजूँ।" यह सोचकर हनुमानजी उछले और नगर के पर कोटे को फाँदकर बाहर की ओर गये। बाहर किनारे किनारे बड़ी बड़ी मनोरम वाटिकाएँ थीं। उनमें एक अत्यन्त ही सुन्दर और विस्तृत वाटिका थी जिसमें अशोक के वृक्षों का बाहुल्य था। हनुमान्जी ने सोचा—"अरे, मैंने यह वाटिका तो अभी देखी ही नहीं। संभव है सीता इसी में हो। यह देखने में बड़ी ही मनोरम है। यहाँ के सब वृक्ष अत्यन्त ही सघन सुन्दर और सजे सजाये हैं। इसमें सर्वत्र सुखद सुगंध फैल रही है। चलूँ, इसमें विदेह तनया का अन्वेषण करूँ, निश्चय ही रामप्रिया जानकी इसी में होगी।" यह सोचकर हनुमान् जी उस वाटिका में गये। उस वाटिका की शोभा देखकर वे ऐसे मुग्ध हुए कि पूँछ फटफटाने लगे, वृक्षों को हिलाने लगे, फल और पुष्पों को गिराने लगे, अपनी वानरी

चंचलता प्रकट करने लगे। फिर इन्होंने सोचा—"मैं भी कैसा पागल हूँ, सीतान्वेषण जो मेरा मुख्य कार्य है, उसे भूलकर मैं यह क्या कर रहा हूँ, अभी मुझे सती सीता के दर्शन कहाँ हुए हैं, जो मैं इतना प्रसन्न हो रहा हूँ। मुझे सीताजी का भली भाँति अन्वेषण करना चाहिए। यह वाटिका सुन्दर है, रम-णीय है, यहाँ जल प्रपात हैं, कृत्रिम सरिता हैं, यहाँ के सरो-वरों में विविधि भाँति के कमल खिल रहे हैं। वृक्ष परस्पर में हिल हिलकर मिल जुल रहे हैं। यहाँ पालतू मृग भी हैं, सुमधुर बोलने वाले पालतू पक्षी भी हैं। सीता अरण्य प्रिया हैं, उसे सर सरि-ताओं के समीप सुख मिलता है, वह मृगी के समान वन में विहार करने से अत्यंत ही प्रमुदित होती है। यदि वह लंका में होगी तो अवश्य ही इस वाटिका में भ्रमण करने आती होगी, मैं इन वृक्षों की आड़ में छिपकर देखूँ; अब तो प्रातःकाल होने में थोड़ी ही देर है। कुक्कुट बोलने लगे। ब्राह्मणों के घर से वेद ध्वनि सुनायी पड़ने लगी, मंदिरों में शंख घंटे बजने लगे। मैं भी यहाँ वृक्ष पर बैठकर सीता की प्रतीक्षा करूँ। मुझे भी एकान्त में रहना ही है। इससे सुन्दर स्थान कहाँ मिलेगा।" यह सोचकर हनुमान् जी एक सुन्दर सघन वृक्षों वाले सिंसिपा वृक्ष के पत्तों में छिपकर बैठ गये।"

उसी समय उन्हें व्रत उपवास से कृश बनी मलिनवसना जानकी जी दिखायी दीं। उनका चन्द्रमा के समान मनोहर मुख म्लान था। वे एक ही बहुत जीर्ण शीर्ण पीला मलिन वस्त्र पहिने हुए थीं। इनके आभूषण मलिन हो गये थे। यद्यपि उनके . पर मैल जम गया था, वस्त्र मैले कुचैले थे, आभूषण काले पड़ गये थे। बाल चिपटकर लट बन गये थे। फिर भी उनका सौंदर्य राख से ढकी अग्नि के समान दमक रहा था। हनुमान्जीने

आज तक मनुष्यों की, देवताओं तथा गन्धर्व आदि उपदेवताओं की किसी की स्त्री में ऐसा अनवद्य सौन्दर्य नहीं देखा था। इनके अनुपम रूप लावण्यको देखकर हनुमानजी ने निश्चयकर लिया कि ये ही श्रीराम प्रिया सीता हैं। जिस प्रकार कुतियों से घिरी मृगी भयभीत और डरीसी दिखायी देती है उसी प्रकार वे राक्षसियों के भय से कुछ डर रही थीं। इनकी दृष्टि निरंतर नीचे की ओर थी। पृथ्वी को अपने नखों से कुरेद रही थीं, मानों अपने प्रवेश के लिए बिल बनाने का प्रयत्न कर रही हों। हनुमानजी ने अपने मनमें कहा—"हाँ न हों सीता ये ही हैं। ये महाराज जनक की पुत्री हैं, राजकुमारी के सभी चिह्न इनके शरीर में विद्यमान् हैं। श्रीराम ने जिन जिन आभूषणों को बताया था। वे सभी इनके अंगों में यथा स्थान विद्यमान् हैं। जो आभूषण आते समय इन्होंने किष्किन्धा पर गिरा दिये थे। जिन्हें हमने उठाकर रखा था। उनमें से कोई भी आभूषण अपने स्थान में नहीं है जिस पीले रेशमी वस्त्र में बाँधकर वे आभूषण डाले गये थे वह वस्त्र और इनके पहिनने का वस्त्र एकही रंग रूप का है। यद्यपि यह मलिन हो गया है, फिर भी उसके रंग रूप में कोई अन्तर नहीं। यह राम वियोग में वियोगिनी बनी हुई हैं। ये अपने प्राणनाथ की विरह-व्यथा में व्याप्त विरहिनी हैं। इनके सीता होने में कोई संदेह नहीं। अवश्य ही राक्षसराज रावण ने मनोविनोदार्थ इन्हें यहाँ रख दिया होगा। ये राक्षसियाँ इनकी रक्षिका हैं। जनकतनया ये ही हैं। अहा! मैं कृतार्थ हो गया, मेरा लंका आना सफल हुआ। समुद्र का लंघन मेरा सार्थक हो गया। मैंने वैदेही का पता लगा लिया। रामपत्नी के दर्शन से मैं कृत कृत्य हो गया। श्रीराम संसार में सचमुच बड़े साहसी हैं। वे अपनी ऐसी प्यारी भक्ता अनुरक्ता सती साध्वी अद्वितीय

रूप लावण्य वाली पत्नी के बिना जीवित हैं यह उनकी महत्ता है। श्रीराम यथार्थ में बड़ा दुष्कर कार्य कर रहे हैं। जब वे अपनी प्रिया के लिये विलाप करते थे, तो हम सोचते थे, श्रीराम इतने अधीर क्यों होते हैं। अब जगज्जननी जानकी के दर्शनों से तो मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि राम कुछ भी शोक नहीं करते। वे इनके बिना जी रहे हैं यही उनकी महानता है। अब इन्हें मैं अपना परिचय कैसे दूँ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जगन्माता मैथिली के मिल जाने से महावीर पवनतनय परम प्रमुदित हो रहे थे। उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो रहा था। वे एक शाखा से दूसरी शाखा पर बार-बार जाते बार-बार शरीर को हिलाते, पुष्पों को गिराते, पूँछ को फटफटाते और बार-बार सीता के पाद पद्मों में प्रणाम करते।"

उसी समय हनुमान्जी को बड़ा ही हल्ला सुनायी दिया। रक्षा करने वाली राक्षसियाँ उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने अपने अपने वस्त्राभूषणों को सम्हाला। हाथ में वेत्र धारण किये। वे पंक्ति बद्ध खड़ी हो गयीं। सम्मुख सहस्रों जलती हुई मशालें दीखने लगीं। प्रतिहारी आगे-आगे मार्ग दिखाते जाते थे। हनुमानजी ने देखा दशमुख रावण सुमेरु के दश शिखाओं के समान मुकुट पहिने चला आ रहा है। उसके पीछे हजारों, देवता, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, किन्नर तथा गुह्यकों की सुन्दरी स्त्रियाँ चली आ रही हैं, जिन्हें रावण बलपूर्वक हर लाया था। सूर्य के समान उसका तेज था। वह अपनी स्त्रियों के साथ प्रमत्त यूथपति हाथी के समान मदिरा के मद में मदान्ध हुआ चला आ रहा था। हनुमान्जी उसके ऐसे तेज प्रभाव प्रताप और ऐश्वर्य को देखकर सहम गये। वे शीघ्रता से और

ऊँची सघन डालों पर चढ़ गये। पत्तों वाली डालियों में अपने शरीरको छिपाये वे चुपचाप इस प्रतीक्षा में बैठे रहे, कि अब देखें क्या होता है।

रावण को देखते ही सीता डर गयीं। वे भयभीत मृगी के समान काँपने लगीं। उन्होंने अपने घुटनों से उदर तथा हृदय को छिपा लिया। वे बिना आसन के भूमि पर ही बैठी थीं। आते ही रावण ने कहा—"सीते! देखो, बहुत हो गया। तुमने राम के प्रति बहुत भक्ति दिखायी। इससे मैं प्रसन्न ही हूँ, किन्तु जहाँ वश न चले वहाँ मनुष्य को हठ छोड़ देना चाहिये। देखो, तुम समुद्र के इस पार आ गयी हो। पक्षी भी उस पार से उड़कर इस पार नहीं आ सकता। मनुष्य की तो बात ही क्या? राम का मिलना अब तो असम्भव है। राम सम्भव है अब तक जीवित भी न हों। जीवित भी होंगे तो न जाने कहाँ भटकते होंगे देखो, यौवन अस्थिर होता है। तुम इसे शोक में चिंता में दुख में मत बिताओ। जो हुआ सो हुआ उसे भुलाओ। मुझे अपनाओ अच्छा यह तो बताओ तुम मुझमें दोष क्या देखती हो। मैं यशस्वी हूँ, तेजस्वी हूँ, शूरवीर हूँ, सुन्दर हूँ, गुणवान् हूँ, त्रैलोक्यविजयी हूँ। इन्द्रादि लोकपाल मेरे नाम से थर थर काँपते हैं। सहस्रों स्त्रियाँ मुझे चाहती हैं, मेरी कृपा दृष्टि के लिये लालायित बनी रहती हैं। कोई मेरे सम्मुख बोल नहीं सकता। मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। ऐसा मैं तुम्हारे सामने दीन बना प्रार्थना कर रहा हूँ। सुमुखि! तुम्हारे समान सुन्दर संसार में मैंने आज तक नहीं देखी। तुम्हें बना कर ब्रह्मा भी बनाना भूल गया। तभी तो उसने तुम्हारे सदृश कोई दूसरी सुन्दरी और नहीं बनायी। राम राज्यभ्रष्ट ऐश्वर्य हीन है। वह वन वन में भटकता रहता है। भूमि

सोता है वन के कसैले कन्द मूल फलों पर निर्वाह करता है। वह समस्त सुख की सामग्रियों से हीन है, उसका मिलना भी अब असंभव है। अतः अब तुम उसे भूल जाओ मुझे अपना पति बनाओ। ये जितनी स्त्रियाँ सभी तुम्हारी दासी बन जाँयगी। मैं भी तुम्हारे अधीन हो जाऊँगा। मेरा राज, पाट, धन वैभव सब तुम्हारा है। उठो, अब शोक को छोड़ो सुन्दर सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करो। शरीर पर उबटन कराओ, अंग राग कराओ, और मुझे अपनी कृपा का अधिकारी बनाओ।"

राक्षसराज रावण की बातें सुनकर सीताजी क्रोध से थरथर काँपने लगीं। वे अपने इस अपमान से अत्यन्त ही क्षुभित हुईं पर पुरुष से प्रत्यक्ष बात करने के दोष को बचाने के लिये बीच में तृण रखकर बोलीं—"रावण तेरा जन्म उत्तम पुलस्त मुनि के वंश में हुआ है। अपने को तू विश्रवा का पुत्र बताता है। त्रैलोक्य वन्दित लोकपाल कुबेर तेरे भाई हैं। फिर भी तुझे ऐसी धर्म विहीन बातें कहने में लज्जा नहीं लगती। क्या मैं धन ऐश्वर्य की भूखी हूँ, हृदय दो बार नहीं दिया जाता। जिस हृदय को मैं कौशलकिशोर को समर्पित कर चुकी हूँ। वह फिर लौटाया कैसे जा सकता है जो उनके चरणों पर लोट चुकी हूँ, वह स्वेच्छा से पर पुरुष के अङ्ग का स्पर्श कैसे कर सकती है। तू नीच है कामी विषय लम्पट है। मुझे मेरे पति के परोक्ष में चोर की तरह तू हर लाया है। अभी मेरे पति को ज्ञात न हुआ होगा, तू कहीं भी नहीं तो तू स्वर्ग में पाताल में कहीं भी क्यों न रहे वे तुझे ढूँढ़ डालेंगे और मेरा उद्धार करेंगे। उनके बाणों से तू बच नहीं सकता यदि तू अपना कल्याण चाहता है अपनी मृत्यु को शीघ्र ही बुलाना नहीं चाहता तो तू अभी मुझे श्रीराम के समीप पहुँचा दे।"

सीताजी के ऐसे वचन सुनकर रावण बोला—"वैदेही ! तू मेरा अपमान करती है। तुझे विदित नहीं कि मेरे अपमान करने वाले की क्या दुर्दशा होती है। मैंने न कोई अधर्म किया है न पाप। पर स्त्री का अपहरण करना हम राक्षसों का जाति धर्म है। ये सब मेरी स्त्रियाँ इसी प्रकार हरकर बलपूर्वक लायी हुई हैं मैं चाहूँ तो तुमसे बलात्कार कर सकता हूँ। किन्तु मैं करना नहीं चाहता। मैंने तुझे एक वर्ष की अवधि दी है। उसमें अब केवल दो मास ही शेष रहे हैं यदि इस बीच में तैंने हठ नहीं छोड़ी मुझे पति रूप में स्वीकार न किया तो मेरे रसोइये तेरी बोटी-बोटी काटकर अग्नि में पका कर मिर्च मसाले डालकर मेरे लिये जलपान देंगे। अब सम्हल जा। उस वनवासी तापस राम को भूल जा। नहीं तो तेरा कल्याण नहीं।" ऐसा कहकर रावण राक्षसियों को आदेश देकर अपनी स्त्रियों से घिरकर चला गया। अब तो वे राक्षसियाँ सीताजी को डराने धमकाने लगीं। वे सब बड़ी ही क्रूर स्वभाव वाली थीं उनकी आकृति अत्यन्त ही भया-वनी थी। उनमें से किसी का मुँह सूकर के समान था। कोई गौ के समान, कोई सिंह के समान भयंकर मुख वाली थीं, तो किसी की नासिका पनाल के समान थी तो किसी की नासिका थी ही नहीं। किसी के हाथों में लम्बे नख थे। तो कोई छोटी मिचमिची आँखों वाली थीं, किसी की एक आँख थी तो किसी के पेट में आँखें थीं। किसी के पतले पैर थे तो कोई मोटे पैर वाली थीं। कोई कृशोदरी थीं तो किसी का पेट कुप्पा के समान फूला था। किसी के एक कान था तो किसी के एक हाथ, कोई लंबी तड़ङ्गी थी तो कोई गुड़िया के समान ठिगनी थीं। किसी के दाँत हाथी के समान थे तो किसी के बुढ़िया के समान इस प्रकार वे वेष वाली राक्षसियाँ सीता को डराने धमकाने और खिजाने

लगीं। उनकी बातें सुनकर विशालाक्षी जानकी रोने लगीं। जानकी को रोते देखकर एक सरल स्वभाव की वृद्धा राक्षसी ने उन सबको डाँटा और उसके समीप से चले जाने को कहा। उसकी बात मानकर सब राक्षसियाँ इधर उधर चली गयीं। जानकी अकेली ही रह गयीं। हनुमान जी ने अपने परिचय देने का यही उपयुक्त समय समझा। अब वे सोचने लगे—"मैं जानकी के आगे कैसे जाऊँ। यदि मैं वानर रूप से इसके सम्मुख जाऊँगा तो यह सन्वङ्गी डर जायगी, मुझे भी राक्षस ही समझेगी उसे संदेह होगा, कि रावण ही मुझे छलने को ऐसा रूप रखकर आया है। जब तक इनके मन में उत्सुकता न होगी तब तक ये न मेरी ओर देखेगी न मेरी बात ही सुनेगी। अतः सर्व प्रथम मुझे इसके मन में उत्कंठा उत्पन्न करनी चाहिये।" यह सोचकर वे पेड़ की सबसे ऊँची शाखा से नीचे की शाखा पर उतर आये। अपने शरीर को पत्तों से ढाँककर वे बोले—"अवध पुरी के महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम पिता की आज्ञा से अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मण के साथ वन में आये थे। वहाँ मायामृग बने मारीच के पीछे जब श्रीराम गये और पीछे से सीता जी के कहने पर लक्ष्मण जी भी गये तो अकेली देखकर राक्षसराज रावण सीताजी को हर लाया। श्रीराम अपनी प्रिया के वियोग से अत्यन्त ही व्याकुल हुए। सुग्रीव से मैत्री करके बालि को मारकर उन्होंने दशों दिशाओं में अपनी प्राण प्रिया को खोजने के निमित्त बहुत से वानर भेजे हैं। उनमें से मैं एक हूँ। पवन का मैं पुत्र हूँ, हनुमान मेरा नाम है। १०० योजन वाले समुद्र को मैं लाँघकर आया हूँ। यह मेरा सौभाग्य है, कि मैंने जानकी का पता लगा लिया। उन्हें यहाँ अशोक वाटिका में पा लिया। मुझे यह सबसे श्रेष्ठ यश प्राप्त हुआ, कि श्रीराम की प्राण प्रिया सती साध्वी पत्नी का पता सर्व प्रथम मैंने लगा लिया।"

हनुमान्‌जी की ये अमृत से भी श्रेष्ठ श्रुत मधुर बातें सुनकर सीताजी ने अपनी दृष्टि उठायी। वे सिंसपा वृक्ष पर बैठे हनुमान्‌जी को देखकर परम विस्मित हुईं। वे निर्णय ही न कर सकीं, कि यह सत्य है या स्वप्न अथवा मेरे मन का भ्रम। वे बार-बार हनुमानजी को देखतीं और फिर अपने नेत्रों को हथेलियों से मलतीं। रोते-रोते उनके कमल के समान नेत्र सूज रहे थे। वे उन्हें निर्दयता पूर्वक मसल रही थीं। हनुमानजी के नेत्रों में आँसू आ गये। वे दुःखिनी वियोगिनी सीता के मनस्ताप का अनुभव करते हुए शनैः-शनैः वे पेड़ से नीचे उतरने लगे। अब सीताजी को एक शंका उत्पन्न हुई, संभव है, वेष बदलकर राक्षसराज रावण ही मुझे वश में करने को ये बातें कर रहा हो। किन्तु यह रावण हो नहीं सकता क्योंकि इसकी विनम्रता बनावटी नहीं है, इसकी मुखाकृति निर्दोष है इसकी बातों में छल कपट नहीं। फिर सबसे बड़ी बात यह है, कि इसे देखने से मेरे अन्तःकरण में सुख उत्पन्न होता है। आनन्द की वृद्धि होती है। हृदय में अपनेपन का भाव उदय होता है। फिर भी सहसा किसी पर पुरुष पर स्त्री को विश्वास न कर लेना चाहिए। यह सोचकर सीता जी बोलीं—"वानर तुम सचमुच में मेरे प्राण नाथ के दूत हो, तो तुम्हारा स्वागत है, मैं तुम्हारा अभिनन्दन करती हूँ और यदि तुम मायावी रावण हो, तो मैं तुम्हारे इस कार्य की निंदा करती हूँ, तुमसे प्रार्थना करती हूँ मुझे अधिक कष्ट मत दो। मेरे हृदय में राम रम रहे हैं। श्रीराम के अतिरिक्त मैं किसी का चिन्तन नहीं कर सकती स्वेच्छा से मृत्यु भले ही वर सकती।"

यह सुनकर हनुमानजी के नेत्रों से टप-टप करके मोटे मोटे अश्रु भूमि पर गिर पड़े। वे हृदय से भर कर हाथ जोड़े दीन भाव से खड़े हो गये और बोले—माताजी! [illegible]

करें। मैं रावण नहीं। वानरराज केशरी की पत्नी अञ्जनी के उदर से वायु के द्वारा मेरा जन्म हुआ है। हनुमान मेरा नाम है। सुग्रीव का मैं सचिव हूँ, श्रीराम ने मुझे आपको खोजने भेजा है। मेरे जैसे असंख्यों वानर श्रीराम की आज्ञा से आपको भूमण्डल पर खोज रहे हैं। देवि! आप मेरे विषय में संदेह न करें। माँ मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ, कि मैं वायु का पुत्र, सुग्रीव का सचिव हनुमान हूँ।"

हमनुमानजी की ऐसी मधुर सत्य से सनी सुन्दर उक्तियों वाली वाणी सुनकर वैदेही को विश्वास हो गया, कि यह रावण नहीं श्रीराम का दूत है। मेरे प्राणाधार ने मुझे खोजने इसे भेजा है। यह स्मरण करके सीता जी को परम हर्ष हुआ। कि राघव मुझे भूले नहीं वे मेरे पाने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं! प्रसन्नता प्रकट करती हुई पतिव्रता सीता बोलीं—"वानर श्रेष्ठ! मुझे विश्वास हो गया, तुम मेरे प्राणनाथ के प्रिय पार्षद हो। तुम दया दाक्षिण्य युक्त राघव के विश्वसनीय दूत हो। श्रीराघव ने मेरे लिए क्या कहा है। मुझे मेरे हृदयधन के सभी समाचार सुनाओ—"इतना कहकर जानकी अत्यन्त स्नेह से ममता भरी दृष्टि से हनुमानजी को देखने लगीं।"

वैदेही का मेरे ऊपर पूर्ण विश्वास हो गया है, वे मुझे आ मायावी राक्षस नहीं समझतीं, इस बात से केशरी नन्दन महावीर हनुमान को परम प्रसन्नता हुई। वे और भी अधिक विश्वास दिलाने के निमित्त मधुर वाणी में बोले—"माताजी! मुझे दीन वत्सल लक्ष्मणजी के बड़े भाई श्रीराघव ने आपके समाचार लेने भेजा है। उन्होंने अपनी कुशल कही है और आपकी कुशल पूछी है। चलते समय चिह्नारी के लिये उन्होंने अपनी राम नामाङ्कित मुद्रिका मेरे हाथों आपको देने के निमित्त भेजी है। आप

इस मुद्रिका को देखें और मुझ पर विश्वास करें।" यह कहकर हनुमानजी ने वह चमकती हुई राम नामाङ्कित मुद्रिका सीताजी को दी। उस मुद्रिका को पाकर सीताजी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उन्हें ऐसा लगा मानों साक्षात् श्रीराम ही मिल गये हों। उन्होंने अत्यन्त स्नेह और आनन्द के साथ उस मुद्रिका को बार बार हृदय से लगाया और अतृप्त नेत्रों से उस पर अंकित किये अक्षरों को अपलक निहारती रहीं। कुछ काल के लिये वे इस बात को भूल ही गयीं कि मैं लंका में हूँ। उन्हें श्रीराम के सम्मिलन का सा सुख प्राप्त हुआ।

कुछ काल के पश्चात् वैदेही बोलीं—"हनुमान! तुमने मुझे इतना सुखद सम्वाद सुनाया, मुझे इतनी प्रियवस्तु लाकर दी, इस उपकार का बदला मैं सहस्रों जन्मों में भी न दे सकूँगी। मुझे तुम्हारे राम भक्त होने में अब कोई संदेह नहीं। मेरे सब संदेह निवृत्त हो गये। अब तुम मुझे मेरे प्राणधन के समाचार सुनाओ? वे कभी मेरी याद करते हैं क्या? कथा प्रसंग में कभी मेरा नाम लेते हैं? मेरे सम्बन्ध की कोई कथा तुमने सुनी हो तो मुझे बताओ। मुझे खोजने के लिए वे कुछ प्रयत्न कर रहे हैं क्या? उन्हें पता चल गया है न कि मैं रावण के यहाँ बन्दिनी बनी पड़ी हूँ क्या उन्होंने मेरे बड़े देवर भरत के समीप मेरे हरे जाने का किसी के हाथों समाचार भेजा है? क्या भरत मुझे छुड़ाने को अपनी सेना भेजेंगे। वानर राज सुग्रीव से श्रीराम की मित्रता हो गयी है। क्या सुग्रीव मित्रता का निर्वाह करने अपने वानरों को लंका भेजेंगे? वे क्या मेरे ऊपर कृपा करेंगे। हनुमान्! क्या मैं अपने प्राणनाथ से जीवन में कभी मिल सकूँगी? क्या मैं उनकी साँवरी मूरत को इन

से निहार सकूँगी ?" यह कहते कहते सीता जी सिसकने लगीं। वे मुँह ढककर रोने लगीं।

सीताजी को देखकर हनुमान् जी के आँखों में भी आँसू आ गये। वे कष्ट के साथ कहने लगे—"माँ तुम धन्य हो। यथार्थ में तुम ही श्रीराम की प्रिया होने योग्य हो। जननी! मैं क्या बताऊँ मेरी वाणी में शक्ति नहीं। श्रीराम एक पल भी तुम्हें नहीं भूलते। वे निरन्तर तुम्हारी ही स्मृति में विह्वल बने रहते हैं। तुम्हारा नाम ले लेकर रोते रहते हैं। उन्होंने खाना पीना सब छोड़ दिया है। लक्ष्मण बहुत आग्रह करते हैं तो दिवस के तीसरे भाग में कुछ कंद मूल-फल ले लेते हैं। वे सोते नहीं, तुम्हारी स्मृति में रात्रि भर जागते रहते हैं। उन्हें अपने शरीर की सुधि नहीं। शरीर पर दंश-मशक आकर बैठ जाते हैं, तो उन्हें उड़ाते नहीं। सामने की वस्तुओं को पहिचानते नहीं। वे हा प्रिये! हा प्रिये! कहकर दीर्घ निश्वास छोड़ते रहते हैं। तुम्हारी खोज करने के लिये उन्होंने सुग्रीव से मित्रता की। बालिका वध किया, सुग्रीव ने दशों दिशाओं से वानरों को बुलाकर सर्वत्र भेजा है। मुझे यहाँ भेजा है। मैं कूदने वालों में श्रेष्ठ हूँ। मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता। तुम मुझे आज्ञा करो मैं क्या करूँ। मुझ मे सब सामर्थ्य है। मैं नीच रावण को जीवित ही पकड़ कर श्रीराम के सम्मुख ले जा सकता हूँ, कहो तो सम्पूर्ण लंका को उठाकर समुद्र में बोर सकता हूँ; समस्त राक्षसों को मार सकता हूँ। आप इतनी अधीर न हों। आपकी आज्ञा हो तो मैं अभी आज ही आपको अपनी पीठ पर बिठाकर किष्किन्धा के पर्वत पर बैठे श्रीराम से मिला सकता हूँ। तुम्हें चढ़ाकर मैं वायु वेग के समान समुद्र के ऊपर से जाऊँगा। इस सौ योजन लम्बे समुद्र को गौखुर के समान बात की बात में पार कर जाऊँगा।"

यह सुनकर सीता जी ने कहा—"अरे, भैया! हनुमान्! यह तो तैंने बन्दर पने की बात कह दी। अपना इतना पराक्रम जताकर तो तैंने अपनी कपि स्वभाव की चंचलता प्रकट कर दी। तू इतना छोटा है, मैं इतनी बड़ी हूँ तू मुझे लेकर इतने भारी समुद्र को पार कैसे कर सकता है?"

सीताजी की ऐसी बात सुनकर हनुमान् जी को दुःख हुआ उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। वे सोचने लगे—"सीता जी मेरा पराक्रम नहीं जानतीं, तभी ऐसा कह रही हैं। यह सोच कर उन्होंने अपने शरीर को बढ़ाया। वे विशाल पर्वत के समान बढ़ गये थे। उनके इस प्रकार बढ़े हुए रूप को देखकर सीता जी परम विस्मित हुईं और बोलीं—"हनुमान्! मैं तेरी शक्ति को जानती हूँ। तू इतना बली, विद्वान, विचार शील, विवेकी, विजयी, विनयशील, तथा वानरामगण्य न होता, तो देश काल और बलाबल के ज्ञाता श्रीराम तुझे इस कार्य को भेजते ही क्यों? किन्तु भैया! मेरा तेरी पीठ पर जाना उचित नहीं। इसमें कई दोष हैं। तू वेग से चलेगा, मैं इतने बड़े समुद्र को देखकर डर जाऊँगी। कहीं शीघ्रता में मैं तेरी पीठ से खिसक गई तो गिरकर मर जाऊँगी, राक्षसों को विदित हो गया तो वे तुम्हारे [illegible] आवेंगे, उस समय तू मेरी रक्षा करेगा, या राक्षसों से [illegible]; यदि उन्होंने मुझे पुनः पकड़ लिया तो अवश्य ही मुझे [illegible] देंगे। और फिर भैया! देख, सबसे बड़ी बात यह है, कि मैं स्वेच्छा से किसी पर पुरुष का स्पर्श कर नहीं सकती। रावण तो मुझे बलपूर्वक मेरी इच्छा के विरुद्ध [illegible], उस समय मैं विवश थी। तू मुझे ले जाकर [illegible] किन्तु यह न मेरे अनुरूप होगा, [illegible]

युद्ध करके राक्षसों को रण में पराजित करके मुझे ले जायँगे। इसी में उनकी प्रशंसा है।"

यह सुनते ही हनुमानजी का हृदय भर आया। वे बोले—"माता! य वचन श्रीराम की पत्नी के ही योग्य हैं, दूसरी किसी स्त्री में ऐसा धैर्य नहीं। माँ! आज मैं आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गया, मैंने अपने जीवन का फल पा लिया। मेरा जन्म लेना सार्थक हुआ। देवी! श्रीरामचन्द्र को तुम आह्लादिनी शक्ति हो, तुम प्रेरिका हो, जगज्जननी और जगदीश्वरी हो मुझे अब जाने की आज्ञा दीजिये। मैं तुरन्त ही श्रीराम के समीप जाऊँगा और अपने वानर भालुओं के सहित पुनः यहाँ श्रीराम और लक्ष्मण के साथ आऊँगा।"

हनुमान जी की बात सुनकर सीता जी बोलीं—"वत्स! तुम्हें देखकर मैं अपना दुःख भूल गयी थी। अब तुम भी जाने को कह रहे हो। पता नहीं अब तुम लौटकर आवोगे भी या नहीं। इतने भारी समुद्र को बिना किसी सहारे के तीन ही पार कर सकते हैं। या तो गरुड़ या पवन अथवा पवन के तनय तुम। सब भालु वानर समुद्र को कैसे पार करेंगे श्रीराम लक्ष्मण यहाँ तक कैसे आवेंगे। यही मुझे संदेह हो रहा है भैया! मुझे यहाँ पल-पल भारी हो रहा है क्षण क्षण युग के समान बीत रहा है। यहाँ सभी राक्षस हैं, सभी की खोटी बुद्धि है। एक मात्र रावण के छोटे भाई महात्मा विभीषण साधु स्वभाव के धर्मात्मा हैं। उनकी एक बड़ी सुन्दरी सीधी लड़की है, उनका नाम कला है, वह कभी कभी मेरे पास आती है और मुझे सान्त्वना देती है। नहीं तो रात्रि दिन रोते ही बीतता है।"

विभीषण की प्रशंसा सुनकर हनुमान जी ने सोचा—"लंका में भी विभीषण कैसे भगवद्भक्त महात्मा रहते हैं, यह बड़े

आश्चर्य की बात है। यात्रा वहीं सफल समझी जाती है जिसमें किसी भगवद्भक्त महात्मा का दर्शन हो जाता है। जगज्जननी का समाचार तो मैंने पा लिया। अब किसी प्रकार विभीषण के दर्शन हो जायँ, ऐसा उपाय मुझे करना चाहिये।" यह सोचकर वे जानकी जी से बोले—"माताजी! देखिए, मुझे बड़ी भूख लगी है, आज्ञा दो तो मैं इन वृक्षों से फल तोड़ कर खा लूँ। मेरे हाथों में खुजली सी हो रही है, आप कहें तो कुछ घर फोड़ दूँ, कुछ वृक्ष और पर्वतों को तोड़ दूँ। अब मैं जाना चाहता हूँ। मुझे जाने की आज्ञा भी दीजिये, अपना कोई चिन्ह भी दीजिये और कुछ मनोरंजक-वानरी चंचलता-प्रकट करने की भी अनुमति दीजिये। क्योंकि हम वानरों का यह स्वभाव ही है, इसके बिना हम रह नहीं सकते।"

जिस प्रकार श्रीराम जी ने अपनी अंगूठी दी थी, उसी प्रकार रोते रोते जानकी जी ने अपना चूड़ामणि नाम का शिरका आभूषण दिया और कहा—"आर्य पुत्र से मेरा प्रणाम कहना पवन तनय! उनसे कहना मेरे अपमान करने वाले कौए पर तो आपने ब्रह्मास्त्र छोड़ा था। अब जो मुझे बलपूर्वक हर लाया है, उस पर आप क्रोध क्यों नहीं करते? केशरीनन्दन! तुम सुमित्रानन्द वर्धन श्रीलक्ष्मण जी से मेरी ओर से कुशल पूछना। कपिराज सुग्रीव को मेरी दयनीय दशा बताना, क्या वे अपने नख और दाढ़ वाले वानरों को भेज कर मेरा उद्धार करायेंगे। बेटा! मैं नहीं चाहती तुम मेरे समीप से जाओ। तुम्हें देखकर मुझे सुख हो रहा है, डूबती हुई मुझे तुम्हारा बड़ा सहारा है, किन्तु जाना ही होगा। मैं देवी देवताओं को मनाती रहूँगी, तुम सकुशल लौटकर चले जाओ और श्रीराम को लेकर फिर आओ। परन्तु तुम तो कूद कर आ गये हो। श्रीराम तथा लक्ष्मण तो इतना कूद नहीं सकते।

तुम्हारे वानर भी नहीं कूद सकते, तुम, तुम्हारे पिता और हरिवाहन गरुड़ के अतिरिक्त इस १०० योजन वाले समुद्र को कौन लाँघ सकता है। देखो जैसे प्रारब्ध हो। तुम समुद्र पार करते करते थक गये होगे उचित समझो तो कहीं छिप कर विश्राम कर लो।"

हनुमान् जी ने सीताजी की दी हुई चूड़ामणि अपनी उँगली में पहिन ली और हाथ की अंजलियों को सिरपर रख करके बोले— "माता जी! आप चिन्ता न करें, श्रीराम समाचार पाते ही सुग्रीव के सहित सेना सजाकर शीघ्रातिशीघ्र यहाँ आवेंगे। जननी! आप सन्देह को त्याग दें सुग्रीव के वानर एकसे एक बली हैं, उनके लिए समुद्र लाँघना एक खेल है। मैं तो उन सब वानरों से छोटा हूँ, इसी से समझ लो मुझे धावक बनाकर भेजा गया है। धावक कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं होता। साधारण बल बुद्धि के लोग ही सन्देह ले आने ले जाने को रखे जाते हैं। वानर सब कूदकर यहाँ आवेंगे। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को मैं अपनी पीठ पर चढ़ाकर लाऊँगा। मुझे आज्ञा दीजिये।"

इतना कहकर हनुमानजी ने भूमि में सिर रखकर जगज्जननी जानकी के पादपद्मों में प्रणाम किया और फिर वे एक सघन वृक्ष पर चढ़ गये। अब तो वे पूरे बन्दर बन गये। एक वृक्ष को तोड़, उस वृक्ष को उजाड़, इस फुलवारी को उखाड़, उस मन्दिरों को फोड़ इस प्रकार की तोड़ फोड़ करने लगे। उन्होंने अशोक वाटिका को क्षत विक्षत कर डाला। बहुत से वृक्ष जड़ से उखाड़ दिये, बहुतों को फल पत्तों से रहित कर दिया। क्रीड़ा भवनों के कँगूरे तोड़ दिये। इस प्रकार वे अकारण वानरी चंचलता करने लगे।

वाटिका के सेवकों ने दौड़कर यह समाचार दशानन को

दिया। क्रुद्ध होकर उसने कुछ सैनिकों को भेजा। हनुमान जी ने आते ही उन्हें यमसदन पठा दिया, फिर बड़ी सेना आई, उसने कुछ देर तो वीरता दिखायी अन्त में उसे, भी हनुमानजी ने मार भगाया। अब तो रावण घबराया। उसने अपने पुत्र अक्षको कपि से लड़ने पठाया। वह अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर सुग्रीव सचिव के समीप समर के निमित्त आया। हनुमान जी ने कुछ काल तो उसे खिलाया, पुनः तुरन्त उसे भी यमराज का द्वार दिखाया।

अक्षय कुमार की मृत्यु सुनकर रावण के कान खड़े हो गये, उसने अपने सर्व श्रेष्ठ पुत्र इन्द्रजीत को कपि से युद्ध करने भेजा। इन्द्रजीत गर्जता-तर्जता अपने बल पराक्रम को प्रकट करता हुआ हनुमान् जी के समीप आया। उसने पूरी शक्ति लगाकर पवन-तनय से समर किया। किन्तु वह महावीर के बल की थाह न पा सका। जब उसने देखा यह वानर तो अजेय है इसे समर में जीतना दुष्कर कार्य है, तब तो उसने नागपाश में हनुमान जी को बाँध लिया। वरुण देव का यह अस्त्र है, अतः उसके सम्मानार्थ हनुमानजी स्वेच्छा से बँध गये। इन्द्रजीत बड़े गर्व से उन्हें बाँध कर दशानन के समीप ले गया।

इतन भीम पराक्रमी वानर को देखकर दशानन दाँत पीसते हुए बोला—"क्यों रे वानर तू कौन है?"

हनुमानजी ने कहा—"मैं सुग्रीव का सचिव हूँ, पवन का तनय हूँ, हनुमान् मेरा नाम है। श्रीराम का मैं दूत हूँ, सीताजी का पता लगाने आया हूँ।"

रावण ने कहा—"फिर तैंने वृक्षों को क्यों उखाड़ा, वाटिका को क्यों उजाड़ा?"

हनुमान्जीबोले—" भूख लगने पर हम लोग हलुआ पूड़ी तो

बनाते नहीं वृक्षों के फल तोड़ तोड़कर खाते हैं। मीठे-मीठे पके-पके खा लेते हैं। कड़वे, खट्टे, कच्चे फेंक देते हैं। फल खाने के लिये फल तोड़े।"

रावण—"वृक्षों के उखाड़ने से क्या प्रयोजन था ?"

हनुमान्‌जी—"यह हम वानरों का सहज स्वभाव है। सहज स्वभाव का त्याग कठिन है।"

रावण—"तैंने मेरे सैनिकों को क्यों मारा ?"

हनुमान्—"लड़ाई में मार धाड़ होती ही है। उन्होंने मुझे मारा मैंने उन्हें मारा।"

दाँत किटकिटाकर दशानन बोला—"अच्छी बात है, बन्दर को मार डालो।"

इतना सुनते ही दशानन के छोटे भाई विभीषण "राजन्! आप नीति के ज्ञाता हैं। वेद शास्त्रों के पंडित हैं। आप यह न्याय विरुद्ध आज्ञा क्यों दे रहे हैं। दूत सदा से देशों में अवध्य माने गये हैं। दूत को कभी कोई नहीं मारता। यदि आप में बल है, तो आप इसके स्वामी को मारिये। यह जो भी कुछ कह रहा है कर रहा है, सब अपने स्वामी के संकेत को पाकर कर रहा है। यह व्यक्तिगत रूप से तो निर्दोष ही है।"

रावण ने कहा—"दूत को युद्ध करने का भी तो विधान नहीं है। इसने दूत धर्म के विरुद्ध युद्ध किया है अतः यह अवश्य दण्डनीय है।"

विभीषण ने कहा—"राजन्! आत्म रक्षा के लिये युद्ध करना दोष नहीं। फिर भी यदि आप इसे दोषी समझते हैं, तो इसे अन्य कोई दंड दे सकते हैं। प्राणदंड देना दूतों को अत्यन्त पाप है। दूतों को दोषी होने पर अंग भंग कर सकते हैं, दाग सकते हैं और

भी कोई ऐसा कार्य कर सकते हैं, जिसमें दूत का स्वामी अपना अपमान समझे।

यह सुनकर रावण ने कहा—"विभीषण का मत सुन्दर है। वानरों को अपनी पूँछ बहुत प्रिय होती है, अतः इसकी पूँछ को जला दो। जब यह बिना पूँछ के पहुँचेगा तो सभी इसे देखकर हँसेंगे बड़ा आनन्द रहेगा। उन्हें भी पता चलेगा, लंका जाने में कल्याण नहीं।"

सबने इस बात का समर्थन किया। हनुमान् जी बड़े ध्यान से विभीषण की ओर देखते रहे। उनके हृदय में ऐसा प्रेम उमड़ रहा था कि इन संतशिरोमणि को हृदय से लिपटालूँ, इन्हें आँखों में बिठालूँ, सिर पर चढ़ालूँ, इनके पैरों को पकड़ लूँ, इनसे लिपट जाऊँ, किन्तु वे अपने भावों को दबाये रहे। हृदय की बातों को हृदय जान ही लेता है। दो शुद्ध मन मिलकर एक हो जाते हैं। विभीषण ने भी मन ही मन पवन पुत्र के पुनीत पाद-पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम किया। उसकी सुन्दर सुखकर मूर्ति को हृदय में धारण किया। दृष्टि से दृष्टि मिलने पर ही प्रगाढ़ मैत्री हो गई। सीताजी पहिले ही विभीषणजीकी प्रशंसा कर चुकी थीं। हनुमानजी इनसे मिलने को लालायित भी हो रहे थे। जिसका जिस पर सत्य स्नेह होता है, वह उसे निश्चय ही कभी न कभी मिल ही जाता है।

इधर तो दोनों रामभक्त परस्पर में एक दूसरे का मानसिक स्पर्श और आलिङ्गन कर रहे थे, इधर राक्षस पवन पुत्र की पूँछ में पुराने वस्त्र रुई और सन लपेट रहे थे। तेल में डुबो डुबोकर वे उन सबको गीला करते जाते थे। स्वेच्छानुसार रूप रख लेने वाले हनुमानजी शनैः शनैः पूँछ को बढ़ाते जाते थे। बढ़ते बढ़ते वह पूँछ वासुकी नाग से भी बड़ी हो गयी। लंका भर की

रूई, तेल, सन और पुराने कपड़े समाप्त हो गये। अब राक्षसों ने उसमें आग लगा दी। हनुमानजी ने जब देखा पूँछ में आग लग गयी है तो वे उसे उठा उठाकर राक्षसों के मुख में मारने लगे। सभी हाय हाय चिल्लाने लगे। हनुमानजी हँसने लगे। कूदने लगे, उछलने लगे, पूँछ पटकने लगे, किलकिला शब्द करने लगे तथा अन्य भी विविध भाँतिकी वानरी चंचलता प्रकट करने लगे। रावण ने देखा यह वानर तो बड़ा विचित्र है, उसने आज्ञा दी इसे पकड़ लो और सम्पूर्ण लंका में इसे घुमाकर समुद्र के तीर पर छोड़ आओ।"

हनुमानजी ने सोचा—अच्छा है; इसी मिससे मैं सम्पूर्ण लंका को देख आऊँगा। रात्रि में देख भी नहीं सका था। कोई पथप्रदर्शक भी नहीं था, अतः वे बिना आनाकानी किये बँध गये, राक्षस उन्हें बाँधकर गली गली, द्वार द्वार घुमाने लगे लंकापुरी में सर्वत्र कुतूहल मच गया। छोटे छोटे बच्चे दौड़ने लगे। राक्षस हँसने लगे। स्त्रियाँ मुँह मटकाने लगीं। लड़कियाँ वानर को खिजाने लगीं। हनुमानजी सबकी सहते थे—अभी सब देख लूँ, तब इन सबको फल चखाऊँगा।

राक्षसियों ने जाकर सीताजी से कहा—"सीते! सुनती है? तू जिस वानर से घुल घुलकर बातें कर रही थी, उसकी पूँछ में आग लगाकर उसे नगर में घुमाया जा रहा है।" इतना सुनते ही सीताजी ने अग्नि की स्तुति की वे हनुमानजी के लिये हिमसे भी शीतल हो गये, उनके पिता पवन तो उनके अनुकूल समस्त चेष्टायें कर ही रहे थे। हनुमानजी बार बार सोचते—मुझे जाड़ा क्यों लग रहा है। यह अग्नि मुझे जलाती क्यों नहीं। मेरे शरीर में उष्णता क्यों नहीं आती।

जब राक्षसों ने हनुमानजी को इधर उधर घुमाया और

उन्होंने सब सड़क गली, कूँचे, छज्जे, अटा, अटारी, महल - द्वार देख लिये तब उन राक्षसों के ही मुँह पर पूँछ मारी पूँछ के लगते ही उनकी दाढ़ी और मूछ फुर्र से जल गईं। वे हनुमानजी को छोड़कर भागे। अब तो हनुमानजी स्वच्छन्द हो गये वे एक ऊँचे से भवन पर चढ़ गये। वहाँ से वे लगे सबमें आग देने। जिधर भी जाते पूँछ फिरा देते। घर जलने लगे, सामग्री स्वाहा होने लगी। राक्षसियाँ चिल्लाने लगीं। लड़की लड़के रोने लगे, स्त्री पुरुष घर छोड़कर भागने लगे, सर्वत्र भगदड़ मच गई, कोई हाथ मलने लगे। कोई घरों में जलने लगे, धातुओं के बर्तन गलने लगे; चन्दन के बने भवन जलने लगे, कोई रोते कोई चिल्लाते। कोई किसीको बुलाते कोई धैर्य बँधाते, कोई अंगों को हिलाते हुए इधर से उधर दौड़ने लगे। हनुमानजी को एक खेल हो गया। कभी वे इधर आते कभी उधर चले जाते पुनः लौट आते। इस प्रकार उन्होंने पूरी लंका जला दी लंका के घाट, महल, भवन, मन्दिर; बाग; बगीचे सबके सब जल गये।

अब हनुमान जी को एक बड़ा भारी संदेह हुआ, कहीं अशोक वाटिका में आग लगने से सीता जी भी तो साथ में नहीं जल गयीं। इस विचार के आते ही वे समुद्र में कूद पड़े। अपनी पूँछ बुझाकर वे दौड़े दौड़े अशोक वाटिका में आये। उन्होंने सीता जी को प्रणाम करके कहा—"माता जी! अब मुझे जाने की आप अनुमति दीजिये। अब मेरा सब काम हो गया। मैंने राक्षसों के बलाबल का पता लगा लिया। अब मैं सेना सहित श्रीराम के साथ शीघ्रातिशीघ्र लौटकर आऊँगा तथा तुम्हें प्राण नाथ से मिलाऊँगा।"

इतना सुनते ही सीता जी परम प्रमुदित हुईं। उनका हृद

और कंठ भरा हुआ था। वे बड़े कष्ट से अस्पष्ट अक्षरों में बोलीं—"हनुमान्! तू सचमुच में बड़ा वीर है। तेरी वीरता, बुद्धिमत्ता, निर्भयता, कार्य-कुशलता, सुशीलता, शालीनता महत्ता तथा कष्ट सहिष्णुता आज मैंने देखी। पुत्र! मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ, तू सदा अजर अमर हो। कोई तुझे युद्ध में पराजित न कर सके। तू अपने समान अद्वितीय योद्धा हो, तेरे शरीर पर शस्त्रों का प्रहार न हो सके। तेरी कीर्ति संसारमें तब तक अक्षुण्ण बनी रहे, जब तक सूर्य चन्द्रमा विद्यमान् हैं। बेटा! तेरा पथ मंगल मय हो, तू सर्वत्र विजयी हो, राम लक्ष्मण को लेकर तू दो महीने के भीतर ही आ जाना। तब तक मैं जैसे होगा तैसे कष्ट पूर्वक राम राम रटती हुई अपने जीवन को धारण करती रहूँगी यदि दो मास तक तुम न आये तो मुझे जीवित न पाओगे। या तो ये राक्षसही मुझे मार डालेंगे या मैं स्वयं ही आत्महत्या कर लूँगी श्रीरामजी से लक्ष्मण, सुग्रीव तथा समस्त वानरों से मेरी ओर से कुशल पूछना। मेरे प्राण नाथ को मेरी बार-बार याद दिलाना। हा! वह कब स्वर्ण अवसर होगा, जब मैं अपने हृदय धन के दर्शन कर सकूँगी, उनकी गोद में सिर रखकर फूट फूट कर रोऊँगी। वे अपने कमल से भी कोमल श्रीहस्तों से मेरे अश्रु पोछेंगे। हनुमान! मैंने पूर्व जन्म में ऐसे कौन से पाप किये हैं, जिसके परिणाम स्वरूप मैं अपने प्राणनाथ से पृथक् की गई हूँ। तू मेरे सब समाचार राजीव लोचन से कहना।" इतना कहते २ सीता जी फूट फूट कर रोने लगीं। हनुमान् जी ने पुनः पुनः उनकी चरण वन्दना की। आने का आश्वासन दिया और फिर उनकी प्रदक्षिणा करके वे चल दिये। हनुमान् जी को जाते देखकर सीता जी मूर्छित हो गयीं। हनुमान् जी छलांग मारकर कानों को चिपटे करके बाण के समान समुद्र के ऊपर ही ऊपर

जा रहे थे। पार के पास पहुँचकर उन्होंने भयंकर गर्जना की। उनकी गर्जना को सुनकर अंगद, जामवन्त आदि वानर भालू किल किला शब्द करने लगे। हनुमान जी की गर्जना सुनकर सब को विश्वास हो गया, हनुमान् जी सीताजी का पता लगाकर आ रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो जैसे मृतक शरीर में प्राण आने पर देह चैतन्य होकर उठ पड़ता है, उसी प्रकार समस्त भालू वानर हनुमानजी का आगमन सुनकर उठ पड़े और उनके स्वागतार्थ पुष्पों की वृष्टि करने लगे।"

छप्पय

विरह व्यथामहँ विकल जानकी निरखी कपिवर।
राम-कथा कहि दई मुद्रिका दुखहर सुखकर॥
वैदेही पुनि पलटि दई चूड़ामनि. कपिकूँ।
लै, कपि क्रीड़ा करैं उखाड़े बहु वृक्षनिकू॥
आये लड़िबे निशाचर, मारि पठाये. यमसदन।
नाग-पाशमें गये. बँधि, कुपित कहे लखि दशानन॥

समुद्रतीरपर श्रीराम

(६६६)

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-
सम्भ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्यरूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥*
(श्री० भा० ९ स्क० १० अ० १३ श्लो०)

छप्पय

मारौ कपिकूँ तुरत विभीषण नीति बताई।
कपड़ा तेल लपेटि पूँछ महँ आगि लगाई॥
कपि हित शीतल अनल भये सब पुरकूँ जारैं।
पकरन आवें निकट पूँछ कसि मुँह पै मारैं॥
यों जराइ लंका पुरी, कूदि पार सागर भये।
निरखे विजयी पवनसुत, अंगदादि प्रमुदित भये॥

सुनते हैं अमृत स्वर्गमें है, उसका पान स्वर्गीय लोगही करते हैं। फिर भी पृथिवीपर कुछ वस्तुओं को अमृत कहा जाता है।

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! अनुनय विनय करने पर भी समुद्र जब प्रसन्न न हुआ तब श्रीरामजी कुपित हुए। उनके कोप के कारण विस्फारित कटाक्षभङ्गी से समुद्र में रहने वाले नक्र, मगर आदि विचलित होकर तड़फड़ाने लगे। जिसका भयके कारण गर्जन स्तम्भित हो गया था, वह सिन्धु सिरपर रत्नादिकोंके उपहार लेकर श्रीरामके चरणारविन्दोंमें उपस्थित होकर इस प्रकार कहने लगा।"

दूध, दही, घृत, शर्करा और मधु इन पाँचों को पंचामृत कहते हैं। गंगाजल तो श्रीहरि का चरणामृत प्रसिद्ध ही है। कान्ता के अधरामृत की बात भी काव्यों में पढ़ी है उसे अनुभवी ही जानें। जाड़े के दिनों में अग्नि को भी अमृत कहा है। सुनते हैं शरद पूर्णिमा के दिनकी चन्द्रमा से अमृत झरता है, खीर को चाँदनी में रख दो तो उसमें अमृत उतर आता है। ये सब सत्य ही होंगे, किन्तु प्रिय दर्शन रूप जो अमृत है, वह तो रोम रोम में जीवन का संचार कर देता है अपने प्रेमी के प्रेमियों से भी मिलने में बड़ा सुख होता है। अपने प्रेमी की कहीं पाती मिल जाय प्रेमी का जो संदेश लेकर आता है, उससे बढ़कर संसार में उप-कारी कौन होगा। श्रीरुक्मिणीजी के समीप जब उनका भेजा ब्राह्मण श्रीकृष्ण का संदेश लेकर पहुँचा तो प्रेम के आवेगमें श्रीजी उसके लिये कुछ पारितोषिक खोजने लगीं। कोई भी उन्हें उप-युक्त पारितोषिक न सूझा। अरे, जो इतना सुखद सम्वाद लेकर आया है उसे तीनों लोकों का राज्य या ब्रह्माण्ड का आधिपत्य दे देना उसके महत्व को घटा देना है। अतः श्रीजीने इस विप्र के चरणों में केवल सिरमात्र ही झुका दिया। अर्थात् देने को मेरे समीप कोई उपयुक्त वस्तु नहीं। कुछ देकर इस उपकार का बदला चुकाने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। सदा तुम्हारी ऋणी बनी रहूँगी। यथार्थ में जो हमारे प्यारे से मिलाता है या उनका संदेश लाकर देता है वह समस्त उपकारियों में श्रेष्ठ है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! सीताजी के सब समाचार लेकर उन्हें भाँति भाँति से धैर्य बँधाकर लंका को जलाकर भस्म बनाकर हनुमानजी फिर उछले। अबके वे एक ही सपट्टे में उस पार पहुँच गये। पारपर प्रतीक्षा में बैठे अंगदादि वानरों ने जब रामबाण के समान, वायु के समान तथा हरिवाहन गरुड़ के समान हुए

हनुमान्‌जी को देखा तो वे किलकिला शब्द करने लगे। पूँछ फटकारने लगे। वृक्षों पर चढ़ने और उतरने लगे। फूली फूली डालियों को तोड़ने लगे। फलों के ढेर लगाने लगे। वस्त्रों को हिलाने लगे। जय जयकार के शब्दों से उन्होंने दशों दिशाओं को गुँजा दिया।

हनुमान्‌जी ने आते ही जाम्बवान् आदि बड़े बूढ़े वानर रीछों के पैर छुए। राजकुमार अंगद को प्रणाम किया। छोटे छोटे वानरों ने हनुमान्‌जी की चरणवन्दना की बहुतों को गले से लगाया। सभी ने एक स्वर में पूछा—"क्या जनक सुता का पता लगा ?"

"देख आया मैं सीताजीको—"बिना किसी भूमिकाके हनुमान् जी ने मेघ गंभीर वाणी में ये शब्द कहे। इन शब्दों के सुनते ही सभी प्रसन्नता के कारण नाचने लगे, उछलने लगे, एक दूसरे का आलिंगन करने लगे, कबड्डी भरने लगे, समुद्र में एक दूसरे को ढकेलने लगे। वृक्षों से नीचे जल में कूदने लगे परस्पर में एक दूसरे के जूँए बीनने लगे। उन सबको वानरी चंचलता करते देखकर बूढ़े जाम्बवान् ने सबको डाँटा। जाम्बवान् की डाँट सुनकर सब आकर चुपचाप बैठ गये। तब अंगदजी के पूछने पर हनुमान्‌जी ने अपनी यात्रा का आदि से अन्त तक समस्त वृत्तान्त बड़ी ही रोचक भाषा में सुनाया। उसे सभी ने मुग्ध की भाँति शान्ति के साथ श्रवण किया। सीताजी के सौन्दर्य और उनकी दयनीय दशा की बातें सुनकर सभी रोने लगे। सभी को उनके दर्शनों की उत्कट इच्छा हुई।

अब वानर आपस में कहने लगे—"कपिराज ! सुग्रीव ने जो अवधि हमें दी थी, वह तो बीत गयी। अवधि के अनंतर आने से वे हमें दण्ड तो न देंगे।"

इसपर बूढ़े जाम्बान ने कहा—"हमलोग तो कार्यसिद्ध करके चल रहे हैं। हम तो पारितोषिक के अधिकारी हैं। तुमलोग कोई सन्देह मत करो। निर्भय होकर मधुपान करते, फलों को खाते बागों को उजाड़ते हुए श्रीराम के समीप चलो। इतना सुनते ही सब स्वच्छन्द होकर चलने लगे। वानर ही ठहरे पहुँचते ही उन्होंने सुग्रीवकी सुन्दर वाटिका को उजाड़ना आरम्भ कर दिया। उसके मीठे मीठे फलों को भरपेट खाने लगे। मधु के छत्तों में छेदकरके उनसे निकली मधुधार को मुँह ऊपर करके पान करने लगे। उनकी इस अविनय को देखकर रक्षकों ने सुग्रीव को समाचार दिया। सुनते ही सुग्रीव परम प्रमुदित हुए। उन्हें निश्चय हो गया, कि ये लोग श्रीसीताजीका पता लगा लाये हैं, बिना पता लगाये ऐसी धृष्टता करने का साहस कोई भी न करता। उन्होंने आज्ञा दी—"सभी वानरों को बाजे गाजे के सहित सम्मानपूवक मेरे समीप ले आओ।"

सुग्रीव की आज्ञा से बहुत से वानर उछलते कूदते आकाश मार्ग से चले। स्वागत के लिये आये हुए वानरों को देखकर अंगद आदि बंदर पूँछ हिलाते हुए आकाशमें उड़ने लगे। उन्हें आकाश मार्ग से आते देखकर मारे प्रसन्नता से सुग्रीव खड़े हो गये। सब वानरों ने उतरकर कपिराज सुग्रीव को प्रणाम किया। सुग्रीव शीघ्रता सहित सबको श्रीराम के समीप ले गये। उत्सुकता से जिसके कमलनयन चंचल हो रहे हैं, जो अपनी प्रिया के शुभ समाचारों को सुनने के लिये अत्यधिक उत्कण्ठित हो रहे हैं, वे श्रीरामचन्द्रजी वानरों से बोले—"क्या वैदेहीजी का कुछ पता चला।"

इतना सुनते ही, नम्रता पूर्वक हनुमान् जी ने अत्यंत शीघ्रता के साथ कहा—"दर्शन किये मैंने देवी के" देवी को देखा है

मैंने" इन वचनों को सुनते ही श्रीराम के रोमरोम खिल उठे उनके मुरझाये हुए मुखपर प्रसन्नता छा गई। वे इतने सुखी हुए मानों किसी ने उनके कानों में अमृत उड़ेल दिया हो? वे बार बार कहने लगे—"हनुमान् क्या तुमने सचमुच मेरी प्रिया को देखा है? तुमने उसे कहाँ देखा? कैसे देखा? कब देखा? किस दशा में देखा? वह कैसे थी? कैसे रहती थी? मेरी याद करती थी न? तुमसे क्या क्या बातें हुईं? मेरे सम्बन्ध में क्या पूछती थी? वह अत्यन्त कृश तो नहीं हुई है? उसने क्या सन्देश भेजा है?"

एक साथ इतने प्रश्न सुनकर हनुमान् जी घबरा गये। उन्होंने देवी सीता को तथा उस दिशा को जिसमें देवी रहती हैं पहिले श्रद्धासहित प्रणाम किया फिर वे रुककर चूड़ामणि को निकाल कर बोले—"देव! मैं शतयोजन समुद्र को लाँघकर लंका पहुँचा। वड़े कष्ट से मैंने देवी का पता लगाया। वे अशोकवाटिका में मिलीं थीं वे व्रत उपवासों से अत्यन्त कृश हो गई हैं। उनका उत्तरीय कौशेय पीतवस्त्र अत्यन्त मलिन हो गया है, उनके कुंचित केशों की जटायें वन गई हैं, वे निरन्तर आपके नामों को रटती रहती हैं। आपकी मधुर मूर्ति के ध्यान में निमग्न रहती हैं। रोते रोते उनके कमल के समान नेत्र सूज गये हैं। वे शोक संतप्त होकर आपका ही चिंतन करती रहती हैं। पहिले तो उन्होने मेरे ऊपर सन्देह किया। पुनः विश्वास दिलाने पर आपकी मुद्रिका को पाकर मेरा विश्वास किया। रोते रोते सब समाचार सुनाये और चित्रकूट में काककी कथा स्मरण कराते हुए यह चूड़ामणि चिन्हारी के रूप में मुझे दी। यह कहकर हनुमान्जी ने आदर सहित वह चूड़ामणि श्रीराघव को समर्पित की।

चूड़ामणि लेकर श्रीराम ने उसे हृदय से लगाया और नेत्रों से

अश्रु बहाते हुए बार-बार उसे निहारने लगे। वे सुग्रीव से कहने लगे—"कपिवर! इस चूड़ामणि के मिलने से मुझे ऐसा सुख हो रहा है, मानों मुझे जानकी मिल गयीं। यह समुद्र से उत्पन्न देवताओं की मणि है। देवताओं ने मिथिलाधिप महाराज जनक को इसे दिया था। जनक ने विवाह के अवसर पर अपनी पुत्री जानकी को इसे दिया था। जानकी ने इसे पहिनकर मेरे पिता को प्रणाम किया था। कितनी बार मैंने इस मणिको सम्हाला है, इसे हृदय से लगाया है। जब इसे सीता के सिर के सहित मैं स्पर्श करता था, तब मेरे रोमांच हो जाते थे। हाय! इसे मैं आज सीता से इसी प्रकार विलग देख रहा हूँ, जैसे सीता मुझसे विलग हो गयी है। सीता राक्षसों के बीच में कैसे रहती होगी। कैसे उसके दिन कटते होंगे, पवनतनय तुम मुझे सीता के और समाचार सुनाओ। तुम रुको मत सुनाते ही जाओ सीता कैसी थी मेरे सम्बन्ध में क्या पूछती थी? मेरे प्रति उसके क्या भाव थे?"

यह सुनते ही हनुमानजी ने कहा—"प्रभो! मेरी वाणी में शक्ति नहीं जो उस देवी के सम्बन्ध मे कुछ कह सकूँ। वे मूर्तिमती तपस्या साकार करुणा विरह की छाया मूर्ति बनी हुई हैं। उन्हें जगत् राममय दिखाई दे रहा है। वे मुझसे जब तक बातें करती रहीं रोती ही रहीं। उनके आँसू क्षण भर को भी न रुके। नाथ! जब मैंने जगज्जननी को अत्यन्त दुखी देखा, तो मेरा हृदय भर आया। मैंने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"माताजी आप चिन्ता न करें। आप मेरी पीठ पर चढ़कर चलें मैं अभी आज ही आपको आपके प्राणनाथ से मिला दूँगा।" राघव! यह सुनकर उन्होंने जो उत्तर दिया, वह उनके अनुरूप ही है। जब से मैंने देवी को देखा है, जब से मैंने उनके दर्शन

किये हैं तबसे मैं उनकी चरणरज का अकिंचन अनुचर बन गया हूँ, उनके पतिव्रत धर्मका प्रशंसक हो गया हूँ, उनके गुणोंका गायक और उनके रामानुराग का भक्त हो गया हूँ। देवी ने कहा था—"मैं स्वेच्छा से परपुरुष की पीठ पर नहीं बैठ सकती। मेरे प्राणनाथ ही आकर मुझे छुड़ावेंगे तभी छूट सकती हूँ, वे ही आकर अपनावें तो मैं उनसे लिपट सकती हूँ।" राघव! माताजी ने कहा है—"मैं महीने भर जीऊँगी, तब तक प्रतीक्षा करूँगी। यदि हृदयेश्वर ने तब तकभी मेरी सुधि न ली तो मैं मर जाऊँगी। स्वेच्छा से या परेच्छा से।"

इतना सुनते ही श्रीराम मूर्छित हो गये। उनके दोनों नेत्र बहने लगे। लक्ष्मणजी ने उन्हें उठाया। उनकी धूलि झाड़ी और वे बोले—"राघव! आप सोच न करें। देवी अवश्य हमें मिलेंगी। अब तो सन्देह की कोई बात नहीं। पता लगाने पर मैं पाताल से ब्रह्मलोक से उन्हें लौटा ला सकता हूँ।"

श्रीराम प्रलाप करते हुए कहने लगे—"मेरी प्रिया उन क्रूर राक्षसों में कैसे रहती होगी, कैसे वह अपने समय को बिताती होगी। हाय! मैं कैसा मूढ़ हूँ, कैसा मन्दमति हूँ, मैं अपनी पत्नी की भी रक्षा नहीं कर सकता उसके भी दुख को दूर नहीं कर सकता। अब मैं उसके पास कैसे जाऊँगा, कैसे मैं इस १०० योजन वाले समुद्रको पार कर सकूँगा। कैसे तुम्हारे वानर इसके उस ओर जा सकेंगे।"

यह सुनकर सुग्रीव बोले—"राघव! आप चिन्ता न करें। जब तक जानकी के जीवित रहने का समाचार नहीं मिला था, जब तक रावण के घर का उसके यहाँ सीताजी के रहने का निश्चित वृत्त विदित नहीं हुआ था, तभी तक चिन्ता की बात थी। अब तो सब बातें विदित हो गयीं। अब हम सब उछल

कर कूदकर नौकाओं से, घड़ों की धिटनियों से तथा हाथोंसे समुद्र को पार कर सकते हैं। आप विश्वास करें, अब हम शीघ्र ही आपकी प्रिया से आपको मिला देंगे।"

यह सुनकर श्रीरामजी पुनः हनुमानजी को लक्ष्य करके प्रलाप-सा करने लगे। पवन-पुत्र! तुमने समुद्र कैसे पार किया? सीताजी ने क्या क्या कहा? मेरी अभी तृप्ति नहीं हुई है। तुम मुझे इस अनुपम अमृतमयी रसमयी कमनीय कथा को सुनाते जाओ रुको मत। हाँ, तो सीता जी ने और क्या कहा?"

बार बार एक ही प्रश्न को करने से लक्ष्मणजी लज्जित हुए। हनुमानजी पुनः पुनः देवी सीता को लक्ष्य करके प्रणाम करके उनके समाचार सुनाने लगे। श्रीराघव सुनते सुनते विह्वल हो जाते। इस पर लक्ष्मणजी ने कहा—"आर्य! आप यह कैसी प्राकृत पुरुषों की सी लीला कर रहे हैं। आपके सम्मुख राक्षस क्या वस्तु है? आप चाहें, तो एक बाण में समुद्र को सोख सकते हैं। देखिये केशरी नन्दन आपके अनुचर हनुमान ने आपकी ही कृपा से कैसा दुष्कर कार्य किया। वे अकेले ही सौ योजन समुद्र को लाँघ गये, जानकीजी का पता लगा लाये, राक्षसों के सिर पर लात रखकर रावण के लड़के को मारकर, सुवर्ण की लंका को जलाकर बिना किसी विघ्न बाधा के लौट आये। आप इनके ऊपर कृपा करें। इन्हें अनुराग भरी दृष्टि से देखें।

इतना सुनते ही श्रीराम चैतन्य हुए। उन्होंने बहते हुए अपने अश्रुओं को रोका। वे बार बार हनुमानजी की ओर देखते हुए बोले—"पवनतनय! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। मैं तुम्हारे उपकार का जीवन भर प्रत्युपकार नहीं कर सकता।

तुम्हारे पारितोषिक देने योग्य कोई वस्तु नहीं देखता। मैं अपना प्रेमालिंगन रूप पारितोषिक तुम्हें देता हूँ।" यह कहकर श्रीराघव ने हनुमानजी का गाढ़ालिङ्गन किया। श्रीराम के प्रेमालिंगन को पाकर पवनपुत्र कृतकृत्य हो गये! उनका सब श्रम सार्थक हो गया। इस अमूल्य पारितोषिक को पाकर प्रमुदित हुए। प्रभु की इस भक्तवत्सलता को स्मरण करके वे प्रेमाश्रु बहाने लगे।

सुग्रीव ने कहा—"राघव! अब शीघ्रता करनी चाहिए। समुद्र पार करके श्री जानकीजी को अविलम्ब लाना चाहिये।"

श्रीराम ने कहा—"हे वानरेन्द्र! तुमने यह बहुत ही उत्तम बात कही। कल उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है, मेरा चित्त उत्साहित हो रहा है, मैं रावण को अवश्य ही मार सकूँगा। तुम यात्रा की तैयारियाँ करो।"

श्रीराम की आज्ञा पाते ही समस्त वानर परम प्रसन्न हुए। चारों ओर ठहरे हुए वानरों के यूथपतियों ने यात्रा की घोषणा की। सबके कार्य बाँटे गये, पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। प्रत्येक टोली के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सहकारी अध्यक्ष बनाये गये वानरों के मन में अपार उत्साह था। कोई कहता मैं लंका को समुद्र में डुबो दूँगा, कोई कहता मैं रावण को जीवित ही पकड़ लाऊँगा, कोई कहता मैं अगस्त्य की तरह समुद्र को सोख जाऊँगा। कोई कहता इतनी बड़ी सेना की आवश्यकता क्या है, मैं अकेला ही जाता हूँ राक्षसों को मारकर आता हूँ, सीता माता को छुड़ाकर लाता हूँ—"कोई कहता—"तुम सब समुद्र पार जाने का कष्ट क्यों करते हो, मैं समूची लंका को ही उखाड़कर ले आता हूँ। उसमें से जानकीजी को श्रीराम ले लें। राक्षसों को

कर रहा हो। समुद्र को देखकर श्रीराम के नेत्रों से भी जल बहने लगा। वे लक्ष्मण से कहने लगे—"सौमित्रे ! देखो, यह कितना अगाध समुद्र है, इसके पार ही मेरी प्रिया है। मैं इस पार हूँ मेरी प्रिया उस पार है, यह समुद्र ही हमारे बीच में व्यवधान है। यही मुझे मेरी प्रिया से मिलने में रोकता है। लक्ष्मण ! मैं जानकी के बिना जीवित नहीं रह सकता। मेरी प्रिया न जाने क्या सोच रही होगी।"

लक्ष्मण ने श्रीराम को धैर्य बँधाते हुए कहा—"प्रभो ! अधीर होने की कोई बात नहीं है। आप सेना सहित समुद्र के तीर पर चलें वहाँ उसे पार करने का कोई उपाय सोचेंगे।"

लक्ष्मणजी की बातें सुनकर श्रीराम पर्वत से नीचे उतरे। वे सह्य, मलय आदि पर्वतों को पार करते हुए समुद्र के तट पर पहुँचे। उन्होंने सुग्रीव को बुलाकर कहा—"वानरराज ! सेना को यहीं ठहराओ। समुद्र पार जाने के लिये कोई युक्ति सोचनी होगी। इतना भारी समुद्र हाथों से पार नहीं किया जा सकता। साधारण नौका भी इसमें नहीं चल सकती। बड़ी नौकाएँ जा सकती हैं, पर इतने वानरोंके लिये इतनी नौकायें कहाँसे आवेंगी। नौकाओं को जुटाने में ही बहुत समय लग जायगा तब तक अवधि निकल जायगी; जानकी मर जायगी। फिर मेरा पार जाना सेना एकत्रित करना सब व्यर्थ हो जायगा। अभी तुम सेना को टिका दो। पहरे का कड़ा प्रबन्ध कर दो। राक्षस बड़े मायावी होते हैं। उनके गुप्तचर सर्वत्र होंगे, वे हममें फूट डालने का प्रयत्न कर सकते हैं। जल तथा भोजन की वस्तुओं में विष प्रयोग कर सकते हैं, आग लगा सकते हैं, आकाश से अस्त्रों की वर्षा कर सकते हैं। छिपकर प्रहार कर सकते हैं। इसलिये बड़ी सावधानी से सचेष्ट होकर शिविर की रक्षा की जाय।"

श्रीराम की आज्ञा पाकर सुग्रीव ने सेना के पृथक् पृथक् पड़ाव डाले। सम्पूर्ण सेना तीन भागों में विभक्त कर दी। उनमें भी सबकी टोलियाँ पृथक् पृथक् थीं। सभी सुख-पूर्वक अपने-अपने शिविरों में किलोल करने लगे। श्रीरामचन्द्र जी समुद्र के पार जाने के उपाय सोचने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर तो श्रीरामचन्द्र जी समुद्र के तट पर ठहरे हुए लंका-जाने की बात सोच रहे थे। उधर लंका उधर लंका को जबसे हनुमान जी जलाकर आये थे, तब से वहाँ सर्वत्र बड़ा आतंक-सा छा गया! रावण के मन में शंका उत्पन्न हो गई थी। वह हनुमान् जी के बल, पराक्रम, उत्साह और साहस को देखकर आश्चर्य चकित हो गया था, किन्तु उसने अपना भय किसी दूसरे पर प्रकट नहीं किया। वह बड़ा अभिमानी और हठी था। अपनी दुर्बलता को वह कैसे स्वीकार कर सकता था। अतः हनुमान् जी के आगमन को वह बहुत ही साधारण सी घटना बताता और उनके पराक्रम की सदा उपेक्षा करता रहता।

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! हनुमान जी के चले आने के पश्चात् रावण ने लंका में क्या किया। उसने युद्ध के लिए किन-किन की सम्मति ली। अत्यन्त संक्षेप में पहिले आप हमें लंका के समाचार सुना दें। तदनन्तर सेतुबन्ध की कथा सुनावें।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए सूतजी बोले—"महाभाग! यह आपने अत्यंत ही सुन्दर प्रश्न किया। मुझे केवल राक्षसों की कथा में आनन्द नहीं आता क्योंकि वे श्रीराम से द्वेष भक्ति रखते थे, इसीलिये उनकी कथा कहानी ही पड़ती है। उन विद्वेषी भक्तों के बीच में एक प्रेमी रामानुरागी प्रपन्न भक्त ही नहीं भक्त शिरोमणि थे, उनका नाम था विभीषण। वे दशानन के

में छोटे भाई थे। राम-भक्त होने के कारण अब मैं उनकी शरणागति की कथा कहूँगा। आप सब इस परमपावन पुण्यप्रद प्रसङ्ग को प्रसन्नता-पूर्वक प्रेम के सहित श्रवण करें।"

छप्पय

है प्रसन्न सब चले राम ढिँग मिलि कपि आये।
सुखद सीय सम्वाद आइ सियपतिहिँ सुनाये॥
चूणामणि हनु दई पाइ प्रभु हिये लगाई।
उर अस बाढ्यौ प्रेम मनहु वैदेही पाई॥
कपिपति सेना वानरी, साजि समर हित चलि दये।
लाँघि नदी गिरि नीरनिधि, तीर पहुँच विस्मित भये॥

शरणागत प्रतिपालक श्रीराम

[६७०]

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिम्
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ।*
(श्री भा० ५ स्क० १९ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

दूत जारी कपि लंक शंक रावण हिय पैठी ।
देहुँ जानकी नहीं बात खलके मन बैठी ॥
सब सुत सचिव बुलाइ समर हित सम्मति पाई ।
किन्तु न सहमत भये विभीषण छोटे भाई ।
नीति विभीषन की सुनी, भयो कुपित अति दशानन ।
नाश समय लखि भक्तवर, तुरत गये तब हरिशरन ॥

जीव को जब तक धन का, विद्या का, परिवार का, प्रभाव का ऐश्वर्य का, कला का तथा सदाचार और तप का भरोसा रहता है

---

* हनुमानजी भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"चाहे देवता हो, असुर हो, वानर हो अथवा नर हो, उसके लिये यही श्रेयस्कर है कि वह उन नररूपधारी श्रीरामचन्द्रजी का अनन्य भाव से भजन करें जो समस्त कोशल वासियों को अंत समय विमान में चढ़ाकर अपने साथ ले गये थे ।"

तब तक हरिशरण में नहीं जाता। जब सब का भरोसा छूट जाता है, जब सबसे नाता टूट जाता है, जब अभिमान का भरा घड़ा फूट जाता है, तब उसे भगवान् की याद आती है। जब तक संसारी लोग उसका सम्मान करते हैं, तब तक वह फूला फूला डोलता है, सबको अपने सम्मुख तुच्छ समझता है। जब भगवान् उसका सर्वस्व नाश कर देते हैं, पुरजन परिजन तथा जातिबन्धु जब उसे निर्धन असहाय समझकर त्याग देते हैं, तब कहीं शरण न देखकर जीव अशरण शरण श्री जानकी रमण की शरण जाता है, उन्हें अपना सुहृद् समझकर उनके आश्रय में रहता है। जहाँ उसने सर्व-भूत सुहृद् सच्चिदानन्द श्रीहरि की शरण ली नहीं, वहाँ वह सभी दुःखों से छूटकर परम शान्ति का अधिकारी बन जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! हनुमान जी लंका को जाकर जानकी के समाचार लेकर जब सकुशल श्रीराम के समीप लौट गये, तब राक्षसराज दशानन को बड़ी चिन्ता हुई। उसने अपने सभी सामन्त सचिव सेनाध्यक्ष और सगे सम्बन्धियों को बुलाकर उनसे सम्मति की—कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये। राजसभा में तो प्रायः लोग राजा को प्रसन्न करने के निमित्त ठकुरसुहाती की ही बात करते हैं। रावण के रुख को देखकर कोई कहने लगा—"हम सब वानरों को बीन बीन कर खा जायँगे" कोई कहने लगा—"मैं अकेले ही सबको मार सकता हूँ, कोई कहने लगा—"आपने जब देवता तथा समस्त लोकपालों को जीत लिया तो फिर ये राम लक्ष्मण दो राजकुमार क्या वस्तु हैं।" कोई कहता—"हम अभी उस पार जाकर सबको मार आते हैं। कोई कहता—"मारने की क्या आवश्यकता, वे समुद्र पार आ ही नहीं सकते आपसे आप लौट जायँगे।"

उन सबकी बातें सुनकर बुद्धिमान् विभीषण बोले—"तुम सब तो वेतन भोगी हो, राजा को प्रसन्न करने की बातें बनाते हो। राजा ने कहा बेंगन अच्छा है तो उसी की प्रसंशा करने लगे, बड़ा अच्छा है, वायु नाशक है, उसके सिर पर छत्र है, स्वादिष्ट है, साकराज है।" राजा ने कहा बेंगन बुरा है, तो तुम तुरन्त अपनी बात पलट दोगे, कहोगे—"बहुत बुरा है, इसका छूना भी शास्त्रों में निषेध है। एकादशी को जितने बीज पेट में रह जायँ उतने ही सहस्र वर्ष नरक भोगना पड़ता है। तभी तो इसका नाम बेगुन बिना गुणवाला रखा है। सो भैया! तुम लोगों की बात पर राजा चले तो उसका तो सर्वनाश ही हो जाय।"

मेघनाद ने कहा—"अच्छा, चाचाजी! आप ही बतावें शत्रु के साथ अब कैसा व्यवहार करना चाहिये।"

विभीषण ने कहा—"अरे, भाई! शत्रुता किसी कारण से होती है, श्रीरामचन्द्रजी ने हमारा क्या बिगाड़ा है। उनसे शत्रुता होने का तो मुझे कोई कारण दिखायी नहीं देता। उलटे हमने ही अन्याय किया है, परोक्ष में उनकी स्त्री को हर लाये हैं। जानकी श्रीरामचन्द्रजी को सत्कार पूर्वक लौटा दो, सब झगड़ा ही समाप्त हो जायगा। रामचन्द्र से लड़ने का तो मुझे कोई कारण दीखता नहीं।"

मेघनाद ने कहा—"उन्होंने जो चाचा खर आदि को मारा है, यह शत्रुता नहीं है।"

विभीषण ने रोष के स्वर में कहा—"तुम तो हो, अभी बच्चे बुद्धि के हो कच्चे। लड़कपन के कारण तुम ऐसी मूर्खता की बातें कर रहे हो। अरे भाई, खर तो सेना सजाकर श्रीराम से युद्ध करने गया था, उन्हें मारने पहुँचा था। अपनी प्राण की रक्षा के लिये श्रीराम ने भी युद्ध किया। इसमें शत्रुता की कौन सी बात है।

"अब राम अपनी पत्नी को लेने आ रहे हैं, उन्हें लौटा दो, युद्ध की नौबत ही न आवेगी।"

मेघनाद ने कहा—"चाचाजी! आपकी बुद्धि तो प्रतीत होता है सठिया गयी है, आपके शरीर में वीरता का रक्त रहा ही नहीं। भला, शत्रु के सम्मुख ऐसे सिर टेका जा सकता है। यह तो भयभीत होकर शरण में जाना हुआ। आत्माभिमानी वीर पुरुष कभी ऐसा कर सकता है।"

विभीषणजी ने रोष के स्वर में कहा—"यह वीरता नहीं मूर्खता है। ऐसी वीरता को मैं जाति देश धर्म के लिये घातक समझता हूँ।"

रावण ने देखा बात बढ़ रही है। अतः उसने बिना अपना मत दिये ही उस दिन की सभा भंग कर दी। विभीषण से रहा नहीं गया। भोजनोपरान्त अपने ज्येष्ठ भाई रावण के समीप एकान्त में गये। जाकर प्रणाम करके उसका संकेत पाकर बैठ गये। वहाँ भी उन्होंने रावण को बहुत समझाया। किन्तु वह माना नहीं। अन्त में निराश होकर चले आये।

दूसरे दिन पुनः राजसभा में यह प्रस्ताव छिड़ा कि शत्रु पर कैसे चढ़ाई की जाय। उस समय भी विभीषण ने कहा—"अरे भाई! तुम प्राणिमात्र के सुहृद् श्रीरामचन्द्र को शत्रु क्यों कह रहे हो शत्रुता का काम तो तुमने किया है, उनकी प्राणप्यारी पत्नी को ही। बल पूर्वक तुमने उनसे पृथक् करके उसे अधर्म पूर्वक रोक रखा है।"

मेघनाद ने कहा—"चाचाजी तुम बैठकर माला खटखटाया करो। राजनीतिक बातों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं। हम राक्षसों का तो धर्म ही पर स्त्री का अपहरण करना है। हमने कोई अधर्म नहीं किया।"

इतना सुनते ही विभीषण ने मेघनाद को बड़े कड़े शब्दों में डाँटते हुए कहा—"तू बड़ा मूर्ख है वे लड़के! तुझमें इतनी बुद्धि नहीं कि तू किसी मंत्रणा सभा में बुलाया जा सके। तेरी बुद्धि कच्ची है। तू लड़कपन करता है, तुझमें विनय नहीं, शिष्टता नहीं, विवेक नहीं। तू उद्धत क्रूर, अविनयी, ढोठ और निर्लज्ज है। तुझे तो यहाँ से कान पकड़ के निकाल देना चाहिये। तेरी बुद्धि को मानकर काम किया जाय, तो सब चौपट हो जाय। तुझे यहाँ बुलाया किसने। जो तुझे यहाँ लाया हो, मैं कहता हूँ वह भी दंडनीय है।"

विभीषण की रोषपूर्ण बातें सुनकर इन्द्रजीत अत्यन्त ही कुपित हुआ—वह बोला—"हमारे कुल में तुमसे नीच और कायर तो कोई दूसरा राक्षस हो नहीं सकता, जो शत्रु के सिर पर चढ़ आने पर भी आप उसकी प्रशंसा कर रहे हैं, उसके गुण गा रहे हैं, उसे निर्दोष बता रहे हैं। फिर जाओ, तुम उनमें ही मिल जाओ। दो ही तो संसार में निर्दोष हैं। राम और विभीषण। फिर उन्हीं की जाकर लल्लो चप्पो क्यों नहीं करते। यहाँ हमारे ही दिये टुकड़े खाते हो और हमारे ही ऊपर गुर्राते हो। तुम्हारा ही यहाँ बोलने का क्या अधिकार है। मैं युवराज हूँ, तुम किस खेत की मूली हो। तुम्हारा बोलना तो हमारी कृपा के ही ऊपर निर्भर है।"

इन्द्रजीत के ऐसे क्रोधपूर्ण वचन सुनकर विभीषण अपने बड़े भाई रावण से रोष के स्वर में बोले—"राजन्! आप सुन रहे हैं, इस नीच लड़के की बातें। क्या आपकी भी इनमें सम्मति है? आप इसे दंड क्यों नहीं देते? मैं कौन सी अनुचित बात कह रहा हूँ। राम की पतिव्रता प्यारी पत्नी को अकारण रोके रहना कहाँ का न्याय है आप उसे ले जाकर उसके पति से मिला

क्यों नहीं देते। क्यों आप अकारण युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं ? क्यों अपने समस्त कुल का संहार कराने पर उतारू हो रहे हैं। जिस सीता के हाथ को आप पकड़ना चाहते हैं, वह पाँच फणों वाला विषधर सर्प है। राक्षसराज ! आप जान बूझकर मृत्यु का आलिङ्गन क्यों करना चाहते हैं। राम के सम्मुख आप ठहर नहीं सकते।"

इतना सुनते ही रावण गर्जकर बोला—"बस, बहुत हो गया। यदि इससे आगे कुछ कहा तो मैं तेरी जीभ खिंचवा लूँगा, निर्लज्ज कहीं का। तुझे अपने पिता तुल्य बड़े भाई के सम्मुख ऐसी कायरतापूर्ण बातें कहने में लज्जा भी नहीं आती। तू जिन घर द्वार हीन असहाय तपस्वियों की बार बार प्रशंसा कर रहा है, उनके पास ही क्यों नहीं चला जाता। कहावत है, एक कायर लाखों को कायर बना देता है, एक वीर लाखों के मन में वीरता के भाव भर देता है। तेरा जन्म राजवंश में हुआ है, मेरा छोटा भाई है, अतः तेरी बात का प्रभाव भी पड़ सकता है। एक मछली समस्त ताल को दुर्गन्धमय बना देती है। तेरे यहाँ रहने से हमें बड़ी हानि है। तू नीच है, शत्रु का गुप्तचर है, उससे वेतन पाता है, तभी तो हमें बार-बार निरुत्साह करने की चेष्टा कर रहा है। अब तैंने मुझे अपना काला मुँह दिखाया तो उसे कटवा लूँगा, अब तैंने जीभ हिलाई तो उसे मुख से निकलवा लूँगा ! भाग जा, जहाँ तेरी इच्छा हो चला जा।" भरी सभा में अपने बड़े भाई द्वारा ऐसा अपमान होते देख कर विभीषण अत्यन्त ही लज्जित हुए, वे अपने चार मंत्रियों के सहित तुरन्त सभा भवन से उड़कर आकाश में पहुँचे और वहाँ से चिल्लाकर बोले—"मैं समझता हूँ, राक्षसों के विनाश का समय उपस्थित हो गया है। तभी तो ये अन्याय पर अन्याय करते

जाते हैं। मैं प्राण रहते अन्याय का समर्थन नहीं कर सकता। अतः सर्वभूत सुहृद्-प्राणिमात्र के रक्षक, शरणागत प्रतिपालक श्रीराम की मैं शरण जा रहा हूँ। वे ही मेरी गति हैं, वे ही मेरी मति हैं, वे ही मेरे सर्वस्व हैं। शरण में गये हुए का वे उद्धार अवश्य करते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कहकर विभीषण जी आकाश मार्ग से उड़े और कुछ ही काल में वे समुद्र के उत्तर तीर पर जहाँ श्रीरामजी वानरी सेना के सहित पड़ाव डाले पड़े थे। वहाँ आये। आकाश से ही उन्होंने आर्त स्वर में कहा—"मैं अन्यायी दुष्ट रावण का छोटा भाई हूँ। उसके अन्याय का समर्थन न करने के कारण उसने मेरा परित्याग कर दिया है, अब मैं शरणागतों के प्रतिपालक, प्राणिमात्र के रक्षक, सबके त्राता, सबके अभयदाता श्रीरामचन्द्र की शरण में आया हूँ।"

रावण का छोटा भाई और युद्ध के समय श्रीराम की शरण आया है, इस बात पर सुग्रीव जी को संदेह हुआ। वे स्वयं शिविर से उठकर श्रीराम के समीप बोले—"राघव! रावण का छोटा भाई आया है। वह आपकी शरण चाहता है। मेरा तो अनुमान है, उसकी शरणागति बनावटी है, स्वार्थ की है। या तो वह रावण का गुप्तचर है, हमारा भेद लेने आया है, या हम पर प्रहार करेगा। उसके साथ चार सचिव और हैं। मेरा अनुमान है उन सबकी इच्छा मुझे आपको लक्ष्मण को तथा हनुमान और अङ्गद को मारने की है। मैं उसे निर्दोष नहीं समझता। आपकी क्या आज्ञा है, उन सबको मार डालें या पकड़ कर कैद कर लें।"

लीलाधारी श्रीराघव को तो लीला करने में ही आनन्द आता है। अतः वे बोले—"भाई, विषय तो बड़ा गम्भीर है, इसके रहस्य

को तो मैं भली भाँति समझ नहीं सकता। सभी सचिव बैठकर इस विषय में मंत्रणा करें।"

श्रीराम की आज्ञा पाते ही अङ्गद, हनुमान, नल नील, मयंद द्विविद, जामवन्त तथा अन्यान्य श्रेष्ठ वानर एकत्रित हुए। श्रीराम के पूछने पर सभी ने अपनी अपनी सम्मति दी। किसी ने कहा—"उन्हें मार देना चाहिये, किसी ने कहा—"पकड़ कर कैद कर लेना चाहिये, किसी ने कहा—"उनके पीछे दूत लगा देने चाहिये।" किसी ने कहा—"पहिले भेद जानकर तब मित्रता शत्रुता का निर्णय करना चाहिये।" सब की बातें सुनकर हनुमान् जी ने कहा—"देखो भाई! मैं व्यर्थ बोलना नहीं चाहता, किन्तु श्रीराम के पूछने पर उत्तर न देना भी मूर्खता है। अतः मेरा तो मत है कि विभीषण के साथ ऐसा कोई भी व्यवहार न किया जाय, जिससे उसे हमारे ऊपर संदेह हो, कि ये हमारे ऊपर विश्वास नहीं करते। जब वह स्पष्ट शब्दों में शरण चाह रहा है, अपना सर्वस्व छोड़ कर ऐसे समय में यहाँ आया है तो ऐसे उदार द्वार से भी वह निराश होकर लौटे, यहाँ भी उसका तिरस्कार हो, यह उचित नहीं। ये चरण तो प्राणी मात्र के विश्राम स्थान हैं। कहीं भी जिसे शरण न हो, कोई भी जिसे न अपनावे, वह यहाँ आवे। यहाँ सब का निर्वाह है, सबके लिये खुला द्वार है। मेरा मत तो ऐसा है, भक्त पर सन्देह करना ही पाप है।"

अपने मन की बात महावीर के मुख से सुनकर हँसते हुए श्रीराघव बोले—"देखो, भाई केशरी नन्दन हनुमान् ने मेरे मन की बात कही है। जो मित्र भाव से मेरे समीप आता है, उसका मैं त्याग करना भी चाहूँ, तो मैं स्वयं ऐसा करने में असमर्थ हूँ। शरणागत को मैं कभी ठुकरा नहीं सकता।"

सुग्रीव बोले—"हाँ, प्रभो यह तो उचित ही है, किन्तु कोई

शुद्ध चित्त वाला निर्दोष पुरुष शरण में आवे, तब तो उसे अपनाना ही चाहिये। किन्तु जो सदोष हो, जिसके चरित्र के सम्बन्ध में सन्देह हो उसे कैसे सहसा स्थान दिया जा सकता है ?"

श्रीरामचन्द्र जी गम्भीरता के साथ कहा—"भैया ! अपने हृदय पर हाथ रखकर देखो। संसार में सर्वथा निर्दोष कौन है। दोषी ही तो शरण में आवेगा। निर्दोष तो निर्दोष है ही। दोषी के दोषों को दूर करना यही तो समर्थ शरणागत प्रतिपालक का कार्य है। अतः दोषी हो निर्दोषी हो मैं विभीषण का त्याग न कर सकूँगा।"

यह सुनकर विभीषण बोला—"अब महाराज ! आप सर्व समर्थ हैं, आपसे कहे कौन ? आप स्वयं ही सोचें रावण इसका सगा भाई है। आज उस पर विपत्ति पड़ रही है। जो ऐसी घोर विपत्ति के समय अपने भाई को छोड़ सकता है उसे क्या आशा की जाय कि वह हमारा साथ देगा ही।"

यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी हँस पड़े भगवान् के हँसने का भाव यह था कि जो दोष वानर राज ! विभीषण पर लगा रहे हैं, उस दोष के दोषी तो वे स्वयं भी हैं, किन्तु इस बात को स्पष्ट न कहकर वे लक्ष्मण को लक्ष्य करके बोले—"लक्ष्मण ! सुग्रीव जी ने कैसे रहस्य की भीतरी बात पकड़ी। इसे अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि वाले विद्वान् पुरुष के अतिरिक्त कौन समझ सकता है। फिर सुग्रीवजी की ओर देखकर बोले—"वानरेन्द्र ! मैं तो विभीषण को भक्त समझता हूँ, अब तक उसे कोई ऐसा दिखाई नहीं दिया था, जिसकी शरण जाता। अब उसका ध्यान मेरी ओर गया। रावण का और मेरा उसने बलाबल देखा। मुझमें रावण की अपेक्षा उसे अधिक गुण दिखाई दिये, अतः रावण का परित्याग

करके वह मेरी शरण में आया। जीव सर्वगुण सम्पन्न से मैत्री करना चाहता है, जिससे उसका मन मिल जाय। विभीषण का मन मुझसे मिल गया है, अपने भाई से उसका चित्त फिर गया है।"

सुग्रीव ने कहा—"राघव! आप तो हैं सरल। यह साधारण राक्षस नहीं रावण का भाई है, राजा का पुत्र है। ऐसे संकट के समय यह किसी भारी स्वार्थ को लेकर आपकी शरण में आया है। इस समय इसके आने से मुझे संदेह हो रहा है।"

श्रीरामचन्द्र जी ने गम्भीर होकर कहा—"भैया! इसमें संदेह की कोई बात नहीं। मान लो, स्वार्थ से ही आया, आया तो मेरी शरण में। मैं उसके स्वार्थ को भी सिद्ध करूँगा। रही असमय की बात, सो भैया! देखो, ये जाति के लोग समीप में रहने वाले लोग समर्थ प्रभावशाली व्यक्ति से मन ही मन जलते रहते हैं। भीतर ही भीतर उसके पराभव को चाहते रहते हैं। अपनी जाति का निर्दोष भी पुरुष हो तो राजा उस पर संदेह करते हैं। संभव है जब विभीषण ने सच्चे हृदय से बार बार सीता को लौटाने का आग्रह किया होगा, तब रावण का उस पर हमारा गुप्तचर होने का संदेह हो गया हो उसने इसे त्याग दिया हो। प्राणी बिना आश्रय के रह नहीं सकता। अतः यह रावण को छोड़कर राम के समीप आया हो।"

सुग्रीव ने कहा—"यह सब तो ठीक है, किन्तु प्रभो! ऐसा व्यवहार भ्रातृ-धर्म के विरुद्ध है।"

इस पर श्रीराम अत्यन्त ही करुणापूर्ण वाणी में बोले—"भैया! सुग्रीव! देखो माता के पेट से ही कभी कभी शत्रु पैदा हो जाता है। संसार में सभी भाई भरत के समान नहीं होते। मित्र रूप में भी बहुत से शत्रु हो जाते हैं। सभी मित्र तुम्हारी

भाँति उपकारी नहीं होते। पुत्र रूप में भी शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं, जो राज्य तथा धन के लोभ से पिता तक की हत्या कर देते हैं। आत्म प्रशंसा न समझो तो भैया! सब पुत्र राम की भाँति पितृ भक्त नहीं होते। विभीषण ने यदि राज्य के लोभ से अपने भाई को छोड़ा है तो मैं उसे राजा बनाऊँगा। लंका के राज सिंहासन पर उसका अभी अभिषेक करूँगा।"

यह सुनकर सुग्रीव बोले—"महाबाहो! मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता, किन्तु आप यह और ध्यान रखें कि यह राक्षस है। राक्षस स्वभाव से ही क्रूर होते हैं। पहिले तो यह विश्वास उत्पन्न करा लेगा, पीछे यह आप पर लक्ष्मण पर या मुझ पर प्रहार कर सकता है। इसलिये मैं तो इसे किसी प्रकार अपने में मिलाने के पक्ष में नहीं।

श्रीराम ने कहा—"सुग्रीव! तुम गम्भीरतापूर्वक विचार करो। यह ठीक है, कि राक्षस क्रूर होते हैं, किन्तु सभी जाति के लोग एक से नहीं होते, अपवाद सभी में रहता है। राक्षसों में भी भले आदमी हो सकते हैं। ब्राह्मणों में भी क्रूर हो सकते हैं। अतः कपिराज! आप केवल राक्षस होने से ही इसे त्याज्य न समझें। रही प्रहार की बात; सो मुझ पर यह क्या प्रहार करेगा। यह तो रावण का छोटा ही भाई है चाहे वह स्वयं साक्षात् मेरी शरण में आ जाय तो मैं उसको भी अपना लूँगा। देखो चाहे कैसा भी दुराचारी क्यों न हो, यदि वह मेरी शरण आता है तो मैं उसे अपना ही लेता हूँ। यह मेरा व्रत है, नियम है, सदाचार है। मेरी प्रतिज्ञा है कि शरणागत का मैं त्याग नहीं करता। निर्बल आदमी भयभीत होता है। मुझे अपने बल का भरोसा [illegible] विश्वास है, आत्म विश्वास के सहारे ही मैं [illegible] में आये हुए का मैं परित्याग नहीं कर सकता।

भगवान् के ऐसे वीरता पूर्ण वत्सलतायुक्त दृढ़ वचन सुनकर सुग्रीव के सभी संशय छिन्न-भिन्न हो गये। वे गद्गद् वाणी में बोले—"प्रभो! ऐसे वचन आपके ही अनुकूल हैं। क्यों न हो आप तो दीनबन्धु हैं। अशरण शरण हैं। प्रणत दुःख भंजन हैं। यदि आप विभीषण को शरण में लेना चाहते हैं, तो हम सहर्ष उन्हें स्वागत सहित आपके समीप लाते हैं।"

यह कहकर सुग्रीवजी ने संकेत से विभीषण को नीचे बुलाया। श्रीरामानुचर का संकेत पाते ही भक्तवर विभीषण अपने सचिवों सहित भूमि पर उतर आये। आते ही वे प्रभु के पावन पादपद्मों में प्रेमपूर्वक पड़ गये। अपने पैरों में सचिवों सहित विभीषण को पड़ा देखकर श्रीराम ने उन्हें बलपूर्वक उठाया, प्रेम के सहित छाती से चिपटाया और उन्हें अभय दान दिया।"

प्रेमाश्रुओं से प्रभुके पादपद्मों को पखारते हुए विभीषण बोले—"मैं अपने पुत्रों को पत्नियों को राजवैभव को त्याग कर राघव की शरण आया हूँ। प्रभो! मैं उस पापी भाई के समीप रहना नहीं चाहता जो शक्ति स्वरूपा भगवती सीता का अपमान कर रहा है। उनका दुरुपयोग करना चाहता है। मैं उनके उद्धार में आपको योगदान दूँगा। अपनी बुद्धि का उपयोग उत्तम कार्य में करूँगा मैं लंका का सब भेद आपको बताऊँगा।"

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—"सखे! यह तो तुम्हारा कर्तव्य है। मेरा कर्तव्य तो अपनाना है। जिसे मैं अपना लेता हूँ, उसे अपने ही काम में लगा लेता हूँ। उसे सर्वात्म भाव से अपना बना लेता हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीराम के ऐसे सुन्दर सुखद शान्तिदायक वचनों को सुनकर विभीषण के रोम रोम खिल उठे। उन्होंने रावण का बल पराक्रम सैन्यबल मंत्री सचिवों की बुद्धि

तथा सभी भेद श्रीराम को बता दिये। विभीषण की ऐसी निष्कपट सरल बातें सुनकर श्रीराम परम प्रसन्न हुए। उन्होंने विभीषण का हाथ अपने हाथ में पकड़ कर दृढ़ प्रतिज्ञा करते हुए ये वचन कहे—"राक्षस राज! मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि दुराचारी रावण का मैं वध करूँगा। उसे बन्धु बान्धवों और सचिवों सहित परलोक पठाऊँगा। तुम्हें लंकापुरी का राजा बनाऊँगा।"

इतना कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण जी से कहा—"लक्ष्मण! तुम अभी जाकर समुद्र से जल ले आओ मैं इन महात्मा विभीषण का लंका के राज्य पर अभिषेक करना चाहता हूँ।"

यह सुनकर विभीषण जी बोले—"प्रभो! राज्यपाट की क्या आवश्यकता है। आपके दर्शन हो गये। आपने अपने चरणों में शरण दी, इससे बढ़कर राज्यपाट थोड़े ही है। अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। आपके चरणों में अनुराग हो ऐसा ही आशिर्वाद दें।"

भगवान् ने कहा—"यह ठीक है, कि मेरे भक्त को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, किन्तु गन्धी की दुकान पर जाकर कोई सुगन्धि से जैसे वंचित नहीं रह सकता, वैसे ही मेरा भक्त सांसारिक प्रसाद से भी वञ्चित नहीं रह सकता। मेरे भक्त के हृदय में जो अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है उसे मैं कभी न कभी किसी न किसी रूप में पूरी करता ही हूँ। तुम लंका के राज्य को मेरा प्रसाद समझकर स्वीकार करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की आज्ञा से विभीषण जीने अभिषेक कराया। श्रीरामचन्द्रजीने रावणको मृतक समझकर विभीषण को लंकेश घोषित कर दिया। विभीषण भी सदा सब प्रकार से श्रीराम की सेवा में तत्पर रहने लगे।"

छप्पय

आयो तुमरी शरन दीनवत्सल सुनि स्वामी।
सुनत शरन हरि लये कृपानिधि अन्तर्यामी॥
सचिवनि करी कुतर्क राम एकहु नहिं मानी।
तनिक न शंका करी भक्त हियकी सब जानी॥
बन्धु तिरस्कृत विभीषण, लखे राम दुःखित भये।
तुरत मँगायो सिन्धुजल, झट लंकापति करि दये॥

समुद्र की शरणागति

(६७१)

न त्वां वयं, जडधियो नु विदाम भूमन्
कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम्।
यत्सत्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा
मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥❀

(श्री भा० ९ स्क १० अ० १४ श्लो०)

छप्पय

पार जान हित सिन्धु विनय रघुपति अति कीन्हीं।
किन्तु जलधि जड़ गैल नहीं रघुवरकूँ दीन्हीं॥
करयो कोप करुणेश धनुषपै सर सन्धान्यो।
लख्यो वेष विकराल नाश निज जलनिधि जान्यो॥
तुरत रूप रखि भेंट लै, आयो राघव की शरन।
हाथ जोरि गद्‌गद् गिरा, लग्यो विनय इस्तुति करन॥

प्रियमिलन में जो विघ्न डालता है, उस पर क्रोध आना स्वाभाविक है। इष्ट की प्राप्ति के लिये किया हुआ क्रोध अत्य-

---

❀श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! शरण में आया समुद्र श्रीरामचन्द्रजी की इस प्रकार विनय करने लगा। वह बोला—"हे भूमन्! हम जड़ बुद्धि वाले आपके यथार्थ रूप को नहीं जान सकते। आप तो कूटस्थ, आदि पुरुष तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आपके सत्वगुण से देवता रजोगुण से प्रजापति और तमोगुण से भूतपति उत्पन्न होते हैं। आप ही सम्पूर्ण गुणों के स्वामी हैं।"

धिक प्रेम का द्योतक है। मनोविकार नहीं। वह स्थाई भी नहीं होता, उसमें हठ भी नहीं द्वेष भी नहीं। वह एक दूधका सा उबाल है। जहाँ प्रिय मिलन की आशा दिखायी दी तहाँ वह आवेश समाप्त हो जाता है। श्रीराम की समस्त चेष्टाएँ जीवों को अपने समीप बुलाने की हैं। जीव संसार में भुलाये हुए हैं। वे काम के समीप तो प्रसन्नता से दौड़-दौड़ कर जाते हैं, किन्तु राम के समीप बुलाने से भी नहीं आते। करुणावरुणालय राम जब आग्रह करते हैं, अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं, तब जीव विवश होकर उनकी शरण लेता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! विभीषण को श्रीरामजी ने शरण दी। उन्हें सखात्मभाव से स्वीकार कर लिया। लक्ष्मण और सुग्रीव के सदृश बना लिया क्षण भर में ही उसे अनाथ से सनाथ और दरिद्र से सम्राट् कर दिया। राक्षसेन्द्रपर इतनी अपार कृपा देखकर सभी वानर किल किला शब्द करने लगे। सभी विभीषण को साधुवाद देने लगे। सभी उसके भाग्य की प्रशंसा करने लगे। सभी के हृदय में अपार हर्ष हो रहा था। भगवान् कितने उदार हैं, आते ही विभीषण को लंका का राजा बना दिया, उसे अपने प्रधान सचिवों में मिला लिया। अब वे विभीषण को सम्मान देने के निमित्त उनसे पूछने लगे—"राक्षसराज! इस इतने भारी सागर को पार कैसे किया जाय। मेरी प्रिया उस पार पड़ी है। शत्रु की नगरी समुद्र पार है। मेरी वानरी सेना इस अगाध सागर को पार कैसे कर सकेगी?"

हाथ जोड़कर विभीषण बोले—"प्रभो! आपके लिये क्या कठिन है? आपके संकल्प से सृष्टि होती है। आप चाहें तो अपने धनुष को रख दें उसी के ऊपर से समस्त सेना चली जाय अथवा आप बाणों से समुद्रको ढँक सकते हैं। एक बाणमें सागर

को सुखा सकते हैं। किन्तु ये सब बातें आपके इस रूप के अनुरूप नहीं। आप तो नरलीला कर रहे हैं अतः मनुष्योचित ही उपाय कीजिये। आज्ञा हो तो निवेदन करूँ।"

श्रीरामजी ने उत्सुकता के साथ कहा—"हाँ, हाँ, बताइये। कौन-सा उपाय काम में लाना चाहिये।"

विभीषण बोले—"सब कार्यों में सर्वप्रथम साम का प्रयोग करना चाहिये। जो काम शान्ति से न हो सके तब दान, भेद और दंड का प्रयोग करना चाहिये। इस सागर को आपके पूर्वज सगर के पुत्रोंने खोदा है, उसी समय लंका भारत से पृथक होकर उसका उपद्वीप हो गयी। इस नाते से सागर भी इक्ष्वाकुवंशी है और आप भी इक्ष्वाकुवंशी हैं। भाई चारे का सम्बन्ध है। अतः पहिले आप शान्ति के साथ समुद्र तीरपर जाकर उसके सम्मानार्थ उससे मार्ग देने की प्रार्थना करें। यदि शान्ति से न माने, तब दंड का प्रयोग किया जाय। यद्यपि मैं आपको सम्मति देने के योग्य नहीं, किन्तु आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा परम कर्त्तव्य है। आपने मुझसे पूछा, तो मैंने अपने विचार प्रकट कर दिये अब आप जो उचित समझें वह करें।"

श्रीराम ने लक्ष्मण और सुग्रीव को सम्बोधित करके कहा—"भाई, तुम दोनों भी परम बुद्धिमान हो। तुम भी अपनी-अपनी सम्मति दो।"

इसपर लक्ष्मण और सुग्रीव ने कहा—"राक्षसराजविभीषण का मत धर्मानुकूल है, अभी समुद्र से सरलता पूर्वक प्रार्थना की जाय, यदि वह न माने तो पीछे जैसा हो तैसा किया जाय।"

सबकी सम्मति समझकर सर्वभूतसुहृद् श्रीराम समुद्र के समीप गये। वहाँ उन्होंने एक वेदी बनवायी, उसपर कुशासन बिछवाया। उस कुशासन पर श्रीराम हाथ जोड़कर बैठ गये। वे समुद्र को प्रसन्न करने के निमित्त दृढ़ आसन से बाहुपर सिर रख कर लेट गये। वे मुनिव्रत धारण करके समुद्र के द्वारपर बिना कुछ खाये पीये धरना देने लगे।

इधर वानरी सेना में रावण का एक दूत शार्दूल आया। इतनी अपार सेना को देखकर वह शीघ्रता पूर्वक लंका गया। वहाँ उसने रावण को सभी समाचार सुनाये। अब रावण ने भेद नीतिका आश्रय लिया। उसने अपने चतुर दूत शुक को बुलाया और उसको समझाते हुए कहने लगे—"देखो, तुम अभी सुग्रीव की सेना में जाओ। सुग्रीव से मेरी ओर से कुशल पूछना और उससे कहना—"इन तपस्वियों के पीछे आप हमसे लड़ने का विचार क्यों करते हैं। आपसे तो हमारी कोई शत्रुता नहीं। हमारे ऊपर चढ़ाई करने से आपका कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं हो सकता। फिर हमारा आपका जो अब तक मैत्रीका ही सम्बंध रहा है। तुम भी राजपुत्र हो, मैं भी राजपुत्र हूँ। मैं तो तुम्हें अपना भाई ही समझता हूँ। मैंने आपका कोई अपकार नहीं किया। मेरे किसी सैनिक ने आपके राज्य में कोई अनुचित बर्ताव नहीं किया, फिर आप मुझसे क्यों लड़ना चाहते हैं? आप अपने घर लौट जावें। इन तपस्वियों से हम समझ लेंगे दूसरी बात यह है, कि शत योजन वाले समुद्र को आपके वानर सैनिक पार भी नहीं कर सकते।" रावण अपने दूत शुक को समझाते हुए कह रहा है। तुम मेरी इन बातों को कोमल वचनों में सुग्रीव से कहना। कहने में दीनता भी प्रदर्शित न हो। सुनने वालों को यह भान न हो, कि मैं भयभीत हो गया हूँ। ओजस्वी

भाषा में धीरता के साथ ये सब बातें कहना।' फिर उसका सुग्रीव जो उत्तर दे उसे आकर मुझसे कहना।"

रावण की आज्ञा मानकर शुकनामक राक्षस शुकका रूप रखकर आकाश मार्ग से उड़ता हुआ वानरी सेना के समीप पहुँचा। उसने आकाश में स्थित होकर सुग्रीव को लक्ष्य करके वे सब बातें सुनाईं। वानर तो उद्धत होते ही हैं उन्होंने लपककर आकाश में स्थित शुक को पकड़ लिया। अब वे उसे मसलने लगे, उसके पंखों को नोंचने लगे उसकी आँखें फोड़ने लगे। इस पर उसने श्रीरामचन्द्र की दुहाई दी। दूतधर्म को बताया। दूत सदा अवध्य होता है, यह भी सुझाया। उसकी करुणाभरी वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसे छुड़धा दिया। वह प्राण लेकर भागा, किन्तु सुग्रीवजी से उसे उत्तर तो मिला ही नहीं, अतः उसने रावण का संदेश पुनः दुहराया और उत्तर देने की प्रार्थना की। इस पर सुग्रीवजी ने कहा—"तुम उस दुष्ट रावण से कह देना कि मेरी तुम्हारी तो न कभी मित्रता थी न शत्रुता। तुमने शत्रुता का काम किया शत्रु हो गये। राम मेरे स्वामी हैं, सखा हैं। सेवक अथवा मित्र स्वामी के मित्र को मित्र और शत्रुओं को शत्रु समझते हैं। पक्षियों के राजा जटायु से तुम्हारी क्या शत्रुता थी। तुम राक्षसों के राजा थे। वह पृथ्वीके गिद्धोंका राजा था। यदि राजपुत्र होने से ही भाईचारा हो जाता हो, तो वह तुम्हारा भाई ही था। तुमने उनके स्वामी का अपकार किया, उन्होंने उसमें हस्तक्षेप किया इसलिये तुमने उन्हें मार डाला। इसी प्रकार मैं तुम्हें मार डालूँगा। तुम सीताजी को आदर—पूर्वक लौटा दो। श्रीराम की शरण में आओ तो तुम बच सकते हो, अन्यथा तुम्हारे बचने का कोई उपाय नहीं।"

सुग्रीव के इस सन्देश को लेकर शुक रावण के समीप गया।

उसने अपनी दुर्दशा सुनाई, राम की शरणागतवत्सलता बताई और अन्त में सुग्रीवजी ने जो—जो बातें कहीं थीं वे भी सुनायीं। यह सुनकर रावण क्रोधित हुआ और वह युद्ध की तैयारियाँ करने लगा।

इधर श्रीरामचन्द्रजी बिना कुछ खाये, पिये तीन दिन तक समुद्र के तीरपर पड़े रहे, किन्तु समुद्र ने दर्शन न दिये। कोई दुर्बल आदमी होता तो गिड़गिड़ाता और भी प्रार्थना करता, किन्तु राम तो वीरशिरोमणि थे। इस जड़ समुद्र की मैं विनती कर रहा हूँ, तो भी यह मुझे मार्ग नहीं देता। अच्छी बात है, इसे मैं इसके अभिमान का फल चखाऊँगा। अपनी प्रियाके बिना मुझे पलपल भारी हो रहा है और समुद्र मुझे इसी पार रोके पड़ा है। प्राण-प्रिया के मिलन में मुझे बाधा पहुँचा रहा है। इसे मैं देखूँगा। इसको एक बाण में सुखा दूँगा। इसमें के जलजन्तु मर जायँगे। यह सूख जायगा। इसमें धूलि उड़ने लगेगी। वानर इसे पैरों से ही पारकर जायँगे। यह कहकर क्रोध से लाल लाल आँखें करते हुए श्रीरामजी ने अपने विशाल धनुष की टंकोर की। उस भयंकर टंकोर के सुनते ही सभी जलजन्तु डर गये। मकर, उरग, मीन, कच्छप तथा अन्य जल में रहने वाले जीव चिलबिलाने लगे। दशों दिशाएँ गूँज गयीं। श्रीराम का वह रौद्ररूप देखकर देव, गन्धर्व, ऋषि मुनि सभी डर गये। सबको ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो आजही असमय में प्रलय हो जायगी। सर्वत्र हा-हाकार मच गया। लक्ष्मणजी ने आकर श्रीराम के चरण पकड़ लिये। मुख्य मुख्य वानर भी आकर प्रेम से प्रार्थना करने लगे। उसी समय मूर्तिमान समुद्र भी अपना सुन्दर दिव्य शरीर रखकर बहुत से मणि मुक्ता उपहार में लेकर जल से बाहर निकला। उस समय समुद्र की शोभा

अवर्णनीय थी। उसके शरीर की कान्ति चिकनी वैदूर्य मणिके समान थी। कमल के समान उसके नेत्र थे। लाल कमल की मालाओं से उसका कंठ सुशोभित था। अंग प्रत्यंगों में सुन्दर बहुमूल्य चमकीले आभूषण अङ्गों की शोभा बढ़ा रहे थे। उसने आकर बड़ी नम्रता के साथ प्रभुके पादपद्मों में प्रणाम किया

और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगा। गद्‌गद्‌ वाणी से वह बोला—"प्रभो! आपही ने तो इस चराचर ब्रह्माण्ड को बनाया है, आपने ही सबके स्वभाव बना दिये हैं। मुझे आपने अगाध और अपार बनाया है। अब आप ही मेरी मर्यादा न रखेंगे, तो दूसरा कौन रखेगा। जो भी यहाँ आवेगा वही डरा धमकाकर मुझे मार्ग देने को विवश करेगा। मेरे उदर में असंख्यों जलजन्तु निवास करते हैं। मेरे सूखने पर वे सब कहाँ जायेंगे। अतः देव!

अविनय को क्षमा करें। मेरी मर्यादा बनाये रखें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! समुद्र के ऐसे विनीत वचन सुनकर श्रीराम प्रसन्न हुए। उनका क्रोध जाता रहा, अब वे पार जाने के निमित्त समुद्र से परामर्श करने लगे।"

छप्पय

हे अनाथ के नाथ दीन दुखियन दुख त्राता।
हे कृपालु करुणेश शान्ति सत सुख के दाता॥
हे अनादि अखिलेश अनामय अज अघहारी।
हे अच्युत अवधेश अमरपति लीलाधारी॥
जीवविवश गुण प्रकृतितैं, करै कर्म ह्वैकें अवस।
मोइ अगाध अपार तुम, रच्यो तजौ मर्याद कस॥

समुद्र पर पुल बाँधने का प्रस्ताव

(६७२)

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहम्,
त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम्।
बध्नीहि सेतुमिहि ते यशसो वितत्यै,
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥*

(श्री भा० ६ स्क १० अ० १५ श्लोक०)

छप्पय

दो हरि सर्व समर्थ विश्व छिन माँहि बनाओ।
मोपै बाँधो सेतु पार प्रभुवर पुनि जाओ॥
बालमीक मुनि चरित सेतु करि जगकूँ तारें।
सिन्धुसेतु कपि करें सैन्य सब पार उतारें॥
रामचरित मुनि सेतु करि, स्वयं अवसि तरि जाइँगे।
बने रहें पुनि जगतमहँ. सब सेवें सुख पाइँगे॥

संसार में सभी कृतज्ञ हों सभी दूसरों के सुख दुख को अपना

---

* शुकदेवजी कहते हैं—"हे राजन्! मूर्तिमान समुद्र प्रकट होकर श्रीराम से कहने लगा—"हे वीर! आप सुखपूर्वक मेरे ऊपर से जाइये। विश्रवा मुनि के मल रूप इस तीनों लोकों को रुलाने वाले रावण को मारकर अपनी पत्नी को प्राप्त कीजिये। यहाँ मेरे ऊपर आप अपने सुयश के विस्तार के निमित्त पुल बनाइये। जिससे यहाँ आकर दिग्विजयी भूपतिगण आपके यश का गान किया करें।

सुख दुख समझकर यथाशक्ति सहायता करने की चेष्टा करते रहें, तो ये लड़ाई झगड़े, कलह तथा दण्डादि के व्यापार क्यों हों। जब घर में रहकर भी मनुष्य घर वालों से विरोध रखता है। जाति में रहकर भी जाति वालों की उन्नति नहीं चाहता। देश में रहकर भी जो देश के साथ द्रोह करता है, स्वदेश को अपना देश न समझ कर उसकी उन्नति में बाधा डालता है। विश्व में रहकर भी जो विश्व का कल्याण नहीं चाहता ऐसे पुरुषों को समर्थ पुरुष दण्ड देते हैं। उसे बलपूर्वक विवश करके अपना कार्य सिद्ध करा लेते हैं। यह पृथिवी वीर भोग्या है, जो निर्बल हैं, शक्तिहीन हैं ऐसे पुरुषों के लिये कोई गति नहीं। दुर्बल पुरुष पृथिवी के भार हैं। दुर्बलों की क्षमा नपुन्सकता है। दुर्बल कभी क्षमा कर ही नहीं सकता। जो प्रहार करने वाले से डरता है वह उसे क्षमा क्या करेगा। क्षमा समर्थ पुरुष ही कर सकते हैं। जिसको दंड देने की हममें शक्ति है, उसी को क्षमा किया जा सकता है। अतः संसार मे निर्बलों के लिये स्थान नहीं। बली अपनी बात विनय से, नीति से, रोष से, भय दिखाकर तथा डरा धमका कर जैसे चाहता है करा लेता है। बली के सामने सभी सिर देते हैं सभी उसे उपाय बता देते हैं, सभी उसकी कर्म सिद्धि में सहायक बन जाते हैं। अज्ञानियों से प्रीति बिना भय के होती ही नहीं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्रीरामचन्द्रजी ने समुद्र पर क्रोध किया, तब वह मूर्तिमान होकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। उसने अपनी विवशता बताई, कि आपने ही मुझे अगाध और अपार बनाया है। अब यदि मैं आपको रास्ता दे दूँ, तो मेरी मर्यादा नष्ट हो जायगी। सभी मुझे मार्ग देने को विवश करेंगे। मेरे भीतर रहने वाले जल जन्तुओं को कष्ट होगा। अतः आप मुझसे मार्ग देने का आग्रह न करें।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"तब, भाई! हम उस पार लङ्का में कैसे जायँ? मेरी प्रिया तो उस पार है, मैं इस पार हूँ, बीचमें तू विघ्न बना मार्ग रोके खड़ा है। हम दोनों में मिलन कैसे हो? एक शत्रु मेरा लङ्का में बैठा है। दूसरा शत्रु तू मेरे कार्य में विघ्न कर रहा है तुझे बिना सोखे मेरा काम कैसे चलेगा?"

समुद्र ने कहा—"देखिये, भगवन्! आप जो अपने इस अमोघ बाण को ताने खड़े हैं पहिले इसे उतारिये। रोष का त्याग कीजिये, मुझसे मित्रतापूर्ण व्यवहार कीजिये। मैं आपको सब बताऊँगा। ऐसी सम्मति आपको दूँगा कि जिससे मेरी मर्यादा भी बनी रहे और आपका कार्य भी सिद्ध हो जाय।"

इस पर श्रीराम बोले—"देखो, भैया नीरनिधि! मेरा बाण अमोघ है, वह धनुष पर व्यर्थ नहीं चढ़ता। वह चढ़कर बिना छोड़े तूणीर में नहीं आता। अतः मुझे बताओ इस बाण को कहाँ छोड़ूँ?"

समुद्र ने कहा—"प्रभो! यदि आपको इस बाण को सार्थक करना ही है तो इसे उत्तर दिशा में छोड़िये। उधर द्रुमकुल्य नामक एक देश है। वहाँ मेरे किनारे पर बहुत से अनार्य दस्यु रहते हैं। वे मेरे जल का दुरुपयोग करते हैं, वे बड़े क्रूर हैं। इस बाण को मारकर उस देश को आप मरुभूमि बना दें।"

समुद्र की ऐसी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने अपना अमोघ बाण उत्तर की ओर छोड़ा। उसके छोड़ते ही उस देश का समस्त पृथिवीतल का जल सूख गया। समुद्र के स्थान पर वह एक देश हो गया, जो मरुभूमि (बद्रीनाथ के आगे तिब्बत) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ पृथिवी में एक छिद्र हो गया जिससे सदैव मधुर जल निकलता रहता है।

उस देश को भगवान् ने वरदान दिया—"इस देश में पशु

बहुत हों पशुओं के लिये यह देश अत्यन्त ही हितकारी हो। यह देश अल्प रोग वाला और रस से युक्त हो। घृत, दूध आदि रसीले पदार्थ यहाँ बहुत हों और नाना प्रकारकी औषधियाँ यहाँ उत्पन्न हुआ करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब तक तिब्बत की सम्पूर्ण भूमि मरुभूमि है वहाँ अन्न उत्पन्न नहीं होता। सैकड़ों योजन मैदान ही मैदान दिखाई देता है। समुद्र के सोखने के चिन्ह अभी तक वहाँ मिलते हैं। भूमि खोदने पर उसके नीचे से सीपी शङ्ख आदि निकला करते हैं। वहाँ के लोग बड़े हृष्ट, पुष्ट निरोग रहते हैं वहाँ बकरी चमरी गौएँ ही परमधन हैं। वहाँ के लोग शपथ भी पशुओं की ही खाते हैं और पत्र में भी पशुओं के कुशल समाचार लिखते हैं। वहाँ औषधियाँ भी बहुत होती हैं। किन्तु वृक्ष नहीं होते। इस प्रकार अपने अमोघ बाण का समुद्र के कहने से उपयोग करके श्रीराम ने समुद्र से पूछा—"अब बताओ, हम लोग कैसे उस पार जायँ? कैसे हम सब सेनासहित लङ्का पहुँच सकें?'

समुद्र ने कहा—"प्रभो! आप एक काम करें, आपकी सेनामें एक नल नाम का सेनापति वानर है। वह देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा का पुत्र है, जैसे विश्वकर्मा क्षणभर में बड़े-बड़े भवन बना सकता है उसी प्रकार उसमें भी बनाने की शक्ति है। आप उसे आज्ञा दें। यह मेरे ऊपर पुल बना देगा। उस पुल से आप पार जा सकते हैं। इसमें मेरी मर्यादा भी बनी रहेगी। आपकी कीर्ति भी दिगदिगन्तों में व्याप्त हो जायगी। जो भी राजा दिग्विजय के निमित्त तेरे तीर पर आवेंगे, वे ही इस अद्भुत सेतु को देखकर आपके गुणों का गान करने लगेंगे। आपकी कीर्ति के गायन से वे संसार सागर से भी पार हो जायँगे। आपका यह

सेतु प्राणियों को सागर पार ही न पहुँचायेगा, अपितु संसार सागर से भी पार कर देगा।"

समुद्र की बात सुनकर श्रीराम जी ने वानर श्रेष्ठ नल को बुलाया और उससे बोले—"क्यों भाई नल! तुम समुद्र पर १०० योजन पुल बाँध सकते हो?"

नल ने कहा—"प्रभो! मैं सुरशिल्पी श्रीविश्वकर्मा के वीर्य से उत्पन्न हुआ हूँ। पिता के सदृश मुझ में बल है, शक्ति है। महेन्द्रा पर्वत पर मेरी माता को मेरे पिता ने वरदान दिया था कि तुम्हार पुत्र मेरे ही समान शक्तिशाली होगा। अतः पिता के वरदान से मैं समुद्र पर सुन्दर सौ योजन वाला सेतु बाँध सकता हूँ।"

श्रीरामचन्द्र जी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"अरे, भाई! यह बात पहिले तुमने मुझे क्यों नहीं बतायी। पहिले से मालूम हो जाने पर ये सब उपद्रव क्यों होते?"

नल ने कहा—"प्रभो! मैं बिना पूछे अपने गुण अपने आप ही कभी प्रकाशित नहीं कर सकता। अब जब समुद्र ने यह बात याद दिलायी और आपने पूछी, तब विवश होकर मुझे सब सचसच बात बतानी पड़ी।"

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा—"तब भाई! तुम कैसे समुद्र पर सेतु बाँधोगे। जो पत्थर तुम डालोगे वे तो समुद्र में डूब जायँगे।"

इस पर नल बोले—"प्रभो! आपके नाम में ऐसी शक्ति है, कि पर्वत जल पर तैर सकते हैं। समुद्र सूख सकता है। गरल अमृत बन सकता है। हम एक पाषाण पर "रा" लिखेंगे, दूसरेपर "म" लिखेंगे, दोनों को जोड़ देंगे। वे वज्रलेप हो जायँगे। मुझे महात्माओं का वरदान या शाप भी है।"

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा—"कैसा वरदान या शाप ?"

नल बोले—जब मैं मन्दराचल पर्वत पर पैदा हुआ तो वहाँ अपनी माता के साथ रहने लगा। बालकपन में मैं बहुत अधिक चंचल था। वहाँ बहुत से ऋषि मुनि रहकर जप तप किया करते थे। मैं बाल सुलभ चंचलता वश उनके शालिग्रामों को उठाकर जल में डुबो देता था। जब वे आते तो बहुत घबड़ाते। शालिग्रामजी को जल में ढूँढ़ते रहते। इससे मुझे बड़ी हँसी आती। वैसे वे सब मुझसे बड़ा स्नेह करते थे, किन्तु मेरी इस चंचलता से वे दुखी हो जाते।

एक दिन मुनियों ने मिलकर मुझे शाप दिया, कि "तेरे हाथ से डाला हुआ पाषाण जल में न डूबेगा।" इसीलिये प्रभो! मैं बिना आधार के समुद्र पर सुन्दर पुल बना दूँगा।"

नल की यह बात सुनकर श्रीरामजी परम प्रमुदित हुए। उन्होंने नल का अभिनन्दन किया। भगवान की आज्ञा लेकर और उनकी प्रदक्षिणा करके समुद्र अन्तर्धान हो गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! समुद्र के अन्तर्धान हो जाने के अनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने समस्त वानर भालुओं को समुद्र पर सेतु बाँधने की आज्ञा दी। श्रीराम की आज्ञा पाते ही वानर किलकिला शब्द करते हुए पयोनिधि पर पुल बाँधने के लिये प्रस्तुत हुए।"

छप्पय

नल सुरशिल्पीतनय सेतु सुखकर बाँधै वर।
सुघर सेतु बनिजाइ ताहितें जावैं वानर॥
मम मर्यादा रहै रहै यश तुमरो जगमहँ।
नरलीला हरि करहु नहीं नाप्यो जग पगमहँ॥
राम बुलाये नल तुरत, अन्तर्हित सागर भयो।
बाँधो वानर सिन्धुपै, सेतु बिहँसि राघव कह्यो॥

सेतुबन्ध

[६७२]

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥*
(श्री भा० १ स्क० ३ अ० २२ श्लो०)

छप्पय

राम रजायसु पाइ सेतु सब बाँधन लागे ।
लैंन वृक्ष अरु उपल वीरवर वानर भागे ॥
उपल उठाइ उठाइ सलिलमहँ फेंके सबई ।
देहिं सबहिं उत्साह बँध्यो पुल वीरों ! अबई ॥
धम्म धम्म पत्थर गिरैं, धूम धड़ाको मचि गयो ।
आर पारतें सुधि महँ, सत सामने खिँचि गयो ॥

राम का कार्य समझकर एक मन के बहुत से लोग मिलकर जिस कार्य को करते हैं उसके करने में अत्यधिक आनन्द आता हैं। उन कार्यों में क्लेश का अनुभव होता है, जो ममत्व से अहंकार पूर्वक व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के निमित्त किये जाते हैं।

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! देवताओं के कार्य करने के निमित्त नर देवों राजाराम के रूप में उत्पन्न होकर भगवान् ने समुद्र पर पुल बाँधना आदि अनेक पुरुषार्थ वाले कार्य किये।"

उनके करने में चिन्ता, अविश्वास, चंचलता, क्षोभ और सन्देह बना रहता है। जो राम का कार्य समझकर किया जाता है उसमें प्रतिक्षण उत्साह बढ़ता है। सभी हँसते खेलते गाते बजाते आनन्द करते जयजयकार बोलते हुए काम करते हैं। वे लोग धन्य हैं, जो राम के निमित्त उत्सव पर्व और धूमधाम में सम्मिलित होते हैं और वे उनमें से भी धन्यतम हैं जो ऐसे कार्यों की योजना करते हैं। ऐसे कार्यों में लोगों को लगाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब निश्चय हो गया कि इस सौ योजन वाले समुद्र पर एक सुन्दर सुदृढ़ सेतु बाँधा जायगा, तो वानरों के हृदय में प्रसन्नता की हिलोरें मारने लगीं। वानर तो खेल कूद हूहल्ला से प्रसन्न ही रहते हैं। तीन चार दिन से बैठे-बैठे उनका मन भी उदास हो रहा था। बिना काम के बैठना निर्वीर्य आलसी लोगों का काम है। जिसके हृदय में कार्य करने का उत्साह है उसे यदि बिना कार्य के बिठा दिया जाय, तो वह मृत्यु से भी बढ़कर है। राम का काम करते-करते ही जीवन व्यतीत हो यही भगवद्भक्तों का ध्येय होता है। प्रथम तो सेतु-बन्धन समिति का चुनाव हुआ। सबे सम्मति से नल को उसका प्रधान शिल्पी नियुक्त किया गया। उनके सहायक शिल्पी नील, गवय, गवाक्ष आदि बनाये गये। जामवन्त कार्य-निरीक्षक अधिकारी हुए। हनुमानजी को श्रम विभाग का सर्वोच्च अधिकारी बनाया गया। वानर भालुओं से पत्थर, काष्ठ, वज्रलेप, चूना और बालू आदि जोड़ने के पदार्थ एकत्रित करना, उनका काम था। पहिले लक्ष्मणजी, हनुमानजी और नल नील ने यह निर्णय किया, कि पुल किस स्थल से आरम्भ किया जाय और कहाँ तक बँधे। हनुमानजी उड़कर मुख में सूत दबाकर उस पार पहुँच गये। इधर के सूत को नल पकड़े रहे। मापयन्त्र से

ठीक करके एक सूत्र इधर से हनुमानजी ने छोड़ दिया। उसे नील ने नाप लिया। नापकर उन्होंने अपना हिसाब ठीक बैठाया। यदि १०० योजन लम्बा पुल बाँधना है, तो चौड़ा १० योजन तो अवश्य होना चाहिये। इसलिये इधर भी १० योजन चौड़ा किनारा नाप-जोख कर ठीक होने पर पुल बाँधना आरम्भ हुआ।

नील ने हनुमानजी से कहा—"देखो महावीर! एक काम करो, पहिले पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े लाओ। फिर वृक्षोंको तोड़-तोड़ कर उन्हें पाट दो। उनके ऊपर मैं पत्थर जोड़ता जाऊँगा। कुछ वानर जोड़ने में, चूना, गारा लगाने में, सामान को यथा क्रम पहुँचाने में रहें। कुछ वानर बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ कर लावें। कुछ पर्वतों को तोड़कर पाषाणों को फोड़ कर लावें। अब देर करने का काम नहीं।"

हनुमानजी ने कहा—"अच्छी बात है, बनाने का कार्य तुम्हारे अधिकार में है। वृक्ष, पाषाण चूना, गारा, लाना मेरे अधिकार में रहा।" यह कहकर वे वानरों को उत्साहित करते हुए कहा—"वीरो! तुम्हारे लिये इस गौ के खुर के सदृश १०० योजन वाले समुद्र पर पुल बाँधना कौन सी बात है, तुम तो एक छलाँग में उस पार जा सकते हो, सम्पूर्ण समुद्र को पी सकते हो। चाहो तो पूरे समुद्र को पाट सकते हो। हाँ, तो बलवानो! उठो और समुद्र पर पुल बाँध दो। अब देरी करने से काम न चलेगा।"

इतना सुनते ही वानर उछलने लगे, कूदने लगे, किलकिला शब्द करने लगे। दौड़-दौड़कर वृक्षों पर चढ़ने लगे। शाल, ताल, तमाल, तिलक, तिनिस, आम, अनार, अशोक, अश्वकर्ण, नारियल, नीम तथा बकुल बहेड़ा आदि अनेक वृक्षों को उप

उखाड़ने लगे, उन्हें खींच खींचकर समुद्र में डालने लगे। कोई बड़े-बड़े पर्वतों के शिखरों को तोड़ते, ऊँचे-ऊँचे चट्टानों को फोड़ते कोई कंधों पर रख रखकर समुद्र की ओर दौड़ते, कोई नल के कथनानुसार एक पाषाण से दूसरे पाषाण को जोड़ते। कोई चिल्लाता—"अरे, भाई! खिलवाड़ कर रहे हो। देखो, यहाँ सामग्री कम हो रही है। इतना सुनते ही वानर किलकिला शब्द करते। यन्त्रों से बड़े-बड़े पाषाणों को उठा लाते और उन्हें धम्म से समुद्र में फेंक देते, जिससे समुद्र का पानी योजनों ऊपर उछल जाता। वानरों का तो कुतूहल हो गया। वे आपस में होड़ लगाते देखें कौन के फेंकने से समुद्र का जल अधिक उछलता है। बस, अब यही खेल हो गया। बड़े से बड़े पर्वत को सब मिलकर उठा लाते और उसे पटककर मारते जितनाही जल उछलता उतने ही वानर भी उछल जाते, हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते, एक दूसरे को चिढ़ाते कम लाने वालों को निर्बल बताते। इस प्रकार बड़े आनन्द से पुल बँधने लगा। वानर मदमत्त हाथियों के समान इधर से उधर दहाड़ मारते हुए भागते, बहुत से क्लान्त होकर वृक्षों के नीचे पड़कर सो जाते, बहुत से आकर हनुमान्जी को बताते। देखिये, महाराज अमुक वानर सो रहे हैं। तब पवन तनय वहाँ जाकर उन्हें डाँटते और कहते—"तुम लोग बड़े काम चोर हो रे! यह सोने का समय है। दो दिन में पुल बँध जाने दो, फिर तान दुपट्टा सोना।" इतना सुनते ही सोते हुए वानर उठकर भाग जाते, फिर वे दूने उत्साह से श्रीरामचन्द्र जी की जय बोलते हुए पत्थरों को लाते। इस प्रकार पहिले दिन १४ योजन समुद्र पर पुल बँध गया। वानर उस पर उछल-उछलकर देखने लगे, कि सुदृढ़ बना है या नहीं। हमारे आघात से यह टूट तो न जायगा।

श्रीरामचन्द्रजी बड़े कुतूहल से समुद्र के बन्धन को देख रहे थे। उन्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा था, कि इतने भारी समुद्र पर ये वानर इतना लम्बा चौड़ा पुल कैसे बना रहे हैं—उन्होंने अत्यन्त आश्चर्य के साथ नल को बुलाकर पूछा—"भैया, नल! तुम किस बुद्धिमानी से किस युक्ति से ऐसा सुदृढ़ पुल बना रहे हो?"

हाथ जोड़कर नल ने कहा—"कृपानाथ! यह सब आपके नाम का ही प्रभाव है।"

श्रीराम ने कहा—"अरे, भाई! यह तो तुम शिष्टाचार की बातें कहने लगे। मेरा अभिप्राय यह है कि पाषाण होता है भारी वह तो जल में डूब ही जायगा। तुम्हें ऋषियों का वरदान है, कि तुम्हारे हाथ से पाषाण न डूबें; किन्तु यह तो बताओ ये आपस में जुड़े कैसे रहते हैं।"

नल ने कहा—"दीनबन्धो ! हम आपके नाम का मसाला लगा देते हैं; इससे तैरते भी रहते हैं और परस्पर जुड़ भी जाते हैं।"

श्रीरामचन्द्रजी को बड़ा कुतूहल हुआ। वे बोले—"अच्छा, भैया ! हम भी अपने हाथ से पाषाण छोड़कर देखते हैं, वह जल पर उतराता है या नहीं।"

यह सुनकर सबको बड़ी उत्सुकता हुई। श्रीरामचन्द्रजी समुद्र के किनारे गये। उन्होंने एक बहुत देखदाखकर हलका सा पाषाण उठाया। उठाकर ज्यों ही उसे जल में छोड़ा कि वह डूब गया। सब वानर तालियाँ बजाकर हँसने लगे। इस पर हनुमान्जी ने कहा—"प्रभो ! जिसे आप छोड़ दें जिसे अपने कर का अवलम्बन न दें, उसे संसार सागर में डूबने के अतिरिक्त और कौनसा स्थान है। इस अगाध संसार सागर में डूबते हुए प्राणी को उबारने वाले तो ये श्रीहस्त ही हैं, अतः प्रभो ! आप जिसे अपना लें, अपने हाथ का सहारा दें, उसे फिर कभी भी न छोड़ें। उसे सदा अपनाये रहें। करावलम्ब देते ही रहें।" यह सुनकर सभी सुखी हुए। रात्रि में सबने विश्राम किया।

दूसरे दिन पुनः हूहल्ला मचा। सबकी उपस्थिति ली गयी। बूढ़े जामवन्त अपने बड़े बड़े बालों में से लेखनी निकाल कर पाषाणों पर सबकी उपस्थिति भरने लगे। सबको यथायोग्य कामों पर भेजने लगे वानर चाहते थे, कि आज पूरा पुल बँध जाय, किन्तु दूसरे दिन प्रयत्न करने पर भी बीस योजन ही पुल बँध सका। तब तक सायंकालीन संध्या का समय हो गया। कार्य स्थगित कर दिया गया।

तीसरे दिन हनुमान्जी बड़े भोर में उठे नलसे बोले—"देखो,

भाई आज काम सवेरे ही लगाना चाहिये। पुल बँधने में बड़ी देरी हो रही है।"

नल ने कहा—"देखिये, महाराज! मैं अपनी शक्ति भर तो कुछ उठा नहीं रखता। फिर आप समझते ही हैं, साधारण काम तो है नहीं। १० योजन चौड़ा १०० योजन लम्बा समुद्र पर पुल बाँधना कोई हँसी खेल तो है ही नहीं। मुझे आप जैसी आज्ञा दें करने को तत्पर हूँ। आज्ञा हो तो मैं रात्रि में न सोया करूँ।"

हनुमानजी ने कहा—"अरे, भाई! सोने को कौन मना करता है, मेरा अभिप्राय यह है, कि काम शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिये। तुम देखते नहीं समय कितना न्यून है। चलो अपना मापदंड और कन्नी बसूली लेकर काम लगाओ। फिर क्या था, तीसरे दिन बहुत तत्परता से काम हुआ किन्तु इक्कीस योजन से अधिक न बन सका। अभी तीन दिन में ५५ ही योजन पुल बँधा है इससे हनुमानजी अप्रसन्न हुए। सबको डाँटते हुए कहने लगे—"तुम लोग पुल बाँधते हो या खिलवाड़ करते हो। अभी तो ४५ योजन और बाँधना है। कल सब तत्परता से काम करना।" यह कहकर उस दिन का काम बन्द कर दिया गया।

चौथे दिन वानर २० योजन बाँध सके। इस पर हनुमानजी ने कहा—"तुम लोगों से इतना कहते हैं, फिर भी तुम एक दो योजन ही बढ़ते हो। मैं चेतावनी देता हूँ कल कैसे भी हो तैसे पुल बँधकर तैयार हो जाय। कल जब तक पुल न बनेगा, तब तक काम बन्द न होगा।"

वानरों ने एक स्वर में कहा—"महाराज! चाहे जो हो, कल

हम पुल को पूरा करके ही विश्राम लेंगे चाहे रात्रि भर ही काम क्यों न करना पड़े।"

पाँचवें दिन सब बड़े उत्साह से काम कर रहे थे, अब २२ योजन ही तो रह गया था, वानरों ने वीरता पूर्वक दिन ढलते-ढलते समुद्र के सेतु को पूरा कर दिया। पूरा सेतु बँध जाने पर सभी किलकिला शब्द करने लगे। सभी एक दूसरे के गले से गला मिलाकर मिलने लगे। सभी आनन्द से उछलने कूदने लगे—

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"भाई! भगवान् शंकर की कृपा से यह पुल बना है, अतः मेरी इच्छा है! यहाँ एक शिव लिङ्ग स्थापित किया जाय। हनुमानजी! तुम जाओ उत्तराखंड से एक सुन्दर सा शिव लिङ्ग ले आओ।"

यह सुनकर हनुमान्जी शिवलिङ्ग लेने चले। इधर श्रीरामचन्द्रजी ने ऋषियों से पूछा—"शिवजी की प्रतिष्ठा कब करनी चाहिये और किनसे करानी चाहिये।"

ऋषियों ने कहा—"महाराज! मुहूर्त तो अब ही है। रही प्रतिष्ठा करने की बात सो महाराज! कराने को तो हम सब ही करा सकते हैं; किन्तु कर्मकाण्ड में जैसा रावण निष्णात है वैसा कोई भी नहीं। वह शिव भक्त भी है। यदि वह आपकी प्रतिष्ठा करा सके तो अति उत्तम है।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"मुनियो! रावण से तो मेरा वैर हो चुका है, वह मेरे कहने से प्रतिष्ठा कराने क्यों आने लगा।"

इस पर मुनियों ने कहा—"देखिये, राघव! आप से तो किसी का वैर हो ही नहीं सकता। मान लीजिये वैर हो भी तो इसमें और प्रतिष्ठा में क्या सम्बन्ध। वैद्य अगर रोगी के बुलानेपर नहीं जाता तो उसे पाप लगता है, इसी प्रकार कर्मकांडी

ब्राह्मण को योग्य यजमान बुलावे और वह खाली हो फिर भी न आये तो उसे पाप लगता है। शिवप्रतिष्ठा तो ऐसा महान् कार्य है, कि इसमें तो बिना बुलाये आना चाहिये। जो शैव शिवप्रतिष्ठा सुनकर भी उसमें सम्मिलित न हो, तो वह सच्चा शैव नहीं। आप राक्षसराज रावण को बुलावें वह अवश्य ही आपके बुलाने से प्रतिष्ठा कराने आवेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं।"

मुनियों की सम्मति सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण के एक मन्त्री को तुरन्त लङ्का भेजा। शिवप्रतिष्ठा का समाचार सुनते ही रावण गद्गद् हो उठा। वह तुरन्त अपनी प्रतिष्ठा पद्धति और आचार्यपने की सब सामग्री लेकर समुद्र के इस पार उपस्थित हुआ। उसने विनियत श्रीराम को प्रायश्चितादि कराये। श्रीराम ने उन्हें आचार्य रूप में वरण किया। आचार्य ने कहा—"राघव! अब प्रतिष्ठा का समय आ गया है, शिवजी की प्रतिष्ठा कीजिये।"

श्रीराम ने कहा—"आचार्य प्रवर! पवनसुत शिवलिङ्ग लेने उत्तराखंड गये हैं, अभी तक वे लौटे ही नहीं। प्रतिष्ठा मैं किस की करूँ?"

रावण ने कहा—"महाराज! प्रतिष्ठा का मुहूर्त न निकलना चाहिये। तब तक आप बालू के ही शिवजी की प्रतिष्ठा कर दें।"

श्रीरामचन्द्रजी को तो आचार्य की आज्ञा का पालन करना ही था। बालू का शिवलिङ्ग बनाकर उसकी प्राणप्रतिष्ठा कर दी। प्रतिष्ठा कार्य सकुशल निर्विघ्न समाप्त हुआ। समुद्र तो श्रीराम के अनुकूल ही था। असंख्यों मणि मुक्ता लाकर समुद्र ने दिये। श्रीराम ने आचार्यदक्षिणा में बहुतसा धन, अनेक

के रत्न दिये। उन्होंने कार्य कराने वाले आचार्य के चरणों में प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए आचार्य ने पूछा—"राघव ! तुम्हारी मनोकामना क्या है ? किस बात के लिये मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँ।"

श्रीराम बोले—"आचार्यप्रवर ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये, कि मैं अपने शत्रु रावण को रण में मार सकूँ, जिसने मेरी प्यारी पत्नी को बन्दी बनाकर अपने यहाँ रख रखा है।"

यह सुनकर आचार्य धर्म के अनुसार रावण ने कहा—"राघव ! आपकी मनोकामना अवश्य पूरी होगी, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आप अपने शत्रु को अवश्य मार सकेंगे। इतना कहकर शिवजी को प्रणाम करके और सबके द्वारा सत्कृत होकर रावण आकाश मार्ग से लंका चला गया।

इधर तब तक श्रीहनुमान्जी एक सुन्दर शिव लिङ्ग लेकर आये। बालू के शिवलिङ्ग को देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे श्रीरामचन्द्रजी से बोले—"राघव ! यह आपने क्या किया, मैं कितने परिश्रम से कितना सुन्दर शिवलिङ्ग लाया हूँ, आपने बालू के शिवलिङ्ग की स्थापना कर दी।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"भाई, दुःखी क्यों होते हो, तुम इन्हें हटाकर अपने शिवजी की स्थापना कर दो। तुम भी तो पंडित हो, कर्मकाण्डी हो, साक्षात् शिव ही हो।"

इतना सुनते ही हनुमानजी ने अपनी पूँछ में लपेटकर पूरी शक्ति लगाकर बालुका की बनी शिवलिंग को उखाड़ना चाहा, किन्तु वह टस से मस न हुई। तब तो हनुमान्जी बड़े लज्जित हुए। इस पर श्रीरामजी हँसकर बोले—"पवनतनय ! लज्जा की कौन सी बात है, भैया ! शिवलिंग की स्थापना तो जितनी ही

हो जायँ उतनी ही उत्तम हैं। तुम भी अपने शिवजी की स्थापना करदो। मेरे स्थापित शिवजी श्रीरामेश्वर के नाम से विख्यात होंगे और तुम्हारे शिवजी हनुमदीश्वर के नाम से।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा मान कर हनुमान्जी ने शिवजी की स्थापना कर दी। इसलिये श्रीरामेश्वर धाम में श्रीरामेश्वर के समीप श्रीहनुमदीश्वर शिव अद्यावधि विद्यमान् हैं। श्रीरामेश्वरजी के दर्शनों के पूर्व उनके दर्शन करते हैं, जो हनुमान्जी के स्थापित शिवजी के दर्शन नहीं करता, उसकी रामेश्वर यात्रा पूर्ण सफल नहीं मानी जाती। इस प्रकार पुल बँध जाने पर श्रीरामचन्द्रजी समस्त वानरी सेना के सहित उससे पार जाने की तैयारियाँ करने लगे।"

छप्पय

मापदण्डतें नापि बनायो, चौदह योजन।
द्वितिय दिवस जब बीस बन्यो तब कीयो भोजन॥
तृतिय दिवस इकीस बँध्यो बाइस चौथे दिन।
पहुँचे पंचम दिवस पार रचि तेइस योजन॥
सिन्धु सेतु पूरो भयो, रामेश्वर थापित करे।
आशुतोषके दरश करि, नयन नीर सबके भरे॥

क्षतविक्षत लङ्का

(६७४)

सावानरेन्द्रवलरुद्धविहारकोष्ठ—
श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का
निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ—
शृङ्गाटका गजकुलेह्रदिनीवघूर्णा ।*
(श्री भा० ९ स्क० १० अ० १५ श्लो०)

छप्पय

पार पहुँचि सुग्रीव निशाचरपति समुझायो ।
मूढ़ न मानी बात राम अंगदहुँ पठायो ॥
रण के बाजे बजे घुसे लंकामहँ वानर ।
तोड़ैं फोड़ैं उछरि कूदि सब घूमे घर घर ॥
वन उपवन सब नगर महँ, वानर ही वानर भरे ।
क्षत विक्षित नगरी भई, घर टूटे निशिचर मरे ॥

सैनिक धर्म बड़ा कठोर और निर्दय धर्म है । सैनिक जब शत्रु पर चढ़ाई करते हैं, तो उन्हें दया नहीं रहती । वे उन्मत्त हो जाते हैं, उनके सामने शत्रु की कैसी भी सुन्दर से सुन्दर वस्तु

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जिस पुरी के क्रीड़ा स्थल, कोष्ठ, गृहद्वार, प्रधान द्वार सभा स्थल, छज्जे, पक्षियों के स्थान सुग्रीव की वानरी सेना से रुद्ध हो गये हैं । वह लङ्कापुरी, वेदी, ध्वज, सुवर्ण कलश तथा चतुष्पथों के टूटने फूटने के कारण गज यूथपों द्वारा विमर्दित सरोवर के समान हो गयी थी ।

आ जाती है। उसे ही नष्ट कर डालते हैं। उस समय उन्हें शत्रु की किसी वस्तु पर दया नहीं आती। यदि युद्ध धर्म इतना कठोर न होता तो यह बढ़ी हुई सृष्टि कहाँ समाती। जैसे उत्पन्न हुई सृष्टि के लिये संहार अनिवार्य है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! समुद्र पर सेतु बँध गया। वानर बड़ी प्रसन्नता से उस पर कूदने लगे, दौड़ने लगे। सेना पतियों ने सेना को पार होने की व्यवस्था कर दी अब वे सब वानर एक दूसरे को रौंदते, कूदते फाँदते, किलकिला शब्द करते हुए उस पार चले। श्रीरामचन्द्र हनुमामान्जी की पीठपर चढ़कर तथा लक्ष्मण जी अंगद की पीठपर चढ़कर आगे-आगे चले। वानरों का कुतूहल बढ़ रहा था। उनमें से बहुत से पुल से न चलकर तैर कर ही चले, बहुत से नौकाओं से चले बहुत से आकाश मार्ग से उड़कर चले और बहुत से एक दूसरे के ऊपर चढ़कर ही चले।

इस प्रकार वानरी सेना ने समुद्र को पार कर लिया। पार पहुँचकर सुग्रीव ने सुवेल शैल के समीप फल मूल बाहुल्य स्थानमें सेना को टिकाया। उस फले फूले स्थान को पाकर वानर अत्यन्त ही प्रमुदित हुए। वे वृक्षों से तोड़-तोड़कर फल खाते और आनन्द की वंशी बजाते। उन्हें न रावण का भय था, न पराजित होने की आशंका। जिसके सिर पर राम हैं उसको चिन्ता हो ही नहीं सकती।

इधर रावण ने वानरी सेना का पता लगाने के लिये शुक, सारन नामक दूत भेजे। वानरों ने उन्हें पकड़ लिया, किन्तु कृपालु श्रीराम ने उन्हें छुड़ा दिया। उन्होंने जाकर विस्तार के साथ दशानन को राम सेना का समाचार सुनाया और वानरों को अजेय बताया। इस पर रावण ने अपने दुर्ग की सबसे ऊँची

छत पर चढ़कर वानरी सेना को यन्त्र के द्वारा देखी। जैसे छत्ते में चारों ओर मधु मक्खियाँ चिपटी रहती हैं वैसे दशों दिशाओं में, वानरी सेना देखकर रावण भयभीत हुआ। उसने शुक, सारण शार्दूल आदि जितने दूत भेजे सभी ने श्रीराम की सेना को बलवती बताया और रावण को सन्धि करने की सम्मति दी। किन्तु रावण ने स्पष्ट कह दिया, कि शरीर में प्राण रहते मैं संधि नहीं कर सकता। अब उसने सोचा किसी प्रकार छल बल से वैदेही को वश में किया जाय। अब उसने राक्षसी माया का आश्रय लिया। वह सीता के समीप जाकर बोला—"वैदेही अब तुम्हारा हठ करना व्यर्थ है। जिसके लिये तुम हठ कर रही थीं, वह राम तो मारा गया। बात यह थी, कि समुद्र पार करके जब वे अपनी सेना सहित इस पार आकर सो रहे थे, तब मेरे सैनिकों ने जाकर राम का सिर काट डाला, सुग्रीव को भी स्वर्ग का रास्ता दिखा दिया, विभीषण पकड़ा गया, अंगद मारा गया। हाँ लक्ष्मण वानरी सेना की सहायता से भाग गया।" यह कह कर उसने समीप में खड़े सेवक से कहा—"वीर विद्युज्जिह्व को अभी बुलाओ वह रण से राम का जो सिर काट कर लाया है और राम का धनुष तूणीर छीन लाया है उन सब वस्तुओं को भी लेता आवे।"

रावण ने तो विद्युज्जिह्व को पहिले से ही सिखा पढ़ा रखा था। वह माया से रचित श्रीराम का सिर लेकर आया। उसे देखकर जानकी मूर्छित हो गयीं और भाँति-भाँति से विलाप करने लगीं। रावण किसी आवश्यकीय राम-काज से चला गया। उस समय माया से मोहित वैदेही को समझाते हुए सरमा नाम की राक्षसी ने रावण का सब रहस्य समझा दिया उसने कहा "अभी तक तो वानरों और राक्षसों का युद्ध ही आरम्भ नहीं

हुआ है। श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, नलनील तथा अन्यान्य सभी वानर सकुशल हैं। यह श्रीराम का सिर सत्य नहीं, झूठा है, माया से बनाया गया है।" इस प्रकार सरमा द्वारा राक्षस के छल का उद्घाटन होने से सीता परम प्रमुदित हुईं, फिर सरमा ने और भी सब बातें बताईं। सरमा की बातों पर विश्वास करके सीताजी निश्चिन्त हुईं और अपने पति की मंगल कामना करती हुई उन्हीं के ध्यान में मग्न हो गईं।

इधर रावण को उसके नाना माल्यवान् ने बहुत समझाया श्रीराम का बल पराक्रम बताया, सीताजी को छलपूर्वक हर लाने की निंदा की और अविलम्ब जानकी को लौटा देने की सम्मति दी, किन्तु उस हठी दुष्ट राक्षस को भला कौन समझा सकता था, जो अपने को ही सर्व श्रेष्ठ पंडित माने बैठा था।

इधर तो लंका में सर्वत्र रावण की आज्ञा से युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं, उधर श्रीरामचन्द्रजी की सेना में यह परामर्श हो रहा था, कि युद्ध किसी प्रकार किया जाय। श्रीरामचन्द्र जी के सम्मतिदाता भेद बताने वाले प्रधान मंत्री विभीषणजी थे, उनसे उन्होंने सम्मति ली। रावण की कितनी सेना है, कितने सेनापति हैं, कितने वाहन हैं, ये सब बातें पूछीं। फिर सुबेल शैल के शिखर पर चढ़कर श्राराम ने दूर से ही समस्त लंकापुरी को देखा। विभीषण ने एक-एक करके लंका के सभी प्रधान-प्रधान स्थान भगवान् को दिखाये श्रीरामचन्द्र के समीप ही खड़े-खड़े सुग्रीव तथा प्रधान-प्रधान वानर भी लंका के वर्णन को श्रवण कर रहे थे। उस समय रावण अकेला ही अपने भवन को सबसे ऊँची छत पर बैठा था। उसके साथ न कोई मन्त्री था न सेवक। चिन्ता में बैठा कुछ सोच रहा था। विभीषण ने रामको

प्रभो ! यह जो सुमेरु शिखरके समान मुकुट पहिने नीचा सिर किये बैठा है, यही मेरा दुष्ट भाई रावण है। यह एकान्त मे बैठकर युद्ध के विषय में सोच रहा है यह संसार में सर्वश्रेष्ठ वीर है। आज तक इसका न किसी ने सामना किया, न इसे कोई युद्धमें पराजित ही कर सका है। इन्द्र से जब युद्ध हुआ तो उनके ऐरावत हाथी ने इसकी छाती में अपने वज्र के समान दाँत मारे थे। उस समय ऐरावत के दाँत चूर-चूर हो गये थे, किन्तु उसकी छाती में खुरसट भी नहीं लगी थी। इसके बलकी थाह नहीं। इसे अपने बल पौरुष का बड़ा गर्व है।"

विभीषण तो श्रीरामचन्द्रजी को वे सब बातें सुना रहे थे किन्तु पीछे खड़े सुग्रीव इन सब बातों को सुनकर अत्यंत ही उत्तेजित हो गये। उनसे रहा न गया। वे अत्यन्त ही शीघ्रता के साथ उड़कर रावण के समीप पहुँच गये। रावण का सिर नीचा था। वह तन्मय होकर कुछ सोच रहा था, इन्होंने जाते ही उसके सुवर्णमंडित दिव्य मुकुट को गिरा दिया और गरजकर बोले-- "अरे, दुष्ट तू क्यों अन्याय कर रहा है। मुझे जानता नहीं मैं बालिका भाई सुग्रीव हूँ। श्रीरामचन्द्र मुझे अपना मित्र कहते हैं, किन्तु मैं उनका सेवक, अनुचर तथा दास हूँ। यदि तू अपना कल्याण चाहता है, तो जानकी को लौटा दे, नहीं तो तेरा सम्पूर्ण गर्व चकनाचूर हो जायगा। तेरा सर्वनाश हो जायगा।"

वीराभिमानी रावण ने जब देखा, कि वानर तो बड़ी अशिष्टता कर रहा है, तब उसे बड़ा क्रोध आया उसने सुग्रीव को पकड़कर पृथ्वी में पटक दिया और उनके ऊपर चढ़ गया। सुग्रीव भी दाँव पेंच जानते थे, उन्होंने जो पेंतरा बदला, कि रावण नीचे वे ऊपर। अब तो दोनों क्रोधित हो गये। वह उसे पकड़ता। वह उसे कसता। एक दूसरे को थप्पड़, मुक्का, घूँसा,

लात और तमाचे मारने लगे। चटा-चट शब्द होने लगे एक दूसरे को घुटनों से रगड़ने लगे। सुग्रीवजीने उसे कसकर पकड़ लिया, रावण ने उन्हें नीचे डालकर मसलना आरम्भ किया। सुग्रीवजी ने देखा यह पहाड़ के समान डील डौल वाला जब मेरी छातीपर चढ़ जाता है, तो चकनाचूर कर देता है इसलिये उन्होंने उसे कसकर पकड़ लिया और नीचे खाईं में कूद पड़े। दोनों ही कीच में लथ पथ हो गये। यह देखकर रावण सुग्रीव को लिये हुये उड़कर फिर छत पर आया। अब उसने आसुरी मायाका प्रयोग करना चाहा। सुग्रीवजी उसके मनोगत भाव को समझ गये। तुरन्त वे उससे अपने शरीर को छुड़ाकर आकाश मार्ग से उड़कर सुबेल शैलपर पहुँचे। उन्होंने इस प्रकार क्षत विक्षत और श्रमित देखकर श्रीरामजी सब समझ गये और मीठी घुड़की देते हुए बोले—"देखो, भाई! ऐसा साहस अच्छा नहीं होता। यदि तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो जाता, तो मेरा तो सब कार्य क्रम ही चौपट हो जाता। मैं जीवित भी न रहता। तुम्हें मेरी शपथ है जो फिर कभी ऐसा साहस किया तो।" इस प्रकार सुग्रीव को समझाकर सब सेवक सचिवों के सहित शरणागतवत्सल श्रीराम शैल शिखर से नीचे आये।

नीचे आकर श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण से पूछा—"हे राक्षसेश्वर! अब बताओ हमें क्या करना चाहिये।"

यह सुनकर सम्मति दाताओं में श्रेष्ठ राक्षसेश्वर विभीषण बोले—"प्रभो! सर्वप्रथम तो आप अपना एक दूत रावण के पास पठावें। वह निर्भीक बली और बोलने में चतुर हो, उसकी वाणी में दीनता भी न हो और साथ ही अत्यधिक उद्धत भी न हो। वह जाकर आपका संदेश रावण से कहे और सीताजी को लौटाने का आग्रह करे। यदि दूत की बात मानकर वह

सत्कार पूर्वक सीताजी को लौटा दे, तब तो युद्ध करना उचित नहीं। यदि वह न माने तब तो युद्ध अवश्यम्भावी है। अतः सर्व प्रथम दूत का भेजना अत्यावश्यक है।"

विभीषण की सम्मति का श्रीराम ने अभिनन्दन किया तथा बालितनय अंगद में दूत के सब गुण समझकर उन्हें ही रावण के समीप पठाया। अंगदजी ने जाकर श्रीराम का संदेश बड़ी ओजस्वी भाषा में निर्भीक होकर भरी सभा में राक्षसराज रावण को सुनाया। अंगद ने कहा—"मैं बालि का पुत्र हूँ, अंगद मेरा नाम है श्रीराम ने मुझे दूत बनाकर तेरे पास पठाया है, तू नीच है, निर्लज्ज है, चोर है। श्रीराम के पीछे तू जगज्जननी जानकी को हर लाया है। तू कामी है, वध करने के सर्वथा योग्य है। तैंने आततायीपने का कार्य किया है। श्रीरामचन्द्र जी तुझे तेरे बन्धु बान्धवों सहित मार डालना चाहते हैं। फिर भी वे कृपालु हैं क्षमा के सागर हैं। यदि तू दाँतों में तृण दबाकर सीताजी को आगे करके दीनता पूर्वक श्रीराम के समीप जायगा, और अपने अपराधों के लिये क्षमा याचना करेगा, तो वे तुझे अवश्य क्षमा कर देंगे। यदि तू अपना कल्याण चाहता हो, तो श्रीराम की शरण में जा।"

इतना सुनते ही अभिमानी रावण परम कुपित हुआ, उसकी भौंहें चढ़ गयीं, आँखें लाल हो गयीं, क्रोध के कारण मुख रक्त वर्ण हो गया। दाँतों को पीसते हुए वह बोला—"इस दुष्ट वानर को पकड़ लो, यह अशिष्ट है अविनयी है, नीच है। पकड़कर इसे मार डालो। यह जीवित न जाने पावे।"

जब कई बार रावण ने मंत्रियों से पकड़ने को कहा, तो चार बली राक्षसों ने अंगदजी को पकड़ लिया। अंगदजी अपना बल कौशल दिखाने के लिये उन चार राक्षसों को लिये हुए ही चढ़े।

वेग से उड़ने के कारण। वे चारों राक्षस रावण के देखते-देखते उसके सामने ही उसी प्रकार गिर पड़े, जिस प्रकार पेड़ से पके फल गिर पड़ते हैं। अंगदजी उछलकर रावण के महल की छत पर बैठ गये। वहाँ वे पैरों को पटकने लगे, हाथों से प्रहार करने लगे। उनके पैर पटकते ही वह इतनी बड़ी छत टूटकर उसी प्रकार गिर गई जिस प्रकार इन्द्र के वज्र लगने से पर्वत के शिखर गिर जाते हैं। इस प्रकार रावण को श्रीराम का संदेश सुनाकर अपना बल पराक्रम जताकर तथा अपना नाम सुनाकर अंगदजी अपनी सेना में लौट आये। उन्होंने रावण का सब समाचार सचिवों सहित श्रीरामचन्द्र को सुनाया। अब तो कोई बात रही ही नहीं। युद्ध होना अनिवार्य हो गया। सुग्रीवजी ने लंका पर चढ़ाई करने की घोषणा कर दी। सर्वत्र उत्साह छा गया। वानर उछलने कूदने और कबड्डी मारने लगे। वे गर्जते तर्जते और सिंहनाद करते हुए लंका की ओर दौड़े। वे आपस में धक्का मुक्की कर रहे थे। एक दूसरे को पीछे ढकेल रहे थे, सभी सर्वप्रथम जाकर लंका को विदीर्ण करने के लिये लालायित हो रहे थे। उनमें बहुत से काले मुँह वाले थे, बहुतों के मुख रक्तवर्ण थे। बहुत से सुवर्ण के वर्ण के तो बहुत से पीत वर्ण के थे। सबके सब रामकाज में प्राणों को समर्पित करने के लिये तत्पर थे। सभी युद्ध की बलिवेदी पर प्राणों की आहुति देने के लिये उद्यत थे। वे उछलते कूदते हुए वृक्षों और पत्थरों को लिये हुए लंका की ओर बढ़े। वे पाषाणों और नखों से परिधि और तोरणों को तोड़ने लगे। गोपुरों तथा मुख्य-मुख्य द्वारों को ढहाने लगे। वेदियों को विध्वंस करने लगे, क्रीड़ा स्थलों को धूलि में मिलाने लगे, सभास्थलों को गिराकर सम बनाने लगे, तालाबों को तोड़कर जल बहाने लगे, कोई-कोई कूद-कूद कर

नहाने लगे, ध्वजाओं को उखाड़ने लगे, पताकाओंको फाड़ने लगे, सुवर्ण कलशों को उखाड़ कर पृथ्वी पर पटकने लगे। बात की बात में उन्होंने लंकापुरी को उसी प्रकार विमर्दित कर दिया, जिस प्रकार बहुत से हाथी मदमत्त कमलों से फूले सरोवर को विमर्दित कर देते हैं। उस समय लंका वानरों के द्वारा नखों और दाँतों के द्वारा क्षत विक्षत की हुई सुन्दरी नायिका के समान प्रतीत होती थी। उन वानरों के आयुध नख और दाँत ही थे वे सबके सब बली थे। सब शूरवीर और उत्साही थे। उन्हें राम का आश्रय प्राप्त था, अतः सभी निर्भय और निडर थे, सबके सब उत्साह में भरे थे। "राजा रामचन्द्र की जय" लक्ष्मणपति की जय, वानरेंद्र सुग्रीव की जय" इस प्रकार सब मिलकर जय जयकार करते। उनके भीषण शब्द से दिशायें गूँजने लगीं। राक्षसों के हृदय फटने लगे। सर्वत्र आतंक छा गया। बहुत से घरों में छिपने लगे। वानर लंका के चारों कोनों पर अपने अपने शिविर स्थापित करने लगे। चारों कोनों पर सेना के पड़ाव पड़ गये। सब ओर से लंका को घेर लिया। लुटेरों से घिरी अबला के समान लंका रोती हुई सी प्रतीत होने लगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वानरों ने लंका को घेर लिया तब रावण ने भी राक्षसों को युद्ध करने की आज्ञा दे दी। अब राक्षस भी सेना सजाकर वानरों से भिड़ गये। दोनों ओर से मार काट आरंभ हो गयी। दोनों ओर से प्रहार होने लगे। युद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया।"

छप्पय

नख दाँतनितें काटि करी क्षत लंका नगरी।
मनुमथली नर करिनि नायिका सरिता सगरी॥
इत उत बानर फिरहिं करहिं मिलि धक्कम धक्के।
निरखि कपिन उत्साह छुटे रावनके छक्के॥
उत निशिचर इत भालु कपि, दोनों सेना सजि गईं।
दोनों विजयी बनन हित, करि रव भीषण भिड़ गईं॥

राक्षसों और वानरों का भीषण युद्ध

(६७५)

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ,
धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ॥
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्,
सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥*

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० १८ श्लो०)

छप्पय

पठये कुम्भ निकुम्भ इन्द्रजित् निशिचरपति जब।
समर करन सब चले विभीषण भेद कह्यो सब॥
मेघनाद रण छोड़ि भग्यो माया फैलाई।
नरलीला प्रभु करी गिरे रन दोनों भाई॥
निशिचर दलमहँ हर्ष अति, कपिदल महँ चिन्ता भई।
राम जगे कपि लखन हित, लाये सञ्जीवनि दई॥

जीवन में युद्ध न हो, तो वह जीवन जीवन नहीं। प्राणी किसी से प्रेम भी करना चाहता है, किसी से लड़ना भी चाहता

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! लङ्का पर वानरी सेना का प्रहार देखकर राक्षसराज रावण ने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, अपने पुत्र इन्द्रजीत, प्रहस्त, अतिकाय और विकम्पन आदि सब अपने अधीन राक्षसों को भेजकर फिर कुम्भकरण को भी भेजा।"

है। जैसे हम बिना प्रेम किये नहीं रह सकते, वैसे ही बिना लड़े भी नहीं रह सकते, जो शुद्ध सात्विक प्रकृति के ब्राह्मण हैं, वे सद्गुणों से प्रेम करते हैं और दुर्गुणों से निरन्तर युद्ध करते रहते हैं। जो राजसी क्षत्रिय हैं वे समान और अनुकूल राजाओं से प्रेम करते हैं तथा शत्रु राजाओं को परास्त करने के लिए उनसे युद्ध करते रहते हैं। जो राजा युद्ध का अवसर आने पर भी युद्ध नहीं करता वह राजा नहीं या तो निर्वीर्य है या व्यापारी वैश्य, नहीं तो अपने पदप्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये राजाओं का युद्ध आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है। युद्ध न हो तो पृथ्वी उर्वरा न हो, जन संख्या बढ़ जाय; मनुष्यों में आलस्य प्रमाद छा जाय। शरीर के प्रति ममत्व हो जाय, वीरता नष्ट हो जाय, इस प्रकार राष्ट्र में बहुत से दुर्गुण आ जायँ। इसके विरुद्ध जो राजा निरन्तर युद्ध में ही लगे रहते हैं उनकी प्रजा भी सुखी नहीं रहती। अतः राजा को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने को तथा प्रजा के हित के ही लिये युद्ध करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब लडन्त, भिड़न्त, आरम्भ हुई। प्रथम राक्षसों ने वानरों पर प्रहार किया। वानरों ने भी अपनी अपनी पूँछें उठा उठाकर राक्षसों का विध्वंस करना आरम्भ कर दिया। वे बड़े-बड़े पहाड़ों को उखाड़ लाते और उन्हें लाकर राक्षसों के ऊपर डाल देते, जिससे बहुत से राक्षस चकनाचूर हो जाते, बहुतों के ऊपर वानर चढ़ जाते। बहुत वानर नखों से युद्ध कर रहे थे बहुत से दाँतों से काट रहे थे, बहुत से वृक्ष उखाड़ उखाड़ कर उन्हीं से मार रहे थे। साधारण वानर राक्षस तो इस प्रकार लड़ने लगे। विशिष्टविशिष्ट सेनानायक परस्पर में अपनी अपनी जोड़ी खोजने लगे। दोनों ओर से युद्ध का अपूर्व उत्साह था। एक दूसरे को अपना-अपना

नाम बताते और जब दोनों सहमत हो जाते तो आँख मूँदकर भिड़ जाते, परस्पर प्रहार करने लगते। परस्पर एक दूसरे को पराजित करने का प्रबल प्रयत्न करते इस प्रकार अनेकों वीर परस्पर में द्वंद युद्ध करने लगे। अंगद का इन्द्रजित् के साथ, लक्ष्मणजी का वीरुपाक्ष के साथ, सुग्रीव का प्रघस के साथ, नील का निकुम्भ के साथ, विभीषणका शत्रुघ्न राक्षस के साथ, हनुमान जी का जम्बुमाली के साथ, और विभीषण के मन्त्री सम्पातिका प्रजंघ के साथ घनघोर युद्ध होने लगा। कुछ ही काल में युद्ध ने भीषण रूप धारण कर लिया। राक्षसी सेना—"रावण की जय बोल रही थी और वानरी राम, लक्ष्मण और सुग्रीव के जय-घोष से दिशाओं को गुँजा रही थी। दोनों ओर के वीर परम कुपित थे। दोनों ही ओर वाले विजय के लिये लालायित थे दोनों ही ओर के सैनिक प्राणों का मोह छोड़ कर लड़ रहे थे। दोनों ओर के परस्पर में प्रहार कर रहे थे। चट्ट पट्ट के शब्दों से आकाश मण्डल गूँजने लगा। सायंकाल हो गयी, किन्तु किसी ने विश्राम का नाम तक नहीं लिया। रात्रि में भी घनघोर युद्ध होता रहा।

बालि पुत्र अङ्गद रावण पुत्र इन्द्रजित् से प्राणों का प्रणलगा कर युद्ध कर रहे थे। उन्होंने इन्द्रजित् के रथ को तोड़ दिया सारथी और घोड़ों को मार कर उन्होंने भयङ्कर गर्जना की। बालिपुत्र की गर्जना सुनकर राक्षस डर गये वे इधर-उधर भागने लगे, वानरी सेना को प्रसन्न करते हुए अङ्गदजी ने किलकिला शब्द किया, उत्तर में वानरों ने हर्ष ध्वनि की। इन्द्रजीत क्रोध के कारण काँपने लगा। वह इन्द्र को जीतकर अपने को विश्व-विजयी अजेय वीर मान बैठा था। आज बालिपुत्र से परास्त होकर वह अत्यन्त दुखी हुआ। सम्मुख युद्ध में कुछ भी वश न

चलता देखकर उसने राक्षसी माया का आश्रय लिया। वह तुरन्त आकाश में अन्तर्ध्यान हो गया। वहीं से छिपकर प्रहार करने लगा। उसने सोचा—"इन अल्पवीर्य वानरों को मारने से क्या लाभ सर्वप्रथम मैं राम लक्ष्मण इन दोनों को ही परलोक पठाऊँ इनको ही यमसदन पहुँचाऊं। इनके मरते ही वानर भाग जायँगे। भागते हुए वानरों को राक्षस खा जायँगे। मूल के नष्ट होते ही शाखा प्रशाखा तो स्वयं ही नष्ट हो जाती हैं।" यही सब सोचकर श्रीराम लक्ष्मण को लक्ष्य करके वह अंधेरे में सर्व बाणों को छोड़ने लगा। वे अमोघ बाण आ आकर श्रीराम के श्री अंगों में विधने लगे मर्म स्थानों में पीड़ा करने लगे, लक्ष्मणजी भी उनसे विचलित से हो गये। सम्हलकर श्रीराम ने मुख्य मुख्य वानरों से कहा—"तुम लोग सावधानी से जाकर इस बात का पता लगाओ कि ये बाण आते कहाँ से हैं।"

श्रीराम की आज्ञा पाकर दश प्रधान-प्रधान कपिसेनापति इधर उधर अंधेरे में दौड़े, किन्तु वे निर्णय ही न कर सके, कि बाण आते कहां से हैं। बाण लगते हुए तो दिखाई देते थे, किन्तु उनका उद्गम स्थान और छोड़ने वाले व्यक्ति का पता नहीं चलता, वानर हताश होकर लौट आये। उन माया के द्वारा छोड़े हुए अमोघ बाणों ने श्रीराम लक्ष्मण के अङ्गों को तिल तिल वेध दिया। शरीर में कोई स्थान ऐसा न बचा जहाँ पर बाण न लगे हों श्रीअंग से रक्त निरन्तर वह रहा था उससे रक्त की धारायें उसी प्रकार निकल रहीं थीं जैसे वर्षा में गेरू के पहाड़ के चारों ओर से लाल लाल धारायें बह रही हो। कुछ काल में श्रीरामजी संज्ञा शून्य के समान हो गये। श्रीलक्ष्मणजी चेत रहित से हो गये। उन्हें इस दशा में देखकर इन्द्रजित् ने प्रसन्नता के साथ गर्जना की। उसने छिपे ही छिपे कहा—"मैंने अपने

पिता के शत्रुओं को मार डाला। राक्षस जिनके कारण उद्विग्न बने रहते थे, उन दोनों भाइयों को मार कर मैंने राक्षसों को चिन्ता शून्य बना दिया। अब ये नागपाश में दोनों बँधे हैं। इन्हें देवराज इन्द्र भी छुड़ाने में समर्थ नहीं। कुछ ही काल में ये प्राण शून्य होकर यमसदन सिधार जायँगे। भालु बन्दर भाग जायँगे, राक्षस इन सब को खाकर तृप्त हो जायँगे, मेरे पूजनीय पिता परम प्रसन्न हो जायँगे।"

छिपे छिपे ये सब बातें रावण के पुत्र मेघनाद इन्द्रजित् ने कहीं। उसकी बातों को सुनकर तथा श्रीराम को लक्ष्मण सहित ऐसी दुर्दशा देखकर वानर अत्यन्त ही दुखी हुए। चारों ओर से युद्ध छोड़ छोड़ कर वानर वीर श्रीराम के चारों ओर एकत्रित होने लगे। सुनते ही सुग्रीव, अंगद तुरन्त वहाँ आ गये। हनुमान्, नील, द्विविद, मयन्द, सुषेण, कुमाद आदि मुख्य मुख्य वानर श्रीरामचन्द्र जी को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। सभी के मुख लाल हो रहे थे। सभी रो रहे थे। सभी चिन्तित थे। श्रीराम को लक्ष्मण सहित सर शैयापर सोते देखा सब का साहस शिथिल पड़ गया था। सभी परस्पर में कानाफूसी करने लगे. सभी का धैर्य छूट गया, विजय की आशा विलीन हो गई। सभी अपने को अनाथ सा अनुभव करने लगे। वानरराज सुग्रीव तक रुदन करने लगे, अन्य वानरों की तो बात ही क्या थी।"

उसी समय अंजन पर्वत के समान, काले मेघ के समान राक्षसराज विभीषण गदा लिये हुये वहाँ आ पहुँचे। आते ही उन्होंने श्रीराम लक्ष्मण को इस दशा में देखा। वानरों को रोते देखकर वे चिन्तित हुये। आते ही उन्होंने सब को धैर्य बँधाया सामने ही सुग्रीव रो रहे थे। आते ही विभीषण ने कहा—"कपिराज! यह आप क्या कर रहे हैं। आपकी ऐसी अधीरता

शोभा नहीं देती। आप ही इस प्रकार अनाथों की भाँति रुदन करेंगे तो अन्य सैनिकों की क्या दशा होगी। सोचिये, सब आपके ही अधीन हैं आपके मुख को देखकर तो सब कार्य करते हैं। श्रीराम लक्ष्मण मरे नहीं हैं। न मर ही सकते हैं इनके ऊपर राक्षसी माया से प्रहार किया गया है। मैं राक्षस हूँ। मेरे दुष्ट भतीजे रावण के बड़े पुत्र इन्द्रजीत ने यह प्रहार किया है। उसे माया के बल से देख रहा हूँ। आप उसे देख नहीं सकते, आप धैर्य धारण करें। चिन्ता को छोड़ें, मैं सब उपाय बताऊँगा, कुछ ही काल में आप देखेंगे श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई उठकर खड़े हो जायँग, वे समर में शत्रु सैन्य का संहार करके हम सब को हर्षित करेंगे। देखिये, मेरे तो एकमात्र स्वामी श्रीराम ही हैं। मेरा तो धन, वैभव, राज्य, सुख, ऐश्वर्य सब श्रीराम के ही ऊपर निर्भर है। आप चिन्ता छोड़ें। मैं गर्जता हुआ शत्रु सेना मे अभी प्रवेश करता हूँ। जिससे डरे हुए वानरों में पुन उत्साह आ जाय।" यह कह कर विभीषण जी ने एक भयंकर गर्जना की और अपनी गदा को घुमाते हुए शत्रु सैन्य का संहार करने लगे।

इधर जब इन्द्रजीत ने समझा कि राम लक्ष्मण दोनों मर गये, तब वह विजय के उल्लास में, गर्जना करता हुआ लंकापुरी में पहुँचा। वहाँ जाकर उसने रावण से कहा—"पिताजी! मैं आपके शत्रु उन दोनों राजकुमारों को मार आया। वे मृतक प्रायः ही हो गये हैं। अभी न भी मरे होंगे तो प्रातःकाल तक अवश्य मर जायँगे क्योंकि नागपाश से उन्हें छुड़ाने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। अब उन्हें मरने से कोई भी नहीं बचा सकता।"

इस समाचार के सुनते ही रावण के हर्ष का ठिकाना नहीं

रहा। उसने अपने पुत्र को प्रेमपूर्वक आलिंगन किया तथा उसकी भाँति भाँति से प्रशंसा करके विदा किया। अब तो रावण को विश्वास हो गया, कि सीता मुझे अवश्य वरण कर लेगी। इसीलिये उसने सीताजी की रक्षिका राक्षसियों के बुलाया। सुनते ही त्रिजटा आदि राक्षसियाँ आईं। उनसे रावण बोला—"देखो, सीता जिनके पीछे अकड़ रही थी, उन रामलक्ष्मण को मेरे पुत्र मेघनाद ने मार डाला तुम अभी पुष्पक विमान में वैदेही को बिठाकर आकाश से विफल हुई वानरी सेना का दृश्य दिखाओ मृतक पड़े हुए रामलक्ष्मण के शवों को भो दिखाओ। सीता भली भाँति देख ले, कि इसमें छल नहीं, कपट नहीं, बनावट नहीं। ध्रुवसत्य है अब रामलक्ष्मण को संसार में कोई जिला नहीं सकता।" राक्षसराज रावण की आज्ञा पाकर राक्षसियाँ पुष्पक विमान को अशोक वाटिका में ले गईं और जाकर बोलीं—"जानकी! चल तुझे युद्ध में तेरे पति के दर्शन करा लावें।"

इतना सुनते ही सीताजी प्रसन्नता पूर्वक पुष्पक विमान पर बैठ गयीं पुष्पक उड़ा और वहाँ पहुँचा जहाँ श्रीराम लक्ष्मण मृतक सदृश मूर्छितावस्था में पड़े थे। उनकी ऐसी दुर्दशा देखकर जानकी अत्यन्त ही दुखित हुईं। वे भाँति भाँति से विलाप करने लगीं अपनी छाती को पीट पीटकर रोने लगीं। राम लक्ष्मण के रक्त से सने बाणों से क्षत विक्षत हुए शरीर को देखकर वे अत्यन्त अधीर हुईं। वे पुष्पक विमान से कूदना ही चाहती थीं कि राक्षसियों ने उन्हें पड़क लिया वे मारे शोक के मूर्छित होगई। उसी मूर्छिता वस्था में राक्षसियों ने उन्हें अशोक वाटिका में ले आई और नाना उपचारों से उन्हें चैतन्य करने के लिये प्रयत्न करने लगीं।

इधर वीर वानर श्रीराम लक्ष्मण को बड़ी सावधानी से घेर-

बैठे थे। मुख्य मुख्य सेनापति वानर दशों दिशाओं में खड़े हुए बड़ी तत्परता से वानरी सेना की रक्षा कर रहे थे। उसी समय सदा चैतन्य सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीराम चैतन्य हो गये। वे अपनी इच्छा से ही अचैतन्यवत् बनाये और स्वेच्छा से ही चैतन्य के समान हो गये। उन्होंने सम्मुख रक्त से सने बाणों से विद्ध अपने अनुज लक्ष्मण को मूर्छितावस्था में देखा। लक्ष्मण की ऐसी दुर्दशा देखकर सदा प्रसन्न श्रीराम परम दुखी हुए। वे भाँति भाँति से विलाप करने लगे—"हाय! लक्ष्मण को गँवाकर यदि मैंने सीता को पाया, तो क्या पाया। लक्ष्मण के बिना सीता मुझे मिली हो तो उससे मुझे प्रसन्नता न होगी। लक्ष्मण के बिना मैं अवध लौटकर कैसे जा सकता हूँ। लक्ष्मण के रहित जब मुझे मेरी माँ कौशल्या देखेगी तो उसका पहिला प्रश्न यही होगा, मेरा प्यारा लक्ष्मण कहाँ है? तब मैं उसे क्या उत्तर दूँगा। माता सुमित्रा जब मेरा आकर सिर सूँघेगी और चकित दृष्टि से मेरे पीछे अपने प्यारे पुत्र लक्ष्मण को निहारेंगी, तो उस समय मैं जीवित कैसे रहूँगा। जो मेरे सम्मुख आने में लजाती है, जिसका मैंने मुँहतक नहीं देखा है, वह लक्ष्मण की प्यारी पत्नी उर्मिला मेरे सम्मुख आवेगी और सीता से संकेत द्वारा अपने पति की बात पूँछेगी तो सीता उसे क्या उत्तर देगी। फूल के समान सुकुमारी राजकुमारी को मैं किन शब्दों में सान्त्वना दूँगा। शत्रुघ्न जब मेरे पैर छूकर अपने भाई के पैर छूने बढ़ेगा और मेरे पीछे लक्ष्मण को न देखेगा, तो मैं किस मुख से उससे कहूँगा, कि स्त्री के पीछे मैं अपने सखा, सचिव, सेवक, सहायक, सर्वस्व सौमित्र की बलि चढ़ा आया। हाय! लक्ष्मण के बिना मैं भरत का आलिंगन कैसे कर सकूँगा। भरत जब मेरा आलिंगन पाकर अपने पैरों में लक्ष्मण को पड़ा न देखेगा तब तुरन्त यही

पूछेगा—"मेरा गुणों में श्रेष्ठ भाई कहाँ है ? तब मैं क्या कहूँगा, कैसे उसे समझाऊँगा ? इसलिये अब मैं न तो युद्ध करूँगा, न जानकी के छुड़ाने का ही प्रयत्न करूँगा। रावण को तो मुझे मारना ही है, क्योंकि लंका का राज्य मैं विभीषण को दे चुका हूँ। रावण को मारकर मैं स्वयं भी मर जाऊँगा। चिता बनाकर यहीं लंका में अपने भाई के शव के साथ जल जाऊँगा। लक्ष्मण के बिना मैं जीवित रह नहीं सकता। उसके बिना मेरा अस्तित्व नहीं, निर्वाह नहीं। वह मेरा बाहरी प्राण है।" इस प्रकार श्रीराम जी अत्यन्त ही अधीर होकर बालकों की भाँति फूट फूटकर रोने लगे, बड़े करुण शब्दों में विलाप करने लगे।

श्रीरामचन्द्र जी का ऐसा हृदयद्रावी विलाप सुनकर सुषेण नामक वानर बोला—"राघव ! आप इतने चिन्तित क्यों होते हैं, जब हम आपके सेवक समुपस्थित हैं, तब चिन्ता करने की कौन सी बात हैं। मैंने देवासुर संग्राम देखा था। उस समय देवता जब घायल हो जाते थे, तब बृहस्पति जी विशल्यकरणी औषधि लगाकर सबको शल्यरहित निरोग कर देते थे। सञ्जीवनी बूटी से मृतकों को जिला देते थे। यदि सूर्योदय से पूर्व वे दोनों दिव्योषधियाँ आ जायँ और उनका प्रयोग लक्ष्मण जी के अंगों पर किया जाय तो वे निश्चय निरोग हो सकते हैं। कोई ऐसा बली हो जो मंदराचल पर्वत के उस शिखर से इन दोनों औषधियों को उखाड़ लाये।"

यह सुनकर सुग्रीवजी बोले—"पवन तनय हनुमान् के अतिरिक्त इतने साहस के कार्य को कौन कर सकता है। वे ही इन दोनों महौषधियों को लाकर हमें संकट से बचा सकते हैं।"

हनुमान् जी ने कहा—"मेरे लिये कोई बात तो बड़ी है नहीं। मैं क्षण भर में औषधियों को ला सकता हूँ, किन्तु मैं उन्हें पहिचानता नहीं।"

सुषेण ने कहा—"अजी, इसमें पहिचानने की कौन सी बात है। हीरा तो अपनी प्रभा से ही पहिचाना जा सकता है। वे औषधियाँ अग्नि की शिखा की भाँति जलती रहती हैं। पापी दुराचारी को देखकर वे छिप जाती हैं। तुम पवन के पुत्र हो, राम भक्त हो, धर्मात्मा और यशस्वी हो। तुम्हें देखकर तो वे स्वयं ही प्रसन्न हो जायँगी।"

हनुमान् जी ने कहा—"अच्छी बात है, यदि ऐसा है, तो मैं जाता हूँ और जाकर अभी उन औषधियों को लाता हूँ।" यह कहकर पवन कुमार उड़े और क्षण भर में मंदराचल के उस शिखर पर पहुँच गये, जिसका पता वैद्यराज सुषेण ने बताया था। वहाँ हनुमान् जी ने देखा बहुत सी औषधियाँ जल रही हैं। कोई सुवर्ण के समान, कोई रजत के समान, कोई ताँबे के समान और कोई अग्नि शिखा के समान प्रज्वलित हो रही हैं। उन्हें देखकर अञ्जन्यानन्दवर्धन हनुमान् जी चक्कर में पड़ गये। वे सोचने लगे—"मैंने बड़ी भूल की सुषेण को भी अपनी पीठ पर चढ़ा लाता तो वह यहाँ खोजकर औषधि चुन लेता। अब यदि मैं १०।५ ऊखाड़ कर ले भी गया और सुषेण वैद्य ने कह दिया—"ये नहीं हैं, तब तो मेरा आना ही व्यर्थ हो जायगा। इस आने जाने में संभव है सूर्योदय हो जाय, फिर लक्ष्मण जी चैतन्य न हो सकें। अब क्या करना चाहिये।" कुछ देर सोचकर हनुमान् जी ने निश्चय किया—"अब सोचने विचारने का अवसर नहीं है। एक काम करूँ इस पूरे पर्वत को ही उखाड़ ले चलूँ। इसमें जो भी औषधियाँ होंगी सुषेण स्वयं उखाड़ लेगा।" ऐसा निश्चय करके हनुमान जी ने सम्पूर्ण पर्वत ही उसी प्रकार जड़ से उखाड़ लिया जिस प्रकार बालक वर्षा में उत्पन्न होने वाले छत्रक (कुकुरमुत्ता) को उखाड़ लेते हैं। पर्वत को लेकर पवन पुत्र आकाश में उड़े।

अर्धरात्रि बीत चुकी थी। अरुणोदय होने में अभी विलम्ब था, हनुमान् जी ने अयोध्यापुरी के ऊपर होकर उमड़ते हुए जा रहे थे। वेग से उड़ने के कारण उन्हें यह भान भी नहीं होता था, कि मैं कहाँ होकर उड़ रहा हूँ। रामानुज श्रीभरत राम विरह में सोते नहीं थे। वे राम राम रटते हुए सम्पूर्ण रात्रि को ऐसे ही बैठे बैठे बिता देते थे। कभी बैठे बैठे ही झपकियाँ ले लेते थे। अर्धरात्रि के अनन्तर वे उठ जाते और चरण पादुकाओं की परिचर्या में लग जाते। उन्होंने सुन लिया था, सीताजी को रावण हर ले गया है और श्रीराम बानर भालुओं को एकत्रित करके राक्षसों पर चढ़ाई कर रहे हैं। उनकी उत्कट इच्छा थी श्रीराम की आज्ञा हो तो सेना सजाकर मैं भी समर में सम्मिलित होऊँ, किन्तु राम की आज्ञा नहीं थी। सेवक धर्म अत्यन्त ही कठिन होता है सेवक को मरने तक की स्वतंत्रता नहीं। वह स्वेच्छा से प्राणों का उत्सर्ग भी नहीं कर सकता। भरतजी ने सोचा मैं श्रीराम की इच्छा के बिना गया और उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम मेरे अवध के राज्य को मेरी आज्ञा से बिना छोड़कर क्यों चले आये। तो मैं क्या उत्तर दूँगा।" इन्हीं सब बातों को सोचकर भरतजी मन मसोस कर रह गये। इच्छा होने पर भी लंका नहीं गये। उन्हें विश्वास था, श्रीराम के सम्मुख रावण क्या वस्तु है। नरनाट्य दिखाने के लिये उन्होंने वानरी सेना एकत्रित की है, नहीं तो उन सर्वसमर्थ सच्चिदानन्द की वानर क्या सहायता कर सकते हैं। इसी लिये वे निश्चिन्त थे। आज सहसा लंका की ओर किसी व्यक्ति को पहाड़ ले जाते देखकर उन्हें शंका हुई, कहीं यह राक्षस तो नहीं है। वानरों को मारने के लिये तो पहाड़ नहीं ले जा रहा है। इस शंका के उत्पन्न होते ही उन्होंने कुतूहलवश समीप में रखे एक बिना फर के बाण को मारा। बाण के लगते ही हनुमान् जी

सीताराम सीताराम कहकर भूमि पर गिर पड़े। उनके हाथ से पर्वत छूटना ही चाहता था, कि उन्होंने झटके से उसे सम्हाल लिया।"

सीताराम सीताराम की कर्ण प्रिय श्रुतमधुर ध्वनि सुनकर चौंक पड़े। वे डर गये, अरे, यह तो कोई रामभक्त है। शाघ्रता से ये तुरन्त दौड़कर हनुमानजी के समीप आये बोले—"महानुभाव! आप कौन हैं?"

हनुमान्‌जी ने कहा—"मैं पवन का पुत्र हूँ। हनुमान् मेरा नाम है। श्रीराम का मैं अनुचर हूँ। राम की सेवा के निमित्त मैं पर्वत लिये जा रहा हूँ।

राम के सेवक का शब्द सुनते ही रामानुरागी भरत रो पड़े वे पवन तनय के पैरों की ओर दौड़े। हनुमान्‌जी ने उन्हें प्रेम से छाती से चिपटा लिया। भरत जी रोते रोते बोले—"हाय! भैया तुम ही बड़भागी हो, जो राम के काज कर रहे हो। मैं तो इतना अधम भाग्यहीन हूँ कि सेवा से तो वञ्चित रह ही रहा हूँ। उलटे मैंने राम सेवा में विघ्न उपस्थित किया। राम के सेवक का अपराध किया।"

इन सुन्दर वीणा विनिन्दित शब्दों को सुनकर हनुमान्‌जी चौंक पड़े। वे सोचने लगे आकृत प्रकृतिशील स्वभाव में ये मेरे स्वामी के सदृश हैं। हो न हो ये रामानुज श्रीभरत जी हैं।"

हनुमान् जी ने कहा—"प्रभो! आप रामानुज भरत तो नहीं हैं?"

भरत जी ने कहा—"भैया, मैं ही भाग्यहीन भरत हूँ। क्या श्रीराम कभी मुझे याद करते हैं। तुम मेरा नाम कैसे जानते हो भैया?"

यह सुनकर हनुमान् जी रो पड़े। वे बोले—"धन्य हैं आपको, मैंने जैसे शील आपका सुना था, उससे सहस्रों गुणा देखा। प्रभो! अब मैं क्या बताऊँ श्रीराम आपको किस प्रकार स्मरण करते हैं। वे सोते समय भी आपका नाम लेकर चौंक पड़ते हैं। वे स्वाँस स्वाँस पर आपका नाम जपते रहते हैं। वे आपके गुणों का गान करते करते अघाते नहीं प्रसंग हो न हो आपकी चर्चा वे अवश्य करेंगे। उन्हें न सीताहरण का शोक है न बनवास का दुःख, उन्हें एक मात्र आपकी चिन्ता है।"

भरत जी ने गद्गद् वाणी से कहा—"केशरीनन्दन मुझे से भूल हो गई, क्षमा करना भैया! मैंने अनजान में बिना फरका बाण चला दिया, किन्तु मुझे संदेह हो रहा है, कि राम सेवक का तो कभी पराभव हो नहीं सकता उस पर किसी के प्रहार का प्रभाव नहीं पड़ता। तुम गिर कैसे गये?"

हनुमान्जी ने कहा—"प्रभो! स्वामी के द्वारा सेवक का पराभव होना कोई पराभव नहीं। वह उसके लिये परम सौभाग्य की बात है। प्रभुओं की प्रत्येक चेष्टा में सेवकों का हित निहित रहता है। यह मेरा अभिमान और पाप का फल है। समर में जब निशाचर पूरी शक्ति लगाकर हम पर प्रहार करते तो श्रीराम बार बार कहते, न हुआ मेरा भैया भरत। वह होता तो इन राक्षसों के दाँत खट्टे कर देता। एक बार सुना, दो बार सुना, बार बार ये ही बातें सुनकर मेरे मन में संदेह हुआ—"हम कितना पुरुषार्थ करते हैं, प्रण से युद्ध करते हैं फिर भी श्रीराम हमारी प्रशंसा नहीं करते, भरत के ही गुण गाते रहते हैं। भरत क्या मुझसे भी अधिक बली होंगे, मैं पवन का पुत्र हूँ समर में अजय हूँ। सब कुछ करने में समर्थ हूँ क्या भरत मेरे समान हो सकते हैं।" बस प्रभो! मेरे उसी पाप का यह फल है सर्वान्तर्यामी

प्रभु ने मेरे उसी अभिमान को चकना चूर करने यहाँ भेजा था। आज आपकी शक्ति देखकर मैं विस्मित हुआ। इसीलिए श्रीराम बार बार आपकी प्रशंसा करते रहते हैं।"

इतने में समाचार सुनते ही कौशल्या-सुमित्रा और कैकेयी वहाँ आ गयीं कौशल्या ने पूछा—"हनुमान! कहो मेरे बच्चे कुशल से हैं न? मेरे लक्ष्मण के क्या समाचार हैं।"

हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा—"माताजी! श्रीराम कुशल हैं। लक्ष्मण शरशैया पर मूर्छित पड़े हैं उन्हीं के लिए मैं यह ओषधि लिये जा रहा हूँ।"

लक्ष्मण मूर्छित हैं यह सुनते ही माता चौंक पड़ीं। वे बोलीं "हनुमान! देख, राम से कह देना यदि लक्ष्मण अच्छा न हो तो उसकी अयोध्या आने की कोई आवश्यकता नहीं। लक्ष्मण के बिना मैं राम को नहीं देखना चाहती।"

इतना सुनते ही सुमित्रा ने कहा—"हनुमान देखो भैया! मैं तेरे पैर पड़ती हूँ। तू इस बात को कभी मत कहना। महारानी ने यह बात स्नेह के वश में होकर कही है। राम युग युग जीवें। राम राजा हैं लक्ष्मण सेवक है। युद्ध में असंख्यों सैनिक सेवक मरते हैं। राम के काज में लक्ष्मण का शरीर जाय इससे बढ़कर उसका और क्या सौभाग्य होगा। सेवक के पीछे स्वामी थोड़े ही मरते हैं।"

यह सुनकर हनुमानजी का हृदय हरा हो गया, वे गद् गद् कंठ से बोले—"ये वचन श्रीराम और लक्ष्मण की माताओं के अनुरूप ही है, माँ! आप चिन्ता न करें। श्रीराम के साथ लक्ष्मणजी को आप शीघ्र ही निरोग देखेंगी। श्रीराम तो नर-लीला कर रहे हैं। वे अपने सेवकों का सम्मान बढ़ा रहे हैं। उन्हें

मैया का महत्व बता रहे हैं। इस समय देर हो रही है मुझे जाने की आज्ञा दो।"

हनुमानजी के ऐसे वचन सुनकर भरतजी ने कहा—"हनुमान! यदि देर हो गई हो, तो तुम मेरे वाण पर बैठ जाओ मैं तुम्हें अभी लंका पहुँचाता हूँ। मैं पर्वत सहित तुम्हें क्षण भर में समुद्र पार पहुँचा दूँगा।"

हनुमानजी तो भरतजी के बल को देख ही चुके थे, अतः विनीत भाव से बोले—"प्रभो! आप आशीर्वाद दें, मैं आपके वाण के समान ही वेग से जाऊँगा।" यह कहकर सबको प्रणाम करके हनुमानजी चल दिये।

हनुमानजी वायु वेग के समान उड़े जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें गरुड़जी उड़ते हुए मिले। गरुड़जी ने देखा यह मेरे समान वेग से उड़ने वाला कौन पक्षी है। लाओ, मैं इसे अपने पंजों में दबाकर खा लूँ।" यह सोचकर गरुड़जी हनुमानजी पर झपटे। हनुमानजी तो पहिचान ही गये, कि ये गरुड़जी हैं, अतः उन्होंने चिल्लाकर कहा—"जय जय श्रीसीताराम, जय जय श्रीसीताराम" श्रीसीताराम का नाम सुनकर गरुड़जी ने कहा—"कौन हनुमान्! अरे, भैया तुम यह पहाड़ सा क्या लिये जा रहे हो?"

हनुमान्जी ने कहा—"पक्षिराज! युद्ध में रावण सुत इन्द्रजीत ने रामानुज लक्ष्मण को नागवाणों से वेध दिया। कद्रु के क्रूर कुमारों ने वाण का रूप रख कर लक्ष्मण को कस रक्खा है। वे विमूर्छित बने हुये हैं। उन्हीं के लिये सुषेण के कहने से मैं औषधियों वाले इस पर्वत को लिये जा रहा हूँ।"

गरुड़जी ने कहा—"अरे नागों का इतना साहस! चलो, मैं

भी चलता हूँ। नाग तो मेरे नाम को सुनकर भाग जाते हैं। मैं लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त करके यश लाभ करूँगा। राम सर्वसमर्थ हैं। वे जो चाहें सो कर सकते हैं, किन्तु फिर भी वे नरलीला कर रहे हैं। चलो, मैं भी अपने जीवन को रामकाज करके सार्थक बनाऊँगा।" यह कहकर गरुड़जी भी हनुमानजी के साथ चल दिये। दोनों आकाश में साथ ही साथ उड़ते हुए सूर्य चन्द्र के समान शोभित हुए।

गरुड़जी और हनुमानजी क्षण भर में लंका पुरी में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ लक्ष्मणजी चेतना शून्य हुए पड़े थे और वानर उन्हें घेरे हुए रुदन कर रहे थे। गरुड़जी को देखकर जितने नाग बाण का रूप रखकर लक्ष्मण तथा श्रीराम के अंगों में लिपटे हुए थे, तुरन्त भाग गये। उनके भागते ही सुषेण ने विशल्य करणी संजीवनी का प्रयोग किया। उसके स्पर्श मात्र से श्रीराम लक्ष्मण निरोग स्वस्थ हृष्ट पुष्ट और पहिले से भी अधिक सुन्दर और बली बन गये। दोनों भाइयों को स्वस्थ देखकर वानरी सेना में प्रसन्नता की लहर फैल गयी। सभी आनन्द के साथ नृत्य करने लगे। एक दूसरे का आलिङ्गन करने लगे। भाँति-भाँति से प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

जब रावण ने श्रीराम लक्ष्मण के स्वस्थ होने का समाचार सुना, तो वह अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने अब वानरी सेना पर प्रहार करने के लिये प्रमुख-प्रमुख वीरों को भेजना आरम्भ किया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जानकीजी ने जब त्रिजटा के द्वारा श्रीराम लक्ष्मणजी की मूर्छाभंग होने की बात सुनी तो वे अत्यन्त सुखी हुईं। उन्हें आशा बँध गई श्रीराम अवश्य ही रावण को मार कर मेरा उद्धार करेंगे।"

छप्पय

आये विनतातनय नाग सब तनुतैं भागे ।
सूँघि सँजीवनि लखन उठे जनु सोवत जागे ॥
राम लखन लखि स्वस्थ भये कपिप्रमुदित भारी ।
सोचें माया व्यर्थ राम पै भई हमारी ॥
मायापति पै निशाचर करिकें माया नहिं डरत ।
जनु नानीके ब्याह की, सुता पुत्र बातें करत ॥

रावण के मुख्य-मुख्य वीरों का संहार

(६७६)

तां यातुधानपृतनामसिशूलचाप—
प्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद
नीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥*

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० १९ श्लो०)

छप्पय

चले राम रनमाँहि सङ्ग सुग्रीव सहायक।
जाम्बवान्, नल, नील, पनस अङ्गद सब नायक॥
धनुष, प्रास, शर, शक्तियुक्त रावन की सैना।
पकरि पकरि कपि भालु चबावैं मन्हुँ चबैना॥
सरं सरं शर समर महँ, चलें चपत हूँ चटाचट।
जहँ देखो तहँ ह्वै रही, पटका पटकी खटापट॥

सेवक का धर्म है, स्वामी के निमित्त अपने शरीर का उत्सर्ग कर दे। जिस सेवक को शरीर का मोह है वह सेवा क्या करेगा,

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! राक्षसों की वह सेना तलवार, शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, बाण, तोमर और खड्ग आदि आयुधों के कारण दुर्गम थी, उससे लड़ने के लिये श्रीरामचन्द्र जी सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान् गन्धमादन, नील, अङ्गद, जाम्बवान् और पानस आदि वीरों के सहित चले।

जिस स्वामी को सेवकों के सुख और निर्वाह की चिन्ता नहीं उस स्वामी के सेवक सेवा ही क्या करेंगे। स्वामी और सेवक का सम्बन्ध सनातन है। अपवाद तो सभी में होते हैं, किन्तु जैसे पति पत्नी का सम्बन्ध पूर्वकाल में कभी नहीं छूटता था, उसी प्रकार स्वामी सेवक का सम्बन्ध भी स्थायी समझा जाता था। सैनिक अपने स्वामी की विजय के लिए सभी कुछ करते हैं। वे अत्यन्त उल्लास के साथ शरीर की तनिक भी चिन्ता न करके युद्ध में जाते और सिर कटाने पर भी केवल धड़ से युद्ध करते रहते। इसी का नाम वीरता है। जितनी वीरता वानरों में थी उतनी ही राक्षसों में थी। उत्साह, पराक्रम युद्धोल्लास दोनों दलों में समान ही था। अन्तर इतना ही था। इधर न्याय था उधर अन्याय, उधर काम था, इधर राम। जिधर राम हैं उधर ही विश्राम है, जिधर धर्म है उधर ही विजय।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीराम और लक्ष्मण मेघनाद की निर्मित माया से मुक्त होकर नीरोग और स्वस्थ बन गये, तो वानर हर्ष में भर कर किलकिला शब्द करने लगे। एक दूसरे से मिलने लगे। श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीव की जय बोलने लगे। उनके हर्षयुक्त कोलाहल से दशों दिशायें गूँज उठीं। रावण ने भी जब कपियों का आनन्दवर्धक शब्द सुना तो वह अपने सैनिक तथा सचिवों से कहने लगा—"वानर! इतना अधिक कोलाहल क्यों कर रहे हैं। इस शब्द में तो प्रसन्नता भरी हुई है। यह तो आनन्द का उत्साहपूर्ण कलरव है। वानर तो श्रीराम लक्ष्मण के मूर्छित होने से दुखी थे, सहसा इन्हें किसी बात से इतनी प्रसन्नता हो गई है।" ऐसा सोचकर उसने चारों से कहा—"तुम जाकर राम की सेना में पता लगाओ क्या बात है।"

रावण की आज्ञा पाकर गुप्तचर परकोटों को लाँघकर श्रीराम-चन्द्रजी के दल में पहुँचे जिसका पालन सुग्रीव कर रहे थे। उन्होंने जब सिंह के समान स्वस्थ और नीरोग श्रीराम लक्ष्मण को देखा, तो वे परम विस्मित हुए। चुपके से वहाँ से लौटकर उन्होंने सब समाचार राक्षसराज रावण को सुनाया। सुनते ही रावण का मुख फक्क पड़ गया। उसके मन में दुःख हुआ। चिन्ता, ग्लानि, मनस्ताप के कारण उसका मुख मुरझा गया। उस वरदान से प्राप्त नागास्त्रों पर बड़ा विश्वास था, किन्तु आज असमय में वे सब अस्त्र असफल हो गये, अतः उसकी आशा पर पानी फिर गया। फिर भी उसने साहस को नहीं छोड़ा। अपने ख्यातनामा वीर योद्धा धूम्राक्ष से बोला—"मंत्रिप्रवर! तुम संसार में महाबली नाम से प्रसिद्ध हो। बल में तुम मुझसे किसी प्रकार न्यून नहीं हो। तुम अभी समर में सेना सहित जाओ सुग्रीव और उनके साथी सैनिकों को मार आओ। राम लक्ष्मण को भी यमपुर पठा दो। इन लंका के कंटकों को मारकर समुद्र में डुबा दो। जो क्षमा याचना करें उन्हें छोड़ दो, समुद्र के ऊपर बँधे सेतु को तोड़ दो।"

अपने स्वामी से सम्मान पाकर धूम्राक्ष सेना सजाकर समर-भूमि की ओर चला। वानर तो प्रतीक्षा में ही बैठे थे। निशाचरों की बलवती सेना को आते देखकर सभी उसकी ओर दौड़े। कोई वृक्ष उखाड़ने लगा कोई मुक्का तानने लगा, कोई दाँतों को किट-किटाने लगा, कोई नखों को पैनाने लगा। कोई पर्वतों को फोड़ने लगा। राक्षसों ने आते ही अस्त्र शस्त्रों से वानरों पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया। वानर तो वानर ही ठहरे। बड़े-बड़े पत्थरों को उठाकर लाते और राक्षसों के ऊपर फेंक दें। राक्षस उनके नीचे दबकर तड़पने लगते। इतने में ही धूम्राक्ष ने

कहा—"मैं लंका में महावीर के नाम से प्रसिद्ध हूँ, आज मैं राम लक्ष्मण को मार दूँगा, सुग्रीव को यमपुर पठा दूँगा। मुझे तो उन लोगों से युद्ध करना है, तुम साधारण वानर भालु अपने प्राणों को क्यों गँवाते हो। मुझे तुम क्षुद्रों पर बाण छोड़ने में दया आती है।"

यह सुनकर हनुमान् जी बोले—"तुम्हें राक्षसों के अनुचर महावीर कहते हैं, मुझे भी श्रीराम के अनुचर महावीर के ही नाम से पुकारते हैं। आज हमारे तेरे दो दो हाथ हो जायँ।" इतना सुनते ही धूम्राक्ष ने हनुमान् पर कई बाण छोड़े। पवन तनय भी सावधान थे। उनके हाथ में बड़े से पहाड़ का एक शिखर था उसे उठाकर उन्होंने जो धूम्राक्ष की ओर मारा तो भाग्य से धूम्राक्ष तो बच गया। किन्तु उसका रथ टूट गया, सारथी और घोड़े मर गये। वह रथ से कूद कर पृथिवी में आ गया। अब तो दोनों में होने लगी गुत्थमगुत्था। एक कँटीली गदा धूम्राक्ष ने हनुमानजी के सिर पर मारी। हनुमानजी भी कुछ घाटेमें नहीं थे। उन्होंने जो एक पहाड़ उठा कर धूम्राक्ष की छाती पर मारा तो वह उसी प्रकार पिच गया जिस प्रकार पकापेंचू पत्थर के गिरने से पिच जाता है। उसकी आँखें निकल आईं और वह उसी क्षण मर गया

धूम्राक्ष के मरते ही वानर किलकिला शब्द करने लगे। चारों ओर से पवनतनय को घेरकर उनका अभिनन्दन करने लगे। कोई उन्हें गले लगाने लगे। कोई उन्हें पीठपर चढ़ाने लगे, कोई उनकी पूँछ को सूँघने लगे। हनुमान् जी क्लान्त हो गये थे अतः अपने पसीने को पोंछते हुए इधर उधर घूमने लगे।

इधर जब रावण ने धूम्राक्ष के मरने का समाचर सुना, तो वह अत्यन्त ही दुखित हुआ। उसे विश्वास होने लगा, कि अब

सम्भव है मैं वानरों से जीत न सकूँ।" किन्तु शत्रु के सम्मुख सिर झुकाना तो दशानन सीखा नहीं। इसलिए उसने अपने एक दूसरे महामन्त्री वज्रदंष्ट्र से कहा—"वीरवर! तुम जाओ और इन वानरों को उनकी अविनय का फल चखाओ, महाबली धूम्राक्ष के वध का बदला तुम ही लेने में समर्थ हो।"

इतना सुनते ही क्रोधी वज्रदंष्ट्र अपने बड़े बड़े तीखे दाँतों को पीसता हुआ सेना सजा कर वानरी सेना में घुसा। उसे आता देखकर हनुमानजी उसकी ओर झपटे। हनुमानजी को झपटते देखकर अंगद जी बोले—"देखिये, हनुमानजी जोड़ी न्यायानुकूल होनी चाहिये। धूम्राक्ष तो आपके बराबर था। यह वज्रदंष्ट्र अभी बच्चा है मेरी जोड़ी का है। कुछ हमें भी तो करने दीजिये। सबको आप ही मार डालेंगे, तो हम यहाँ क्या युद्ध देखने आये हैं। आप थके हुए हैं, तनिक विश्राम कीजिये। इस पतंगे को मैं पीस डालूँगा।"

अंगदजी की बात सुनकर हँसते हुए हनुमानजी बोले—"अच्छी बात है कुमार! तुम ही अपने हाथों की खुजली मिटा लो। तुम ही इसे यमसदन पठा दो। तब तक मैं दंड बैठक ही लगा लूँ।"

इतना सुनते ही अंगदजी वज्रदंष्ट्र के सामने आये। दोनों ही युवक थे दोनों के शरीर में नया रक्त था, दोनों ही बलवान् थे दोनों ही स्वामिभक्त थे, दोनों ही विजय के इच्छुक थे। अब क्या था होने लगी भिड़न्त। वह उसको मारता वह उसको पछाड़ता। वह उसे गिराना चाहता था वह उसके ऊपर चढ़ना चाहता था। राक्षस के पास तो भाँति-भाँतिके वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र थे, किन्तु अंगदजी के अस्त्र तो पादप और पर्वत खण्ड थे। उन्होंने एक वृक्ष को उखाड़ वज्रदंष्ट्रपर प्रहार किया,

उसके वह घायल तो हो गया, किन्तु मरा नहीं। इस पर वालि पुत्र अत्यन्त कुपित हुए। बड़े वेग से उस पर पत्थर फेंककर उसके हाथ से उसकी तलवार छीन ली। तलवार के छिनते ही वह गदा लेकर कुमार अंगद की ओर दौड़ा ज्योंही उसने गदा का प्रहार किया, त्योंही अंगदजी ने उसके सिर को धड़से काट दिया। उसका धड़से पृथक सिर पृथिवी पर ऐसा ही प्रतीत होता था मानों काला हिनमाना (तरबूजा) टूटा हुआ पड़ा हो।

रावण ने जब बज्रदंष्ट्र के मारने का समाचार सुना तो बहुत से अपराजित सैनिकों के साथ अकम्पन को भेजा। अकम्पन कैसा भी कष्ट क्यों न आ जाय कभी काँपता ही नहीं था, किन्तु कपियों के आगे उसकी भी सिटिल्ली भूल गई। उसे भी वानरों ने बुद्ध बना लिया। अंगदजी उसे भी मारना चाहते थे। वे वज्र दंष्ट्र से भिड़ने के कारण थक गये थे, किन्तु उनका उत्साह कम नहीं हुआ था। हनुमानजी ने कहा—"कुमार! अपनी बात स्मरण करो। तुम बज्रदंष्ट्र को मार चुके, अब मेरी पारी है। तुम तनिक विश्राम कर लो। इसे मैं यमसदन का प्रवेश पत्र थमाये देता हूँ इसमें विलम्ब न होगा।"

पवनतनय की यह बात सुनकर कुमार अंगद हँस पड़े। वे हनुमानजी के कहने से दूसरी ओर हट गये। महाबली हनुमान एक अत्यन्त पुष्पित पादप को जड़ से उखाड़ लाये उसे घुमाकर अकम्पन के सिर में तड़ाक से मारा। उसके लगते ही अकम्पन मूर्छित हो गया। उसे उसी दशा में छोड़कर हनुमानजी अन्य राक्षसों का भी संहार करने लगे। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। उसी समय अकम्पन की मूर्छा जागी, वह पुनः आकर पवन पुत्र से भिड़ गया। तो हनुमान्जी अत्यन्त कुपित

हुए। एक पहाड़ लाकर उसके सिर पर पटक दिया वह उसके नीचे दब कर मर गया। यह देखकर राक्षसी सेना सिर पर पैर रखकर भागी। राक्षसों को भागते देखकर वानर हँसने लगे और किलकिला शब्द करने लगे।"

रावण ने जब अकम्पनका भी वीरगति का समाचार सुना तो वह परम-कुपित हुआ! अबके उसने अपने प्रधान सेनापति प्रहस्त को युद्ध करने भेजा विशालकाय प्रहस्त को देखकर सभी वानर विस्मित हुए। श्रीरामचन्द्रजी ने भी विभीषण से उसका परिचय पूछा। विभीषण ने बताया यह रावण का बॉया हाथ है। इसी के बलपर लंका का सैन्य संचालन होता है। इसके मारे जाने से रावण का एक हाथ कट जायगा। इतना सुनते ही वानर प्रहस्त के ऊपर टूट पड़े। प्रहस्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वह बहुत देर तक वीरतापूर्वक युद्ध करता रहा। उसके युद्ध को देखकर वानर घबरा गये महाशिल्पी नील ने जब देखा यह दुष्ट तो वानरों का नाश ही कर डालेगा, तो वे उसके आगे आये अपने सम्मुख महाबली नीलको देखकर प्रहस्त ने गर्जना की और उन्हें बाणों से वेधा। नील के शरीर से रक्त उसी प्रकार बह रहा था जिस प्रकार गेरूके पर्वत से पानी बहता है। बाणों से विंधे नील फूली हुई लाल कन्नेर के सदृश दिखाई देते थे। वे सम्पूर्ण रक्त से लथपथ हो गये थे। उनका सुवर्ण वर्ण के बाल रक्तवर्ण के बन गये थे। रक्त को देख कर उनका क्रोध अत्याधिक बढ़ गया था। उन्होंने रोष में भरकर एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़कर प्रहस्त के सिर में मारा और घोर गर्जना की। वृक्ष की चोट से प्रहस्त का सिर फट गया, वह कटे वृक्ष के समान पृथिवी पर गिर पड़ा और कुछ ही क्षणों में चेतना शून्य हो गया। सेनापति के मरते ही राक्षसी सेना भाग खड़ी हुई दशों-

दिशाओं में बिना गड़रिया के भेड़ों के समान सैनिक इधर उधर दौड़ रहे थे। वानर उनका संहार करते थे और हँसते थे।

रावण ने जब अपने प्रधान सेनापति प्रहस्त की मृत्यु की बात सुनी, तो वह अत्यन्त कुपित हुआ। दुःख के कारण उसके ओठ फड़क रहे थे, वह दाँतों से अधरों को काट रहा था लाल लाल आँखों को फाड़कर वह उत्तर की ही ओर देख रहा था। मानों समस्त वानरी सेना को वह अपने क्रोध से जला देगा। उसने गर्जकर कहा—"अब तक मैं इन भालु वानरों को निर्वीर्य समझता था, इसीलिये उनकी उपेक्षा करता रहा। अब जब इन्होंने मेरे प्रधान प्रधान सचिव और सेनापतियों को मार डाला है, तो मैं इनको क्षमा नहीं कर सकता। अब मैं स्वयं ही शस्त्र लेकर समर में जाऊँगा। इन उद्धतों को इनकी अविनय और उद्धता का फल चखाऊँगा। मेरा रथ तैयार किया जाय, हाथी पर सिंहासन सजाया जाय, साथ चलने की चतुरंगिनी सेना सुसज्जित हो। मेरे प्रधान अङ्ग रक्षक साथ चलें। यह कहकर राक्षस ने सेनानायक की ओर निहारा। हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए सेनानायक ने विनीत भाव से कहा—"देव! सेना समर के लिये सदा सुसज्जित ही रहती है। फिर भी मैं जाता हूँ, सबको सावधानी पूर्वक स्वामी के सम्मुख लाता हूँ। यह कहकर और सैनिक अभिवादन करके सेनानायक तुरन्त चला गया। रावण ने राजसभा के वस्त्रोंको उतारकर सैनिक वस्त्र पहिने, अपने अस्त्र शस्त्रों को रथ में लदवाकर वह सेना के आगे आगे चला समर के वाजे बज रहे थे, घोड़े उछल रहे थे, हाथी चिघाड़ रहे थे, सैनिक राक्षसराज रावण की जय जयकार बोल रहे थे। दूसरी ओर वानरी सेना ने राक्षसों की सेना को आते देखा। आज निशिचरों में अपूर्व उत्साह था। पृथ्वी को

कँपाते हुये वे वानरों के विनाश के विचार से वीरतापूर्वक बढ़े चले आ रहे थे। श्रीरामचन्द्रजी ने दूर से ही सूर्य के समान रावण को देखकर विभीषण से पूछा—"राक्षसराज! सुमेरु के समान डील डौलवाला विकराल व्यक्ति कौन है। यह तो अपनी शोभा से सूर्य को भी निस्तेज बना रहा है।"

विभीषण ने कहा—"प्रभो! यह समस्त लोकों को रुलाने वाला मेरा ज्येष्ठ भाई दुष्ट रावण है। इसी ने आपके परोक्ष में आपकी प्यारी पत्नी को हरा है। संसार में इसका सामना करने में कोई समर्थ नहीं, इसने अपने बाहुबल से तीनों लोकों को जीत लिया है। इसे अपने विश्वविजयी होने का बड़ा अभिमान है।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"वीर! बड़े सौभाग्य की बात है, कि यह दुष्ट मेरे सामने आया आज इसे मैं इसके पापों का फल चखाऊँगा। आज तीखे बाणों से इसके अंगों को क्षत विक्षत बनाऊँगा। जबसे इसने मेरी प्राणों से भी प्यारी प्रिया को हरा है तब से मैं इसके ऊपर अत्यन्त ही कुपित हूँ। मैं इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था।"

इतना कहकर श्रीराम कुपित हुए। समीप में ही बैठे सुग्रीव रावण को देखते ही उसकी ओर दौड़े और भी बहुत से वानर हूँ हल्ला मचाते, पत्थरों को बरसाते आगे बढ़े। राक्षसों ने आते हुए वानरों पर प्रहार किया, कुछ देर तो वानर वीरतापूर्वक लड़ते रहे अन्त में उनके पैर उखड़ गये। राक्षसों के प्रहारों को न सह सकने के कारण वे भाग खड़े हुये। वानरों को भागते देखकर सुग्रीव ने ललकार कर रावण से कहा—"अरे राक्षसाधम! इन अल्पवीर्य वानरों को व्यर्थ में क्यों मार रहा है, मुझसे युद्ध कर।"

इतना सुनते ही रावण सुग्रीव के सम्मुख आया।

एक पर्वतशिखर उठाकर रावण के ऊपर फेंका, किन्तु उसने बीच में ही बाण मारकर उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। सुग्रीव ज्योंही एक फले फूले विशाल वृक्षको उखाड़ने को दौड़े त्योंही रावण ने उनके सिर में ऐसी घुमाकर गदा मारी कि वे भिन्न भिनाते हुए बहुत दूर जाकर गिर गये और मूर्छित हो गये।

वानरराज सुग्रीव को रण में मूर्छित देखकर हनुमानजी आगे आये। अब राक्षसराज रावण का और पवनतनय हनुमानजी का भयंकर रोमहर्षण युद्ध होने लगा। आकाश में देवता ऋषि तथा सिद्ध आदि इन दोनों के भयंकर युद्ध को कुतूहल के साथ देख रहे थे। सुग्रीव को मूर्छित देखकर पवन तनय हनुमानजी को अत्यन्त क्रोध आया वे रावण के समीप जाकर बोले—"तू मुझे जानता है ?"

रावण ने कहा—"मैं तेरी पूँछ को ही देखकर जानता हूँ, कि तू बन्दर है।"

हनुमानजी बोले—"मैं साधारण बन्दर नहीं हूँ। तेरे पुत्र अक्षको मारने वाला लंका को जलाने वाला हनुमान हूँ स्मरण है कुछ ?"

रावण ने कहा—"अच्छी बात है, यदि तुममें कुछ पुरुषार्थ है, तो मेरे सामने आ।"

हनुमानजी ने कहा—"मैं भी तेरा बल देखना चहता हूँ। पहिले तू मेरे ऊपर प्रहार कर, तब मैं तुमपर प्रहार करूँगा। हमारी तेरी थप्पड़ों से लड़ाई हो।

इतना सुनते ही रावण ने हनुमानजी को एक थप्पड़ जमाया। रावण के थप्पड़ लगते ही हनुमानजी का शरीर सन्न हो गया वे बहुत देर तक स्तब्ध बने खड़े रहे। कुछ काल में उन्हें चेत हुआ। वे बोले—"अच्छी बात है बच्चूजी ! अब तुम भी सम्हल

जाओ।" यह कहकर हनुमानजी ने पूरी शक्ति लगाकर रावण के एक थप्पड़ मारा इससे वह मूर्छित हो गया। रावण को मूर्छित देखकर सभी हनुमानजी की प्रशंसा करने लगे। कुछ काल में रावण को चेत हुआ उसने उल्लास के साथ कहा—धन्यवाद, धन्यवाद पवनतनय तुम सचमुच में वीर हो तुम श्लाघनीय शंभु हो, तुम्हारे बल पराक्रम की मैं प्रशंसा करता हूँ।"

हनुमानजी ने कहा—"मेरे ऐसे पराक्रम को धिक्कार है जोमेरा थप्पड़ लगने पर भी तू जीवित है। आ, एक बार फिर तू मेरे ऊपर प्रहार कर तब मैं तुझे मारूँगा।" इतना सुनते ही रावण ने फिर एक थप्पड़ पवनतनय को मारा। उस थप्पड़ के लगते ही हनुमानजी अचेत हो गये। रावण गर्जता हुआ नील से युद्ध करने लगा। महाशिल्पी नील कुछ काल तो लड़े किन्तु रावण के सम्मुख वे ठहर न सके। तब हनुमानजी की भी मूर्छा भंग हुई। रावण का प्रहार अव्यर्थ होता था उसने वानरों के दांत खट्टे कर दिये। वानर उसके बल, पराक्रम, तेज, युद्ध चातुरी से घबरा गये। वे युद्धस्थल छोड़कर इधर उधर भागने लगे।

वानरों को भागते देखकर रामानुज श्रीलक्ष्मण अपने बड़े भाई से बोले—"प्रभो! आप मुझे इस राक्षस से युद्ध करने की आज्ञा दें। मैं इसे रण में मारूँगा।"

यह सुनकर श्रीराम बोले—"भैया, लक्ष्मण! यह निशाचर बड़ा बली है इसे युद्ध में देवता, असुर, गन्धर्व, राक्षस कोई भी नहीं जीत सकते। तुम बड़ी सावधानी से युद्ध करना।"

यह कहकर श्रीराम ने अपने लघुबन्धु का स्वस्त्ययन किया और प्रेम पूर्वक छाती से लगाकर उन्हें युद्ध के लिये विदा किया लक्ष्मणजी ने जाते ही रावण पर प्रहार किया। लक्ष्मण को

अपनी ओर आते देखकर हँसकर रावण बोला—"अरे, बच्चे तू मेरे साथ क्या युद्ध करेगा। भाग जा भाग जा अपने भाई को भेजना।"

लक्ष्मणजी इतना सुनते ही क्रोध करके बोले—"अरे गीदड़! तू मेरे सामने क्या वस्तु है। सिंह का शावक कितना भी छोटा क्यों न हो वह हाथी से कभी भय नहीं खाता। तेरे लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ।" यह कहकर वे रावण से युद्ध करने लगे। कुछ देर तक तो लक्ष्मणजी बड़ी वीरता से लड़ते रहे। अन्त में उसने एक अमोघ शक्ति रामानुज के ऊपर छोड़ी। मन्त्रों से अभिमंत्रित कभी भी व्यर्थ न जाने वाली उस शक्ति के लगते ही लक्ष्मणजी अचेत होकर धड़ाम से धरती पर गिर गये। लक्ष्मणजी को मूर्छित देखकर हनुमानजी बड़ी शीघ्रता के साथ उनके समीप गये और उन्हें युद्ध भूमि से उठाकर श्रीरामचन्द्रजी के समीप ले गये। अपने छोटे भाई को मूर्छित देखकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त ही दुखित हुए। उन्हें रावण के ऊपर और भी अधिक क्रोध आ गया। लक्ष्मणजी को गोद में बिठाकर वे कुछ देर विलाप करते रहे। अंत में लक्ष्मणजी को स्वतः ही कुछ कुछ चेतना हुई। तब श्रीरामचन्द्र जी हनुमान्जी से बोले —"पवनतनय! तुम मुझे उस राक्षसाधम के समीप ले चलो मैं उसे दंड दूँगा। मैं उसके गर्व को खव करूँगा।"

इस पर हनुमान्जीने कहा—"प्रभो! आप मेरी पीठ पर चढ़ लें। वह राक्षस रथ पर चढ़कर युद्ध कर रहा है। आप मेरे कंधों पर बैठकर युद्ध करें।"

हनुमान्जी की यह बात श्रीरामचन्द्रजी ने मान ली। वे उनके कन्धों पर चढ़कर युद्ध के लिये निकले। उस समय आकाश विमानों से भर गया था। राम और रावण के युद्ध

को देखने असंख्यों देव, असुर, गन्धर्व और सिद्ध चारण आये हुए थे।

श्रीराम को युद्ध के निमित्त आते देखकर दशानन भयभीत हुआ, किन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा। बड़ी वीरता के साथ बोला—"धन्यवाद! जिस राम को मैं खोज रहा था, वह मेरे सामने ही आ गया। आज मैं इसे रण में मारकर अपना क्रोध शान्त करूँगा।"

श्रीरामचन्द्रजी उस राक्षसराजको डाँटते हुये बोले—"अरे, नीच! बहुत बढ़ बढ़कर व्यर्थ बातें क्यों बनाता है, शूरवीर बहुत बड़बड़ाते नहीं। वे करके दिखाते हैं। यदि तुझ में कुछ पुरुषार्थ है, तो समाने आजा। मेरे बाण के प्रहारको सह।"

रावणने कहा—"मैं रामके ही लिये तो समस्त चेष्टाएँ कर रहा था। राम मेरे सम्मुख आवे मुझे अपना पुरुषार्थ दिखावें, इसी निमित्त तो मैं सीता को हरकर लाया हूँ। मैं बहुत दिनों से सुनता था, राम बड़े वीर हैं बड़े वीर हैं। आज राम की वीरता देखी जायगी। देखें, वे हारते हैं या मैं हारता हूँ। विजय तो मेरी ही होगी। यह कहकर वह तीक्ष्ण बाण छोड़कर युद्ध करने लगा। श्रीरामचन्द्रजी भी अपने तीखे अमोघ बाण छोड़कर उसके मर्म स्थानों को बेधने लगे। किन्तु वह इतना भारी बली था कि श्रीराम के प्रहारों को भी वह उसी प्रकार सहता रहा जिस प्रकार मन्दराचल पर्वत वर्षा के प्रबल वेग को बिना विचलित हुए सहता रहता है।"

रावण ने जब देखा, कि श्रीराम तो हनुमानजी के ऊपर चढ़े हैं, तब तो उसे हनुमानजी पर क्रोध आया। हनुमानजी ने पहिले इसे घायल भी किया था, अतः उसने उन पर ही प्रथम प्रहार करना आरंभ किया। अपने वाहन और सेवक श्रीहनुमान

जी को घायल देखकर श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त ही कुपित हुए उन्होंने एक अर्ध चन्द्राकार वाण छोड़कर रावण के मुकुट गिरा दिये और उसकी छाती में बाण मारके उसे मूर्छित बना दिये।

रावण बहुत देर से युद्ध कर रहा था। वह अत्यन्त ही थक गया था। युद्ध करने में अब उसे उत्साह नहीं रहा। श्रीराम के बाणों ने उसके सम्पूर्ण अंगों को क्षतविक्षत बना दिया था। अब वह बिना मन के वैसे ही युद्ध कर रहा था। उसे अत्यन्त श्रमित देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—"राक्षसराज! मैं अधर्म से युद्ध करना नहीं चाहता। मैं जानता हूँ, तुम बहुत समय से युद्ध कर रहे हो। युद्ध करते करते अत्यन्त ही क्लान्त हो गये हो, इस लिये अब तुम जाओ, जाकर लंका में विश्राम करो, कल फिर युद्ध के लिये आना।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीरामचन्द्रजी की ऐसी बात सुनकर रावण अत्यन्त ही लज्जित हुआ, यथार्थ में वह अत्यन्त थक गया था, इसलिये श्रीराम के धर्मभाव की मन ही मन प्रशंसा करता हुआ वह युद्ध भूमि से हट गया। लंका में पहुँच कर अत्यन्त ही दुखी हुआ। उसका मुख क्लान्ति और ग्लानि से मुरझा गया था। वह एकान्त में बैठकर सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिये। उसे सम्पूर्ण संसार राममय ही दिखाई देने लगा। राम के बल, वीर्य, पराक्रम, ओज, तेज, राजपटुता हस्तलाघवता तथा शूरवीरता, आदि गुणों को देखकर वह भय के कारण तन्मय हो गया था।

छप्पय

अङ्गद मारयो वज्रदंष्ट्र धूम्राक्ष पवनसुत।
आयो लड़ने प्रहस्त भये नहिं बानर बिचलित॥
मरे मुख्य सब वीर दशानन अति खिसियायो।
स्वयं साजि सब सेन रामतें लड़िबे आयो॥
हनूमान् अरु बालिसुत, नील, लखन मूर्छित करे।
पवनतनय की पीठ चढ़ि, रावणतें राघव लरे॥

कुम्भकरण गतिदाता राम

(६७७)

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे
द्वन्द्वं वरुथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः।
जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः
सीताभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् ॥❀
(श्री भा० ९ स्क० १० अ० २० श्लो०)

छप्पय

राम बान तैं बिकल दशानन लंका आयो।
कुम्भकरण लघुबन्धु नींद तें तुरत जगायो॥
जगिकें बोल्यो वीर रामतैं रनमहँ लरिहौं।
लहूँ विजय करि कीर्ति नहीं हरि सम्मुख मरिहौं॥
यों कहि अञ्जन गिरि सरिस, चल्यो देखि बानर भगे।
भगदड़ कपिदलमहँ निरखि, अङ्गद समुझावन लगे॥

वीर पुरुष अपने शत्रु वीर का भी सम्मान करते हैं। वीरता ऐसा महान गुण है, कि वह शत्रु मित्र की अपेक्षा ही नहीं

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! राक्षसों की हय, गज, रथ और सवारों वाली चतुरङ्गिनी सेना से श्रीरामजी के अङ्गदादि सेनापति द्वंद युद्ध करने लगे। जिन राक्षसों का स्वामी वही रावण था जिसका मङ्गल सीताजी के स्पर्श से नष्ट हो गया है उसे वे वृक्षों, पर्वत शिखरों गदाओं और बाणों से मारने लगे।"

रखता। वीरता में जो बड़ा है वह छोटा होने पर भी बड़ा है और वीरता में जो छोटा है, वह बड़ा होने पर भी छोटा है। वीर को जो जीत ले वह तो विजित है ही, किन्तु वीर से पराजित होने में भी अप्रतिष्ठा नहीं। एक वीरता का गुण सभी अवगुणों को ढक लेता है और एक कायरता का अवगुण सभी गुणों पर पानी फेर देता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीरामचन्द्रजी से पराजित होकर रावण अत्यन्त दुखी हुआ, उसे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता था, उसके मुख्य-मुख्य वीर मारे गये थे प्रायः समस्त सेना समाप्त हो चली थी, कोष भी चुक गया था, स्वयं भी शत्रु सेना से पराजित हो चुका था, अतः उसे सर्वत्र भय दिखाई देने लगा। अब उसे अपने भाई कुम्भकर्ण की याद आयी। उसने सोचा—"कुम्भकर्ण विश्वविजयी है, उसने देवासुर संग्राम में असुरों का पक्ष लेकर सुरों को अनेकों बार परास्त किया है, वह वीर अत्यन्त बली है, संसार में उसका सामना करने वाला कोई नहीं है, किन्तु वह ऐसा मूढ़ है कि सदा सोता ही रहता है। ६ महीने में एक दिन के लिये जागता है उस समय भी वह भूख के कारण दुखी बना रहता है कितना भी खा ले उसकी तृप्ति ही नहीं होती। यदि वह आज किसी प्रकार जग जाय तो इन समस्त वानरों को खा जाय। इतने भालु वानरों को खाने से उसकी तृप्ति भी हो जायगी, शत्रुओं का नाश भी हो जायगा और मेरी विजय भी हो जायगी।" इस विचार के आते ही रावण को परम शान्ति हुई, तुरन्त अपने प्रधान-प्रधान विश्वसनीय राक्षसों को बुलाया और बोला—"तुम लोग तुरन्त मेरे छोटे भाई कुम्भकर्ण की उस गुहा में जाओ जहाँ वह सो रहा है। सहस्रों बकरे भैंसे उसके लिये आहार के

निमित्त ले जाओ। हजारों घड़े सुरा उसके पान के निमित्त ले जाओ। अभी उसके जगने का समय नहीं है। अभी वह बीच में उठा था और खा पीकर सो गया था। असमय में वह बिना प्रबल प्रयत्न के उठ नहीं सकता, इसलिये भाँति भाँति के प्रयत्न करके उसे जगाओ। उसे जगाकर स्तुति विनय से मनाओ, सुन्दर सुन्दर जीवों के स्वादिष्ट मांसों को खिलाओ, मनमानी सुरा पिलाओ, तब आदरपूर्वक उसे मेरे समीप ले आओ।"

राक्षसराज रावण का ऐसा आदेश सुनकर सेवकों ने सिर झुकाकर उसे स्वीकार किया और कहा—"बहुत अच्छा हम जाते हैं" ऐसा कहकर कुम्भकर्ण के शयनागार की ओर वे चले। दूर से ही उन्होंने कुम्भकर्ण की शयनगुहा को देखा। वह भूमि खोदकर बनाई गई थी। क्योंकि वह कुम्भकर्ण कई योजन लम्बा था किन्तु उसका शयनगृह लंका के राजमहलों के समान ही ऊँचा था, किन्तु भूमि में बहुत खुदा हुआ था। उसका द्वार बहुत बड़ा सबसे ऊँचा था जिसस वह विभीषण सुखपूर्वक निकल सके। दस योजन लम्बा और पाँच योजन चौड़ा उसका शयनगृह था। उसमें चन्दन के खम्भे लगे हुये थे। वज्रलेप से उस पर पक्का लेप किया था। स्थान स्थान पर उसमें सुन्दर सुनहले चित्र बने हुए थे, उसमें वायु के आने जाने को बहुत से ओखे मोखे झरोखे थे। उसमें सुन्दर सुगन्धि व धूप जल रही थीं। दिव्य पुष्पों की मालायें लटक रही थीं। बड़े बड़े सैनिक राक्षस उसके चारों ओर पहरा दे रहे थे। वह बड़े सुन्दर ढंग से सजाई थी वहाँ के राक्षसों को रावण के सेवकों ने राजाज्ञा दिखाई। राजाज्ञा पाते ही उन्होंने द्वार खोल दिया। कुछ राक्षस भीतर घुसने लगे, किन्तु कुम्भकर्ण की नासिका से इतनी वेग से वायु निकल रही थी, कि उसके प्रश्वांस लेने पर तो वे लोग भीतर

चले जाते, किन्तु स्वाँस लेते ही सब उड़कर बाहर आ जाते। उसकी स्वाँस के सम्मुख कोई ठहर ही नहीं सकता था। तब राक्षसों ने कहा—"आप लोग व्यर्थ श्रम करते हैं। छोटे राक्षसेश्वर की स्वाँस के सम्मुख आप लोग ठहर नहीं सकते। एक काम करो पीछे से एक द्वार है छोटा सा उससे प्रवेश करो। प्रधान द्वार से आप लोग घुस नहीं सकते, क्योंकि उनकी स्वाँस का वेग इधर ही आता है।" इस बात को सुनकर सबने पीछे के द्वार से उस शयनागार में प्रवेश किया कुम्भकरण एक बहुत ही बहुमूल्य सुन्दर सजी सजाई सुखद शैया पर स्वच्छन्द होकर सो रहा था। वह शैया बड़ी बुद्धिमानी से बनाई गयी थी। उस पर उसका सिर सुमेरु के शिखर के समान था। पर्वत की कन्दराओं के समान उसकी नाकों के छिद्र थे जिनसे वेगपूर्वक वायु निकल रही थी, मुख से सुरा की गन्ध आ रही थी। शरीर के स्वेद से मांस, रुधिर और मज्जा की दुर्गन्ध सी निकल रही थी। उसके हाथ पैर योजनों लम्बे थे। वह नेत्र बन्द किये सो रहा था। राक्षसों ने प्रथम उसे झकझोरा किन्तु उसको कुछ मालूम ही न पड़ा। फिर कुछ राक्षस उसकी छाती पर चढ़ गये। ज्योंही उसने स्वाँस ली कि बस उड़कर इधर उधर गिर पड़े। नासिका की वायु के वेग को कम करने के लिए राक्षसों ने उसकी नासिका में बड़ी बड़ी चौड़ी कीलें ठोंकीं, किन्तु वे भी न रह सकीं। तब उन्होंने बहुत से बकरे उसके शरीर पर चलाये, किन्तु वह टस से मस भी न हुआ। यह देखकर राक्षस बड़े चिन्तित हुये। उन्होंने सैकड़ों घोड़े उसके ऊपर दौड़ाये, बड़े बड़े पत्थरों को रखकर कुटवाया बहुत से अस्त्र शस्त्रों का प्रहार किया, किन्तु कुम्भकरण की निद्रा साधारण थोड़ी ही थी राक्षस ने करवट भी नहीं बदली तब तो राक्षस क्रोध में भरकर दाँतों से उसके कानों को काटने

लगे, नखों से नोचने लगे, खड्गों से प्रहार करने लगे किन्तु कुम्भकर्ण को तो कुछ प्रतीत ही नहीं होता था। तब राक्षसों ने गरम गरम लाल लाल लोहा उसके शरीर से छुआया, कानों में सहस्रों घड़े पानी भरवाया घड़े बड़े नगाड़ों का शब्द कराया, सबने मिलकर हू हल्ला मचाया किन्तु राक्षसराज के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगी।

तब तो राक्षसों ने विवश होकर बड़े बड़े मदोन्मत्त सैकड़ों हाथियों को बुलाया। उसकी छाती पर हाथियों की दाँय चलाई। तब उसने कुछ करवट बदली। हाथी इधर उधर गिर पड़े। अब तो राक्षसों ने उसके अंग अंग पर हाथियों को खड़ा कर दिया। तब कहीं कुम्भकर्ण को ऐसा लगा मानों मेरे शरीर पर चीटियाँ रेंग रही हैं। उसने जम्हाई ली और वह उठकर बैठ गया। उसके बैठते ही राक्षस भयभीत हुए वे भवन से भागने लगे। कुछ ने शीघ्रता से बहुत सा मांस दिया। मद्य की बोतलें उसके सामने की। पहिले ही झपट्टे में वह सहस्रों भैंसों बकरों और मृगों के मांस को खा गया सहस्रों बोतलें सुरा चढ़ा गया। तब उसने चकित चकित दृष्टि से निहारते हुए पूछा—"सेवको! आज तुम लोगों ने इतने आदर के साथ मुझे असमय में क्यों जगाया है? कहो लंका में सब कुशल तो है न? मेरे ज्येष्ठ भाई राक्षसराज रावण सुख पूर्वक तो हैं न? लंका पर किसी ने चढ़ाई तो नहीं कर दी? राक्षसों को देवताओं से तो भय नहीं हुआ? इन्द्र ने तो फिर सिर नहीं उठाया? मेरा भाई मुझे साधारण कार्य के लिये असमय में नहीं उठा सकता अवश्य ही कोई भीषण कांड हो गया। मुझे सत्य सत्य बताओ राक्षसों के भय को मैं दूर करूँगा। अपने बड़े भाई के संकट को हरूँगा।"

इतना सुनते ही हाथ जोड़कर रावण के सेवक बोले—"प्रभो! देवताओं से नहीं मनुष्यों से राक्षसों को भय हुआ है। राम नाम का एक राजकुमार वानरी सेना लेकर लंका पर चढ़ आया है। उसी के कारण राजाधिराज दुखी हैं। उसी निमित्त आपको असमय में जगाया गया है।"

इतना सुनते ही अहंकार युक्त उपेक्षा के स्वर में कुम्भकर्ण बोला—"इस इतनी सी छोटी बात के लिये मुझे जगाने की क्या आवश्यकता थी। अस्तु, अब मेरे भाई से जाकर पूछो कि मैं पहिले राम लक्ष्मण को मारकर वानरी सेना को खाकर तब उनके दरशन करूँ अथवा पहिले उनके दर्शन करके तब समर भूमि में जाऊँगा?"

इतना सुनते ही सेवक राक्षसराज रावण के समीप दौड़े गये और बोले—"देव! छोटे महाराज ने पूछा है वे आपके दर्शन करके समर भूमि में जायँ या वहाँ से सीधे ही समर भूमि में चले जायँ।"

रावण ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"मैं अपने छोटे भाई को देखना चाहता हूँ। उसे सत्कार पूर्वक यहाँ ले आओ।" रावण की आज्ञा पाते ही सेवक कुम्भकर्ण के समीप गये और हाथ जोड़कर नम्रता के साथ बोले—"महाराज आपको देखने के लिये अत्यन्त ही उत्सुक हैं। उनका आदेश है, कि पहिले आप उनसे मिल लें तब समर भूमि में जायँ।" इतना सुनते ही कुम्भकर्ण उठा उसके उठते ही पृथ्वी डगमगाने लगी। जीव जन्तु डरकर इधर उधर भागने लगे। वह इन्द्रध्वजा के समान योजनों दूर से दिखाई देता था। लंका के भवनों से भी ऊँचा उसका सिर था। वह सीधा रावण के पास गया। अपने बड़े भाई के चरणों में

प्रणाम करके वह उसके बताये आसन पर बैठ गया। रावण ने उसे हृदय से लगाया और उसकी कुशल पूछी।

कुम्भकर्ण ने कहा—"भाई जी, मुझे क्यों जगाया गया। ऐसा कौनसा आवश्यक कार्य आ गया।"

रावण ने प्रेमपूर्वक घुड़की देते हुए कहा—"कुम्भकर्ण! तू इतना बली है, कि संसार में तेरे समान दूसरा कोई बली नहीं। किन्तु तुझमें यह सोने का दोष बहुत भारी है। यदि सोने का दोष न होता तो संसार में तेरे सम्मुख कोई खड़ा भी नहीं हो सकता था। तू भैंस की भाँति पड़ा पड़ा सोता रहता है। तुझे पता नहीं मैं कितना दुखी हूँ। मेरे प्रधान प्रधान सैनिक मारे गये। लंका में बच्चे, बूढ़े और स्त्रियों को छोड़कर कोई युवक रहा ही नहीं। वानरों ने सबका संहार कर दिया। इतने पर भी वे अजेय बने बैठे हैं। जब मुझे कोई उपाय न सूझा तब मैंने तुझे जगाया है मुझे तेरा बहुत सहारा है, तेरे बलवीर्यका बड़ा भरोसा है। भैया, तू मेरे संकट को दूर कर सकता है। इन वानरों को भगा सकता है।"

कुम्भकर्ण ने कहा—"राजन! आपने रामकी पत्नी सीता का हरकर बहुत बुरा कार्य किया। उसी का यह फल है। सीता के शोक के उद्गार व्यर्थ नहीं जाते, तू कभी सुखी नहीं हो सकता। अधम के कार्य से सदा सद्विघ्नता बढ़ता है, पाप का फल दुःख है। रामने आपका क्या बिगाड़ा था, आप उनकी स्त्रीको जनस्थान से क्यों हर लाये?"

बीच में ही टोककर क्रोधपूर्वक रावण बोला—"कुम्भकर्ण तू बड़ा मूर्ख है। अरे, तेरा भाई हूँ पिता और गुरु के समान हूँ, तू मुझे इस प्रकार डाट रहा है। मान ले मैंने बुरा ही काम किया, तो अब आलोचना प्रत्यालोचना का समय थोड़े ही है।

बुरा-भला जो हो गया सो हो गया। घर के आदमियों से कोई बुरा भी काम हो जाता है, तो बुद्धिमान लोग उसे सम्हाल लेते हैं। संकट के समय आपस में ही वाद विवाद न करना चाहिये। क्या हुआ उसका विचार न करके अब क्या करना चाहिये इसी का विचार करना है। तुझे लंका को बचाना है या फिर पड़कर सोना है। एक छोटा भाई विभीषण था वह मुझे धोखा देकर शत्रु से मिल गया तू भी मेरी वंचना करेगा क्या ?"

कुम्भकर्ण ने नम्रतापूर्वक कहा—"राजन् ! आप क्रोध न करें। मैंने भ्रातृस्नेह के कारण ये शब्द कहे। मेरा भाव आप को उपदेश देने का नहीं था। मैं अभी अकेला ही समर में जाऊँगा। सब वानरों को पकड़कर खा जाऊँगा। रामलक्ष्मण दोनों भाइयों को मारकर आपके दुःख को दूर करूँगा। आप चिन्ता को छोड़िये, दुःख को दूर कीजिये। आनन्द से स्वादिष्ट भोजन कीजिये। भरपेट सुरापान कीजिये। जानकी आपको सदा के लिये मिल जायगी। लंका शत्रुशून्य हो जायगी। वानरी सेना नष्ट हो जायगी। लीजिये मैं अभी समर को जाता हूँ।"

रावण ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"अच्छी बात है, जाओ, किन्तु तनिक जलपान कर जाओ। भोजन तो रण में जाकर वानरों का ही करना। यह कहकर रावण ने भैंसों बकरों और हरिनों का सहस्रों मन मांस मँगाया। मद्य के असंख्यों घड़े मंगाये। जैसे पाताल के विवर में कूड़ा डालने से वह क्षण भर में अदृश्य हो जाता है उसी प्रकार सम्पूर्ण मांस कुम्भकर्ण के मुख में पड़ते ही अदृश्य हो गया। जैसे वडवाग्नि के मुख में समुद्र का जल पड़ते ही स्वाहा हो जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण सुरा उसके मुख में पड़ते ही विलीन हो गई। खा पीकर बोला— "महाराज ! अब मैं युद्ध भूमि तक चलने योग्य हो गया। इतना

जलपान मुझे ऐसा लगा मानों मैंने मुख शुद्धि के लिये इलायची खाई हो, किन्तु अब मैं वानरों का ही खाकर अपनी भूख को शान्त करूँगा। इतना कहकर वह सिंहनाद करता हुआ समर की ओर चला। बहुत से राक्षस अस्त्र शस्त्र लिये उसके पीछे पीछे चल रहे थे। सम्पूर्ण लंका नगरी उसके स्वागत के निमित्त सजाई गई थी। स्थान स्थान पर उसके ऊपर फूल बरसाये गये। राक्षस कन्याओं ने दधि, अक्षत, कुंकुम अंकुर और मालाओं से उसकी पूजा की। वह अपने पैरों से पृथ्वी कँपाता हुआ, अपने भयंकर डील डौल से प्राणियों को भयभीत बनाता हुआ वानरी सेना को लक्ष्य करके चला।

वानरों ने जब इतने लम्बे तडंगे विचित्र जन्तु को देखा तो वे भयभीत होकर भागने लगे, कोई चिल्लाने लगे, कोई वृक्षों पर चढ़ने लगे, कोई उछलकर पर्वत शिखरों को तोड़ने लगे। श्री रामचन्द्रजी ने जब सजीव सुमेरु के समान समरभूमि में आते हुए कुम्भकर्ण को देखा, तो परम विस्मय के साथ विभीषण से पूछने लगे—"सखे! यह विचित्र जन्तु कौन है। यह कोई प्राण-वाला जन्तु है या यन्त्र है?"

तब विभीषण ने कहा—"प्रभो! यह मेरा भाई कुम्भकर्ण है। यह मुझसे बड़ा और रावण से छोटा है। जब यह उत्पन्न हुआ, तो मारे भूख के चराचर प्राणियों को खाने लगा। सभी दुखित होकर ब्रह्माजी के पास गये और बोले—"प्रभो! यदि यह इसी प्रकार भोजन करेगा, तो कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड को खा जायगा। आप इसका कुछ उपाय सोचें।" सबकी बात सुनकर ब्रह्माजी ने इसकी मति फेर दी। इससे वर माँगने को कहा। इसने छः महीने की निद्रा माँगी। उसी वर के प्रभाव से यह ६ महीने तक सोता है। एक दिन जागकर आहार

करता है। उस दिन लंका में न कहीं मांस बचता है न एक बूँद मद्य सभी को खा पीकर यह फिर सो जाता है। प्रतीत होता है संकट समझकर रावण ने इसे असमय में जगाया है। तभी तो यह इतना कुपित हो रहा है। इसके सामने कोई भी प्राणी ठहर नहीं सकता। निश्चय ही यह वानरी सेना को भक्षण कर जायगा। इसी को देखकर वानर भाग रहे हैं।"

श्रीराम ने कहा—"तुम सबसे कह दो यह कोई जन्तु थोड़े ही है। रावण ने डराने को लोहे का ऐसा यन्त्र बनाकर भेजा है। तुम इस पर निर्भय होकर चढ़ जाओ।"

विभीषण ने यही किया। अब तो वानर कुम्भकरण के सिर पर चढ़ने लगे। वह दोनों हाथों से समेट समेट कर वानरों को मुख में डालने लगा। वानरों ने तो स्वेच्छा से छोटा रूप रख लिया था, अतः वे उसके कानों में से नाक के छिद्रों में से तुरन्त निकल आते। जब तक वह योजनों लम्बे हाथों को फैलाकर औरों को पकड़ता तब तक वानर उसके शरीर में घाव कर देते। कोई नखों से नोंचता, कोई दाँतों से कान ही काट लेता, कोई पत्थर ही उठाकर सिर में मार देता। किन्तु उसका चर्म भी न छिलता वानरों का प्रहार उसे प्रतीत ही न होता। वह जिसे देखता उसे ही मार देता। उसने चारों ओर हाहाकार मचा दिया। वानर उसके भय से भागने लगे। तब वानरराज सुग्रीव लड़ने के लिए उसके सम्मुख आये। सुग्रीव ने उस पर वृक्षों, पर्वतों खड्गों के अनेकों प्रहार किये, किन्तु जैसे मदोन्मत्त हाथी वर्षा की बूँदों को सहता रहता है। वैसे ही सबके शस्त्र प्रहारों को सहता रहता था। उसे न भय था न चिन्ता। निर्भय होकर सुग्रीव के सम्मुख सुमेरु के समान अविचल खड़ा था। प्रहार करते करते जब सुग्रीव थक गये तब उसने एक तान कर गदा

मारी। राक्षस की गदा लगते ही सुग्रीवजी मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। उन्हें शरीर की सुध भी नहीं रही। सुग्रीव को मूर्छित देखकर कुम्भकर्ण ने उन्हें उठाकर काँख मे दबा लिया और लेकर लंका की ओर चला। कुछ काल मे सुग्रीवजी को चेतना हुई। उन्होंने अपने को राक्षस की काँख में दबा देखकर आश्चर्य प्रकट किया। लंका के मार्गों को देखकर वे समझ गये कि राक्षस मुझे पकड़ लाया है। अब वे कुम्भकर्ण की काँख में से ही उसे नोचने लगे। उन्होंने दाँतों से उसके कान कतर लिये, नाक काट ली। कान और नाक के काटने से कुम्भकर्ण घबरा गया उसने उन्हें उठाकर पृथ्वी पर फेंक दिया और ज्यों ही उन्हें पकड़ने दौड़ा त्यों ही वे आकाश में उड़कर श्रीरामचन्द्रजी के समीप पहुँच गये।

कुम्भकर्ण ने जब देखा कि सुग्रीव तो छल करके मुझसे छूट गया, तब तो वह फिर एक मुद्गर लेकर वानरी सेना में घुसा। अबके वह वानरों को मुख में रखता और समूचा निगल जाता। इस प्रकार उसने हजारों लाखों वानर खा लिये। अब तो वानरी सेना में भगदड़ मच गई। सब भागकर श्रीरामचन्द्र जी की शरण में गये। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण से कहा—"वीर! तुम इन वानरों के दुखको दूर करो" इतना सुनते ही लक्ष्मणजी अपना धनुषबाण लेकर कुम्भकर्ण के समीप गये। लक्ष्मण को देखकर देवशत्रु कुम्भकर्ण हँसा और उन पर एक पहाड फेंका। लक्ष्मणजी ने बीच मे ही टुकड़े टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने बहुत बाण चलाये, किन्तु उसकी त्वचा भी नहीं छिली। इस पर लक्ष्मणजी क्रुद्ध हुए। अत्यन्त तीखे तीखे बाण छोड़कर उन्होंने राक्षस को घायल किया। श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण और कुम्भकर्ण के युद्ध को देख रहे थे। समीप में ही श्रीराम बैठे थे,

यह देखकर कुम्भकर्ण लक्ष्मणजी की अवज्ञा करके श्रीरामचन्द्र जी से लड़ने उनके सामने आया। भगवान् तो इसके लिये कटिबद्ध ही बने बैठे थे। वे शत्रु के सम्मुख धनुषबाण लेकर खड़े हुए। अब वानरों ने युद्ध बन्द कर दिया। सभी खड़े हो कर कुम्भकर्ण और श्रीराम के युद्ध को देखने लगे कुम्भकर्ण भगवान् पर जितने भी प्रहार करता, उन सबको भगवान् व्यर्थ बना देते। वह सजीव पर्वत के समान प्रहार कर रहा था। उसने घुमाकर एक बड़ी भारी गदा भगवान्‌की ओर चलाई। भगवान्‌ने एक बाण मारकर गदा को भी काट दिया और उसके हाथ को भी। अब वह एक हाथ से ही लड़ने लगा। अवसर पाकर प्रभु ने उसका दूसरा हाथ भी काट दिया। अब बिना हाथों के वह पंख कटे पर्वत के समान शोभित होने लगा। पीड़ा के कारण वह पृथिवी पर लेट गया। अब भगवान् ने उसके दोनों पैर भी काट दिये। अब वह बिना हाथ पैरों के ही मुँह फाड़कर श्रीराम की ओर दौड़ा भगवान ने बाणों से उसके मुँह को भर दिया। फिर एक बाण मारकर उसके सिर को भी काट दिया। सिर कटने पर वह चीत्कार करके मर गया। श्रीराम के हाथों से मरने पर उसकी सद्गति हो गयी। वह संसार बन्धन से विमुक्त हो गया। जो गति योगियों और महात्माओं को भी दुर्लभ है वह गति उसे प्राप्त हुई।"

कुम्भकर्ण के मरते ही राक्षसी सेना में भगदड़ मच गई। राक्षसों ने शीघ्रता पूर्वक यह समाचार रावण को दिया। सुनते ही राक्षसराज अचेत हो गया। वह फूट फूटकर रोने लगा। रोते-रोते वह कहने लगा—"मेरा सबसे प्यारा बली भाई कुम्भकर्ण मारा गया, तो मैं अब सीता को लेकर क्या करूँगा। हाय! मेरे छोटे भाई महात्मा विभीषण ने मुझे कितना समझाया किन्तु उस

समय मैंने उसकी बात नहीं मानी। मेरी करनी मेरे सम्मुख आ रही है। अब मैं क्या करूँ।"

कुम्भकर्ण के लिये इस प्रकार विलाप करते देखकर रावण के पुत्रों ने उसे धैर्य बँधाया और स्वयं युद्ध में जाने की इच्छा की। रावण की अनुमति लेकर सुरान्तक-नरान्तक-देवान्तक आदि बहुत से वीर गये, किन्तु वे सबके सब युद्ध में वानरों द्वारा मारे गये। तब फिर अन्त में इन्द्रजित् गया। सम्मुख युद्ध में दाल गलते न देखकर उसने पुनः माया का प्रयोग किया और श्रीराम लक्ष्मण को घायल किया। पीछे भगवान् स्वस्थ हुए।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! महान बल पराक्रम वाले वीर इन्द्राजित् को मरते न देखकर भगवान् विभीषण से उसकी मृत्यु का उपाय पूछने लगे।"

छप्पय

अंगद की सुनि सीख रुके कपि लड़िवे लागे।
कुम्भकर्ण सुग्रीव लखन सेना के आगे॥
भयो भयानक समर लखन रन अद्भुत कीन्हों।
पुनि राघवतैं भिड्यो असुरकूँ अवसर दीन्हों॥
रामबानतैं कर कटे, पग मस्तकहू कटि गये।
कुम्भकर्ण खल मरि गयो, सुनि हर्षित सुर मुनि भये॥

इन्द्रजित्वध और रावण युद्धार्थ आगमन

(६७८)

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ।
स्वःस्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते
विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥*

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० २१ श्लो०)

छप्पय

कुम्भकर्ण सुनि निधन दशानन दुखअति पायो ।
तबहि तनय अति सूर युद्ध कूँ तुरत पठायो ॥
देवान्तक अतिकाय गये पुनि आये नहिं फिरि ।
इन्द्रजीत पुनि छले राम सौमित्र गये गिरि ॥
है चेतन लक्ष्मण चले, सुनत सबनि अति सुखभयो ।
यतिवर लक्ष्मण हाथतैं, इन्द्रजीत मारयो गयो ॥

प्राणी का पुरुषार्थ तभी तक सफल होता है, जब तक उसका भाग्य साथ देता है। भाग्य के विपरीत हो जाने पर सभी

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! राक्षसराज रावण ने अपनी सेना को नष्ट होते देखा तो वह रुष्ट होकर विमान पर चढ़कर श्रीराम के सम्मुख आया। उसने उन श्रीरामचन्द्रजी पर तीखे बाणोंसे आक्रमण किया जो द्युतिमान सुन्दर स्वर्गीय विमान पर बैठे हुए थे और जिसे इन्द्रसारथी मातलि हाँक रहे थे।"

पुरुषार्थ विफल हो जाते हैं फिर जिस कार्यको भी करते हैं, वही व्यर्थ जाता है। भाग्य के अनुकूल होने पर जो समुद्र को पार कर जाते थे, भाग्य के विपरीत होने पर वे गौखुर के सदृश गड्ढे में गिर जाते हैं। अनुकूल परिस्थिति में जो सुमेरु के आघात को सहन करने में समर्थ थे, वे ही परिस्थिति के प्रतिकूल हो जाने पर एक कंकणी में मर जाते हैं। बल और अबल को बनाने वाला काल ही है। जब तक जिसका विजय का समय होता है, तब तक वह विजयी होता है, समय समाप्त हो जाने से वही पराजित हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कुम्भकर्ण की मृत्यु से रावण को अत्यन्त दुःख हुआ। वह दीन हीन के समान सबके सम्मुख शोक प्रकट करने लगा और आँखों से अश्रु बहाने लगा। रावण को दुखी देखकर उसका पुत्र त्रिशिरा बोला—"पिताजी! यह सत्य है कि हमारे मँझले चाचाजी बड़े बली थे। उनकी मृत्यु से हम सबको बड़ा धक्का लगा, किन्तु जो होना था सो गया भाग्य को कौन मेंट सकता है। प्रारब्ध को कौन अन्यथा कर सकता है। आप शोक न करें-चिन्ता को छोड़ें मैं अभी समर में जाता हूँ। मैं निश्चय ही राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को समर में मारकर आपको सुखी बनाऊँगा।" इतना कहकर अपने पिता की प्रदक्षिणा करके त्रिशिरा युद्ध के लिये चल दिया। उसके साथ उसके भाई देवान्तक नरान्तक तथा अतिकाय आदि भी चले। वे सब राजपुत्र सेना सजाकर बड़े उत्साह के साथ जा रहे थे उन्होंने वानरों के साथ घनघोर युद्ध किया। अङ्गद और नरान्तक का बड़ी देर तक युद्ध होता रहा, अन्त में दोनों में द्वन्द युद्ध होने लगा। नरान्तक ने अङ्गद जी की छाती में तान कर मुट्ठी मारी जिससे वे अचेत हो गये। मूर्छा भंग होने पर उन्होंने भी

सम्पूर्ण बल लगाकर नरान्तक की छाती में एक घूँसा मारा। घूँसे के लगते ही उसका हृदय फट गया और वह मर गया।

नरान्तक के प्राणान्त होने से उसके देवान्तक महोदर आदि भाई परम दुखी हुए और वे भी वानरों से प्राणों का पण लगा कर युद्ध करने लगे। अतिकाय लक्ष्मणजी से युद्ध करने लगा। उसने ऐसी वीरतापूर्वक घनघोर युद्ध किया कि लक्ष्मणजी उसकी वीरता से परम सन्तुष्ट हुए। अन्त में वह श्री लक्ष्मणजी के हाथों मारा गया। फिर एक एक करके देवान्तक, महोदर, अतिकाय आदि प्रधान प्रधान वीर मारे गये। उनके साथ जो राक्षस सैनिक आये थे वे डर कर भाग गये।

जब यह समाचार रावण ने सुना तो अत्यन्त ही दुखी हुआ। शोक के कारण वह मूर्छित सा हो गया। अपने पिता को शोक-मग्न देखकर महाबली इन्द्रजित उसे धैर्य बँधाते हुए कहने लगा—"पिताजी! आप शोक का परित्याग कीजिये। आप इस प्रकार अनाथों की भाँति दुःख न करें जबतक हम हैं आपको शोक करने की कौन सी बात है। पिताजी! मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ, युद्ध में श्रीराम लक्ष्मण को अवश्य मारूँगा। यदि ऐसा न कर सका तो मैं भी अपने भाइयों के पथ का अनुसरण करूँगा। आप मुझे युद्ध में जाने की आज्ञा दें।" यह कह कर उसने रावण की प्रदक्षिणा की। रावण ने भी प्रेम पूर्वक उसे छाती से लगाया, उसका सिर सूँघा, स्वस्त्ययन करके प्रेम सहित हृदय से आशीर्वाद देकर उसे विदा किया। उसने जाते ही आसुरीमाया का आश्रय लिया। उसने छिपकर ऐसा मोहनास्त्र छोड़ा कि प्रधान प्रधान वानर और श्रीराम लक्ष्मण सभी उसकी माया में मोहित हो गये। वानर और भालू तो अब औषधि जान ही

गये थे अतः श्रोषधि लाकर उन सबको स्वस्थ कर लिया था।

जब श्रीराम ने देखा कि अब तो रावण के प्रायः सभी प्रधान प्रधान सैनिक वीर मारे गये। अब वह लंका की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ है, तो उन्होंने वीरों को लंका लूटने की अनुमति दे दी चंचल प्रकृति के वानर तो यह चाहते ही थे, उन्होंने रात्रि के समय लंकापर धावा बोल दिया। सैनिक शिविरों में, महलों में घरों में तथा अन्य मुख्य मुख्य स्थानों में उन्होंने आग लगा दी। सर्वत्र हाहाकार मच गया। स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं, बच्चे भागने लगे, राक्षस मदिरा के मद में इधर उधर उन्मत्तों की भाँति फिरते हुए अंड बंड बकने लगे। सर्वत्र हलचल मच गई।

इस प्रकार लंकाको रुईके ढेरके समान जलते देखकर रावण अत्यन्त दुखी हुआ उसने कुम्भकर्ण पुत्र कुम्भ निकुम्भ को युद्ध करने भेजा। ये परम बली राक्षस बहुत समय तक वानरी सेना का संहार करते रहे। अन्त में कुम्भ अंगदजी से भिड़ गया मानों उसने जानबूझकर मृत्यु से आलिङ्गन किया हो। अंगद ने उसकी छाती में ऐसा परिघ मारा कि वह मृतक होकर भूमि पर गिर गया। कुम्भ के मर जाने पर निकुम्भ अत्यन्त ही कुपित हुआ। वह अब प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगा। उसके वेग को न सह सकने के कारण वानर इधर-उधर रणस्थल छोड़कर भागने लगे। यह देखकर पवनतनय को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने वानरों को उत्साह दिलाते हुए कहा—"तुम लोग प्राणों का इतना मोह क्यों करते हो रे? अरे इससे बढ़कर सुन्दर मृत्यु और कहाँ मिलेगी। राम काज करते हुए उनके श्रीमुख को निहारते हुए सम्मुख समर में प्राणों का परित्याग कर दो। ऐसी मृत्यु के लिये तो देवता भी तरसते रहते हैं।"

हनुमानजी के ऐसे वीरता पूर्ण उद्गारों को सुनकर सभी भागने से रुक गये। अब पवनतनय कुम्भकरण के पुत्र निकुम्भ भिड़ गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि बिना इस अधम राक्षस को मारे मैं पीछे न हटूँगा इसीलिये उस पर निरन्तर पाषणों की वृष्टि करने लगे। किन्तु वह भी बड़ा बली था, हनुमानजी के सभी प्रहारों को वीरता पूर्वक सहता रहा अन्त में अत्यन्त क्रुद्ध होकर केशरीनन्दन कपीन्द्र ने एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़कर निकुम्भ के सिर पर ऐसा मारा कि वह फिर जीवित बच ही न सका।

कुम्भनिकुम्भ की मृत्यु सुनकर खर पुत्र मकराक्ष युद्ध करने आया। वह बड़ा वीर था। उसका युद्ध कौशल प्रशंसनीय था। लक्ष्मण युद्ध करते करते क्लान्त हो गये थे, फिर भी मकराक्ष को आते देखकर वे उसकी ओर झपटे। तब श्रीराम ने कहा—"देखो, भाई लक्ष्मण ! इस मकराक्ष के बाप खर को भी मैंने मारा है अतः इसे भी मैं ही मारना चाहता हूँ, तुम उस पर प्रहार न करो।"

श्रीराम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण मकराक्ष के वध से विरत हो गये। अब श्रीराम हँसते हुए मकराक्ष से बोले—"देखो भाई! हमारा तुम्हारा द्वंद युद्ध हो। यह सुनकर मकराक्ष क्रोध करके भगवान की ओर दौड़ा। उस समय की शोभा अकथनीय थी। एक ओर तो कुपित राक्षस और दूसरी ओर दयालु श्रीराघव उस राक्षस पर कृपा करके प्रभुने अपने अङ्ग स्पर्श का देवदुर्लभ अवसर प्रदान किया। भगवान् जो बाण छोड़ते उन अमोघ बाणों को भी राक्षस मोघ बना देता था। जब उसके सभी बाणों को रामचन्द्रजी ने व्यर्थ बना दिया, धनुष को काट दिया, शक्ति को नष्ट कर दिया तो वह भगवान् की ओर घूँसा तानकर

झपटा। अपनी ओर राक्षस को आते देखकर राम ने उसे अपना लिया। मृत्यु लोक से उसे सदा के लिये विदा करके अपने परम पद को पठा दिया। मकराक्ष के मरने से वानर हर्ष ध्वनि करने लगे। किलकिला शब्द करते हुए वे इधर उधर आनन्द से दौड़ने लगे।

इन्द्रजित ने जब देखा कि मेरी माया तो व्यर्थ हो गई। तब उसने एक दूसरी माया रची। एक मायामयी सीता बनाई। उसे रथ पर बिठाकर वह रणभूमि में ले गया। माया निर्मित्त जानकी रो रही थी, करुण स्वर में चिल्ला रही थी। वानर यह देखकर डर गये।" हनुमानजी ने रोती हुई मायामयी मैथिली को निहारा वे सीताजी को इन्द्रजित् के रथ पर देखकर परम दुखित और विस्मित हुए। हनुमानजी को देखकर रावणतनय इन्द्रजित बोला—"वानरो! जिसके लिये तुम लोग समुद्र पुल बाँधकर आये हो, जिसे पाने के निमित्त तुम प्राणपण से युद्ध कर रहे हो, उस जानकी को मैं अभी तुम्हारे सम्मुख मारे देता हूँ। कलह के बीज को नष्ट कर देने से कलह आप से आप शान्त हो जायगी। यह कहकर उसने माया की मैथिली के खुले हुए केशों को पकड़ा और उसके सिर को धड़ से पृथक कर दिया। भगवान् की लीला तो देखिये सम्पूर्ण विद्याओं के विशारद श्रीहनुमानजी भी राक्षस की माया से विचलित हो गये वे सीता के मरण मे अत्यन्त दुखित हुए। मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। उन्होंने युद्ध करना छोड़ दिया। उत्साहहीन होकर लम्बी लम्बी साँस लेने लगे। अन्य वानर भी हनुमानजी की ऐसी दशा देखकर विचलित हो गये। वे इधर उधर दशों दिशाओं में भागने लगे। सबका उत्साह जाता रहा, सब अनाथ के समान हाय हाय करने लगे।

यह देखकर इन्द्रजित् अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राक्षस उसकी जय जयकार करने लगे।

हनुमान्जी कुछ चेत होने पर बड़े कष्ट से उठे। उन्होंने जाकर श्रीराम से कहा—"प्रभो! अब युद्ध करना व्यर्थ है। जिन देवी के लिये हम यह सब कर रहे थे, उन देवी को तो इन्द्रजित् ने मेरे सम्मुख हो रण में मार डाला।" इतना सुनते ही श्रीराम मूर्छित हो गये। उनके नयनों से निरन्तर नीर निकल रहा था। वे चेतनाशून्य हुए लम्बी लम्बी साँसें ले रहे थे। श्रीरामचन्द्रजी की ऐसी दशा देखकर सभी व्याकुल हुए। वानरी सेना का उत्साह जाता रहा। सुग्रीव की गोदी में श्रीराम मूर्छित पड़े थे। लक्ष्मण जी उन्हें मधुर वाणी से समझा रहे थे। सहसा वानरी सेना को इस प्रकार निरुत्साह देखकर विभीषण विचलित हुए वे दौड़कर उस स्थान पर आये जहाँ श्रीराम थे। आते ही उन्होंने श्रीराम के मूर्छित होने का कारण पूछा। सीतावध की बात सुनकर वे विस्मित होकर भगवान् को समझाने लगे।" प्रभो! आप यह कैसी मानवीय लीला कर रहे हैं। भला, कहीं सीता माता को कोई मार सकता है? भगवन्! यह सब राक्षसों की आसुरी माया है। रावण का सीताजी के प्रति कितना अनुराग है इसे मैं जानता हूँ। वह सीताजी को कभी भी नहीं मार सकता। मैंने अनेकों बार सीताजी को लौटाने को कहा, किन्तु वह प्राण रहते सीताजी को लौटा नहीं सकता। फिर उन्हें मारेगा ही क्यों?" श्रीरामजी मूर्छित हुए पड़े थे, उन्होंने विभीषणजी की बातें सुनी ही नहीं, कुछ कुछ शब्द सुनाई दिये। सीता जीवित हैं, यह सुनते ही उन्होंने आँखें खोलीं और बोले—"विभीषण! तुमने क्या कहा, फिर से कहो मैं शोक के कारण सुन न सका।" इस पर विभीषण ने फिर सभी बातें विस्तार से

सुनायी ! इस समाचार को सुनते ही श्रीराम परम प्रसन्न हुए। वानरी सेना में भी सर्वत्र उत्साह छा गया।

श्रीराम ने कहा—"विभीषण ! तुम राक्षसी माया का सब रहस्य जानते हो। यह इन्द्रजित् तो मुझे बड़ा मायावी प्रतीत होता है। इसका वध कैसे हो सकेगा इसे मुझे बताओ।"

इस पर विभीषण बोले—"प्रभो ! इन्द्रजित् देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, गुह्यक तथा समस्त प्राणियों से अजेय है। वरदान से यह प्रबल बना हुआ है। इस समय वह निकुम्भिला देवी के स्थान में एक आभिचारिक यज्ञ कर रहा है। यदि उसका यह सकुशल समाप्त हो गया, तो वह सबसे अजेय हो जायगा। फिर उसका जीतना असंभव है जब तक उसके यज्ञ की पूर्णाहुति नहीं होती, तभी तक यह जीता जा सकता है। आप लक्ष्मणजी को मुझे दे दें। मैं इन्द्रजित् का वध अवश्य करा दूँगा।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"विभीषण ! भैया हमें तुम्हारा ही तो सहारा है। तुम्हारी सहायता न होती, तो हम यहाँ तक आ भी पाते इसी में संदेह है।"

यह सुनकर विभीषणजी ने प्रभु के पैर पकड़ लिये और प्रेमाश्रु बहाते हुए बोले—"प्रभो ! यह तो आपकी सनातन रीति है। आप अपने भक्तों को सदा सम्मान देते रहते हैं। मैं तो आपका यन्त्रमात्र हूँ, आप मुझसे जो कराना चाहेंगे, वही मैं करूँगा, जहाँ रखना चाहेंगे, वहीं रहूँगा, जहाँ बिठालना चाहेंगे, वहीं बैठूँगा। अब मैं लक्ष्मणजी के साथ निकुम्भिला स्थान पर जाता हूँ। इन्द्रजित जब तक आभिचारिक यज्ञ समाप्त न करले, तभी तक हमें उस पर प्रहार करना है। यज्ञ समाप्ति के अनन्तर तो उसका जीतना अत्यन्त दुस्तर है।"

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को हृदय से लगाया, उनका स्वस्त्ययन करके और सिर सूँघकर इन्द्रजित् के वध के लिए विदा किया। विभीषण, हनुमान् तथा लक्ष्मण आदि वीरों ने भगवान् की प्रदक्षिणा की और वे सब इन्द्रजित् के मारने के निमित्त चले। निकुम्भिला स्थान में पहुँचते ही रक्षकों ने लक्ष्मण जी को रोका। चारों ओर से अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित वानरी सेना को देखकर विभीषण ने श्रीलक्ष्मणजी से कहा—"पहिले आप वानरों से इस सेना का संहार कराइये, तब आपको रावण पुत्र इन्द्रजित दिखाई देगा। इतना सुनते ही वानर राक्षस सेना पर प्रहार करने लगे। उन्होंने वृक्षों पर्वतों दाँतों और नखों से राक्षसों पर प्रहार किया। वानरों के भीषण प्रहार के न सह सकने के कारण राक्षसी सेना में भगदड़ मच गई। तब इन्द्रजित् यज्ञ करता हुआ स्पष्ट दिखाई दिया। वह नीलाञ्जन पर्वत के समान काला था, लाल वस्त्र पहिने था। लाल ही पुष्पों की माला उसने धारण कर रखी थी, वह भूतों को बलि दे रहा था। आभिचारिक तामस यज्ञ कर रहा था। हनुमान्जी ने उसे युद्ध के लिये ललकारा और कहा—"अरे, नीच! तू अब प्राणों के भय से यहाँ आकर छिप गया है। आज मैं तेरे सिर को खड्ग से काटे बिना न रहूँगा। तू नपुंसक है डरपोक है। तभी तो तू युद्ध स्थल से दूर भागकर यहाँ छिप हुआ है।"

हनुमान्जी के इन कटु वचनों को सुनकर इन्द्रजित् यज्ञ छोड़कर रथपर बैठकर उन्हें मारने दौड़ा इसपर प्रसन्नता प्रकट करते हुए विभीषण ने लक्ष्मणजी से कहा—"महाबाहो! सौभाग्य की बात है, कि रावण पुत्र बिना यज्ञ पूर्ण किये ही युद्ध के लिये उठ खड़ा हुआ है, अब आप इसे पुनः यज्ञ स्थल पर न आने

दें। इसके इस मारण यज्ञ को समाप्त न होने दें। यह हनुमान्जी को मारना ही चाहता है।"

विभीषण की बात सुनकर लक्ष्मणजी ने दूर से ही ललकार कर रावण पुत्र इन्द्रजित् से कहा—"हे वीराभिमानी! यदि तुम सचमुच में वीर हो और तुममें कुछ बल पुरुषार्थ है तो मुझसे लड़ने आओ मैं तुम्हें युद्ध के लिये आह्वान करता हूँ।" इतना सुनते ही इन्द्रजित् के रोम रोम में क्रोध छा गया। इन्द्रको जीतने के कारण उसका अभिमान अत्यधिक बढ़ गया था वह वीराभिमानी अपने इतने बड़े अपमान को कैसे सह सकता था। इसलिये वह लक्ष्मणजी के सम्मुख आया। लक्ष्मणजी के समीप ही अपने सगे चाचा विभीषण को खड़ा देखकर वह सब रहस्य समझ गया। उसने सोचा—'अवश्य ही चाचा ने इनको मेरी दुर्बलता बता दी है। मेरे यज्ञ का रहस्य समझा दिया है तभी तो ये यज्ञ के बीच में यहाँ आ गये हैं। अतः अपने क्रोध को प्रकट करते हुये वह विभीषण से बोला—चाचा! तुम हो तो मेरे पिता के सगे भाई किन्तु तुम बड़े नीच हो। अरे, एक नगर का व्यक्ति भाई के नाते नगर निवासी की रक्षा करता है, किन्तु तुम ऐसे अधम हो कि अपने सगे भाई के पुत्र को मरवाना चाहते हो। तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम्हें तो मुँह न दिखाना चाहिये। एक चुल्लू पानी में डूब मरना चाहिये। कुलकलङ्क शत्रुओं से मिलकर तुम घर का भेद दे रहे हो? क्षुद्र लङ्का के राज्य के लिये तुम कुल का नाश करा रहे हो। अरे इस सुवर्ण की लङ्का को क्या तुम छाती पर रखकर ले जाओगे। मान लो तुम राजा भी हो गये, तो इसी तरह मर जाओगे। इस लङ्का को मेरी मेरी कहकर कितने मर गये। नीच! तुम्हें राज्य का ही लोभ था, तो मुझसे कहते। पृथिवी का राज्य

तो बहुत अच्छा है। इन्द्र को हटाकर मैं तुम्हें देवेन्द्र बना देता। तुम्हें सोचना चाहिये तुम्हारा भाई राजा है तो तुम ही राजा हो। रक्त तो एक है तुम्हें गौरव करना चाहिये, कि हम राक्षसराज वंश के हैं। तुम युद्ध के समय शत्रु के भेदिया बन अपने हाथों को अपने कुल वालों के रक्त से रंग रहे हो, घर में सभी से मतभेद हो जाता है। भाई भाई में, पति पत्नी में पिता पुत्र में तथा सुहृद् सुहृद् में छोटी छोटी बात पर मतभेद सदा से होते रहते हैं, मतभेद होना आश्चर्य नहीं, न होना ही आश्चर्य है किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं, कि मतभेद होने पर हम कुल का परित्याग कर दें। जब तुम अपने सगे भाई के नहीं हुए तो किसके होगे। इसलिये आज मैं तुम्हें ही मारकर अपने पथ के कण्टक को दूर करूंगा। कुल्हाड़ी को देखकर वृक्षों ने कहा था—कुल्हाड़ी। तू हमें क्या काट सकती है। किन्तु करें क्या तेरे में बेंट तो हमारे कुलकी लकड़ी का ही लगा है। कुल वाले ही नीचता पर उतर आते हैं तो कुलका नाश करा देते हैं। हाथी तब तक नहीं पकड़ा जाता जब तक पालतू हाथी उनमें मिलकर उनके साथ छल नहीं करता। या बनावटी हथिनी खड़ी नहीं होती। कुल कलङ्क तुम मेरे सामने से हट जाओ मैं तुम्हारा मुँह देखना भी पाप समझता हूँ। तुम कृतघ्न हो नीच हो, जातिद्रोही हो, लोभी हो, पापी हो, दुष्ट हो। पहिले तुम्हें मारकर तब लक्ष्मण को मारूँगा।"

इन्द्रजित् की बातें सुनकर विभीषण ने कहा—"नीचों से बातें करना भी पाप है, फिर उनके साथ रहना उनके पापों में सहयोग देना यह तो महापाप हुआ हो। मैं लज्जित हूँ कि तुम जैसे नीचों का और मेरा कुल एक है। मुझे भगवान् पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न होने का गर्व है, किन्तु तुम पापियों का अपना-

कहलाने में मुझे लज्जा का अनुभव होता है। मनुष्य शील से ही पहिचाना जाता है। मेरा शील स्वभाव सर्वदा राक्षसों से भिन्न रहा है। अन्य शरण न होने के कारण मैं तुम लोगों में रहकर दिन काटता रहा। जब मुझे प्राणिमात्र को शरण देने वाले परम शरण्य श्रीराघव मिल गये, तब मैं तुम निर्लज्ज और नीचों के साथ रहकर क्या करता। तुम निरंतर अधर्म में निरत रहते हो, मुझे अधर्म प्रिय नहीं। तुम सब क्रूर हो, मुझे क्रूरता से घृणा है। जिस अपने घरमें सर्प रहते हों उसमें क्या कोई अपने घरके लोभ से रह सकता है। जिस अपने घरके कूएँ में विष पड़ा हो, तो यह अपना ही कूआ है यह जान बूझकर कोई उसका पानी पी सकता है। अपने ही खेत में विष के वृक्ष उत्पन्न हो गये हों तो उनके फलों को अपने खेत के हैं इस सम्बन्धसे कोई खा सकता है। कुल सम्बन्ध से तुम सब अपने अवश्य हो, किन्तु नीचता दुराचरण पापाचरण के कारण तुम मुझसे भिन्न हो। संसारमें तीन ही सबसे बड़े पाप हैं, अपने भोजन के लिये परधन और पर स्त्रीका छल बल पूर्वक अपहरण और मित्रों के साथ विश्वासघात। तुम इन पापों को निरंतर करते रहते हो। इसलिये तुम लोगों को जैसे भी हो सके मरवा डालना तुम्हारे लिये ही हितकर नहीं लोक कल्याण के लिये भी परम हितकर और अत्यावश्यक है। अतः मैंने शरणागतवत्सल श्रीरामचन्द्रजी की शरण ली है। शरणागतवत्सल प्रभु का जो भी कार्य होगा उसे करूँगा। मैं राज्य लोभ से नहीं प्रभु की आज्ञा मानकर उन्हीं का कार्य कर रहा हूँ। उन्हें यह अभीष्ट है, नीच, दस्यु, आततायी, परस्त्रियों पर बलात्कार करने वाले उन्हें अपहरण करने वाले जितने भी नीच हों उन्हें मार डालना चाहिये। इसीलिये मैं तुम्हें मरवाने का उद्योग कर रहा हूँ तुम अब जीवित नहीं जा सकते।

इतना सुनते ही इन्द्रजित् विभीषण की ओर दौड़ा। विभीषण भी तैयार ही थे। उन दोनों को लड़ते देखकर लक्ष्मणजी ने इन्द्रजित् को कठोर वचन कहे और उसे युद्ध के लिये ललकारा तब इन्द्रजित् और लक्ष्मणजी का भीषण युद्ध होने लगा। दोनों ही वीर थे, दोनों ही बली थे, दोनों में ही यथेष्ट उत्साह था, दोनों ही अस्त्र शस्त्रों के मर्मज्ञ थे। दोनों ही युद्ध में अपराजित थे। बहुत देर तक युद्ध होता रहा। लक्ष्मणजी हनुमान्‌जी की पीठ पर चढ़े हुए थे, इन्द्रजित् दिव्य रथ पर चढ़ा हुआ था। लक्ष्मण ने उसका रथ तोड़ दिया, घोड़े मार दिये, सारथी को घायल कर दिया धनुष काट दिया और इन्द्रजित् की छाती में बाण मारकर गर्जना की। इन्द्रजित् पुनः रथ ले आया। अब तो हनुमान्‌जी भी राक्षसों का संहार करने लगे।

लक्ष्मणजी ने देखा इन्द्रजित् बड़ा वीर है, यह वैसे मरेगा नहीं। तब उन्होंने श्रीराम का स्मरण करके एक अत्यत ही तीक्ष्ण दिव्य बाण इन्द्रजित् पर छोड़ा। उसके लगते ही उसका सिर धड़ से पृथक् होकर पृथिवी पर लोटने लगा। वानर यह देखकर किलकिला शब्द करने लगे। आकाश में स्थित ऋषि, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व और देवतागण साधु साधु कहने लगे। गन्धर्व लक्ष्मणजी के गुणों का गायन करने लगे। वानरी सेना में हर्ष छा गया। राक्षस भागने लगे। लक्ष्मणजी ने आकर अपने बड़े भाई के पैर छुए। इन्द्रजित् को मारकर विजयी लौटे हुए अपने लघु भाई का श्रीराम ने आलिङ्गन किया। विनय से मस्तक झुकाये, लक्ष्मणजी का उन्होंने स्नेह से सिर सूँघा।

इधर जब राक्षसों ने इन्द्रजित् की मृत्युका समाचार रावणको दिया, तो वह अत्यन्त ही दुखी हुआ शोक से मूर्छित होकर

रुदन करने लगा। इन्द्रजित् के गुणों को स्मरण करके उसका हृदय फटने लगा। उसे जितना दुःख आज हुआ था इतना पहले कभी नहीं हुआ आज सीताजी के ऊपर क्रोध आया। उसने सोचा—"हत्या की जड़ यह सीता ही है, आज मैं इसे मार डालूँगा। ऐसा निश्चय करके वह खड्ग लेकर अशोक वाटिका में गया और सीताजी का वध करने को ज्यों ही आगे बढ़ा, त्यों ही उसके एक विद्वान् बूढ़े मन्त्री ने विनयपूर्वक उसे रोक दिया। मन्त्री की बात मानकर वह लौटकर अपने भवन में आ गया। उसे जब अपनी पराजय प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी। फिर भी उस बली शूरवीर अभिमानी व्यक्ति ने साहस नहीं छोड़ा। स्वयं शस्त्रों से सुसज्जित होकर श्रीरामचन्द्रजी से लड़ने समरभूमि में गया।

श्रीराम ने भी जब अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित शत्रु को सम्मुख निहारा, तब वे भी युद्ध करनेको आगे आये। इन्द्र ने देखा रावण तो रथपर है, भगवान् बिना रथके हैं, यह युद्ध उचित न होगा, इसलिए उन्होंने अपने दिव्य रथ को—जिसे उनका सारथी हाँक रहा था श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख भेजा। श्रीरामचन्द्रजी ने इन्द्र की इच्छा पूर्ण की। रथ को स्वीकार करके वे उस पर चढ़ गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! राम और रावण दोनों ही दिव्य रथों पर चढ़े हुए युद्ध के लिये सम्मुख आये और एक दूसरे को देखकर कठोर वचन कहने लगे।"

छप्पय

इन्द्रजीत रन मरन दशानन सुनि घबरायो।
वैदेही वध हेतु खड्ग लै निशिचर धायो॥
अनुचित कहिके सचिव निवारयो सम्मति मानी।
मारूँ या मरि जाउँ लङ्कपति मनमहँ ठानी।
समर हेतु रथ चढ़ि चल्यो, राम विरथ लखि अमरपति।
पठयो रथ मातलि सहित, चढ़े राम कपि मुदित अति॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

१—भागवती कथा—(१०८ खण्डों में), ६६ खण्ड छप चुके हैं। प्रति खण्ड का मू० १.२५ पै० डाकव्यय पृथक्।
२—श्री भागवत चरित—लगभग ६०० पृष्ठकी, सजिल्द मू० ५.२५
३—सटीक भागवत चरित—बारह बारह सौ पृष्ठ के सजिल्द दोनों खण्ड का मू० १३.००
४—बदरीनाथ दर्शन—बदरी यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ४.००
५—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० सं० ३५० मू० २.७५
६—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मू० २.००
७—कृष्ण चरित—मू० २.००
८—मुक्तिनाथ दर्शन—मुक्तिनाथ यात्रा का सरस वर्णन मू० २.५०
६—गोपालन शिक्षा—गौओं का पालन कैसे करें मू० २.००
१०—श्री चैतन्य चरितावली—पाँच खंडोंमें। प्रथम खंड का मू० १.००
११—नाम संकीर्तन महिमा—पृष्ठ संख्या ६६ मू० ०.५०
१२—श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मू० ०.५०
१३—भागवती कथा की बानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.२५
१४—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ०.३१
१५—मेरे महामना मालवीयजी—उनके सुखदसस्मरण पृ०सं०१३० मू०.२५
१६—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—(शास्त्रीय विवेचन) मू० ०.३१
१७—प्रयाग माहात्म्य—मू० ०.१२
१८—राघवेन्द्र चरित—मू० ०.३१
१६—भागवत चरित की बानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.२५
२०—गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र—(छप्पयछंदोंमें) मू० ०.१५
२१—आलवन्दार स्तोत्र—छप्पयछन्दों सहित मू० ०.२५
२२—प्रभुपूजा पद्धति मू० ०.२५
२३—वृन्दावन माहात्म्य—मू०
२४—गोपीगीत—अमूल्य।

मुद्रक—पं० वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८/५२ मुट्ठीगञ्ज इलाहाबाद।